जैनमित्रका चौदहवें वर्षका उपहार।

जिनेन्द्रमत-दर्पण तृतीय भाग

अर्थात्

गृहस्थ धर्म।

सर्व साधारण गृहस्थियोंके हितार्थ लखनऊ
निवासी ब्रह्मचारी शीतलप्रशाद सम्पादक
"जैनमित्र" द्वारा सम्पादित

और

"जैनमित्र" कार्यालय, बम्बई द्वारा
प्रकाशित

मुद्रक—'बम्बई वैभव प्रेस' बम्बई

श्री वीर नि० सं० २४३९ सन् १९१३ ई०

प्रथमावृत्ति] ग्रन्थ नं. ५ [मूल्य एक रु.

Printed by C. S. Deole in the Bombay Vaibhav Press, 1, Sadashiv Lane, Girgaum, Bombay.
and
Published by Sital Prasad Brahmachari, Editor "Jain Mitra" Hirabagh, Bombay.

भूमिका।



विदित हो कि इस पवित्र जैन धर्मके सिद्धान्त आत्माकी उन्नतिमें सर्वोत्तम और परम आदरणीय हैं, जिनको ठीक २ समझकर चलनेवाला जीव, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी सिद्धि सुगमतासे कर सकता है और इस सिद्धिके साधनको करते हुए किसी प्रकारका कष्ट नहीं उठा सकता है। हमारी वर्षोंसे यह कामना हो रही थी कि सर्व साधारण जैनी तथा अजैनी महाशयगण किस प्रकारसे जैन धर्मके सिद्धान्तोंको सुगमतासे जानकर अपना हित कर सकें—इसका कुछ उद्योग किया जाय।

जैन धर्मकी प्राचीनताके विषयमें कुछ मिथ्या आक्षेपोंको ठीक २ समझाते हुए और यह दिखलाते हुए कि, न जैनधर्म नास्तिक है, न बौद्धधर्मकी शाखा है, न हिन्दू धर्मसे निकला है; किन्तु एक प्राचीन स्वतंत्र धर्म है, जिसके प्रकटकर्त्ता इस कल्पकालके आदिमें श्रीऋषभदेवजी हुए हैं एक पुस्तक 'जिनेन्द्रमतदर्पण' प्रथम भाग प्रकाशित की गई। उसके पीछे जिन सात तत्त्वोंके श्रद्धान करनेसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होती है उनका विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए 'जिनेन्द्रमतदर्पण' द्वितीय भाग अर्थात् तत्त्वमाला प्रगट की गई।

श्रद्धान और ज्ञानके पश्चात् आचरण करना अवश्य है। यह आचरण दो प्रकारका है:—पहला मुनीश्वरोंके लिये और दूसरा गृहस्थ

श्रावकोंके लिये । प्रथम इस बातको लिखना आवश्यक समझकर कि गृहस्थियोंको अपने गृहस्थके कार्य बहुत ही सहजमें मालूम हो जाय, यह पुस्तक "जिनेन्द्रमतदर्पण" तृतीय भाग अर्थात् 'गृहस्थ-धर्म' लिखी गई है । इस पुस्तकके विषयको संग्रह करनेके लिये हमने कई वर्षोंसे ग्रन्थोंका अवलोकन किया व विद्वानोंसे चर्चा वार्ता की । इसमें निम्न लिखित ग्रन्थोंकी सहायता मुख्यता करके ली गई है:—

(१) श्री तत्त्वार्थसूत्र—श्रीउमास्वामीकृत

(२) श्री रत्नकरंडकश्रावकाचार—श्रीसमन्तभद्राचार्यकृत

(३) श्री सर्वार्थसिद्धि—श्रीपूज्यपादस्वामीकृत

(४) श्रीस्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा प्राकृतसंस्कृतटीका-श्रीशुभचन्द्रकृत

(५) श्री श्रावकाचार—श्रीवसुनन्दि आचार्यकृत

(६) श्रीमहापुराण—श्रीजिनसेनाचार्यकृत

(७) श्रीगोमट्टसार संस्कृतटीका--श्रीअभयचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीकृत

(८) श्री यशस्तिलक चम्पू—श्रीसोमदेव आचार्यकृत

(९) श्री पुरुषार्थसिद्धयुपाय—श्रीअमृतचन्द्रकृत

(१०) श्री सुभाषितरत्नसंदोह—श्रीअमितिगति आचार्यकृत

(११) श्री सागारधर्मामृत, भव्य कुमुद चन्द्रिका सं० टीका पं० आशाधरकृत

(१२) श्री धर्मसंग्रहश्रावकाचार—पं० मेधावीकृत

(१३) त्रिवरणाचार—सोमसेन भट्टारककृत

(१४) ज्ञानानन्द निजरस—निर्भर श्रावकाचार भाषा

हमने अपनी तुच्छ बुद्धि अनुसार जो अर्थ समझा है उसीका भाव इस पुस्तकमें स्वतंत्र रीतिसे प्रगट किया गया है। बहुधा प्रमाणोंके लिये मूल ग्रन्थके श्लोक व संस्कृतटीकाके गद्य दे दिये गये हैं, जिसमें विचारशील पाठकगण भले प्रकार अर्थको विचार लेवें।

इस पुस्तकके द्वारा गर्भसे लेकर मरण पर्यन्तकी क्रियाएं जो गृहस्थियोंको करनी होती हैं बहुत संक्षेपसे वर्णन की गई हैं, ताकि एक मामूली गृहस्थ भी विना किसी विशेष खर्चके व पंडितोंके आलम्बनके अपने पुत्रोंके जन्म, मुंडन, विद्यालाभ, जनेऊ और विवाह आदि संस्कारोंको कर सके तथा एक गृहस्थ किस प्रकार धीरे २ अपने इच्छानुसार धन कमाता हुआ व गृहमें रह कर सबका उपकार करता हुआ अपने चारित्रको बढ़ाकर ऐलक पदवी तक पहुंच सकता है, इसका संक्षेपसे वर्णन किया गया है।

बहुतसे लोगोंको मरणकी क्रिया व सूतक पातकके विचारमें बहुधा कठिनाइयां उठाना पड़ती थीं उनको दूर करनेके अभिप्रायसे जहांतक इन विषयोंमें हाल विदित हुआ है प्रकाशित किया गया है।

ऐसी पुस्तकके रचनेके लिये विद्यार्थी अवस्था ही में हमारे इस शरीरके निज भ्राता लाला सन्तलाल (जो चौक चूड़ी गली, लखनऊमें सकुटुम्ब रहते हैं) जीकी प्रेरणा रहा करता थी उस प्रेरणा रूपी बीजका कुछ स्फुटन इस पुस्तकमें किया गया है।

न्याय, व्याकरण व जैन सिद्धान्तका मर्मी न होनेके कारण संभव है कि अज्ञान व प्रमादके द्वारा कहीं कुछ अन्यथा अर्थ लिखा गया हो उसके लिये उदार और क्षमाशील पाठकोंसे प्रार्थना है कि हमको एक पत्रद्वारा सप्रमाण सूचित करें जिससे द्वितीयावृत्तिम सुधार देनेका विचार किया जाय।

हमारी यह इच्छा है कि इस पुस्तकका प्रचार जैन और अजैन सर्व पठनशील पाठकोंमें किया जाय जिसमें सर्व ही गृहस्थ अपने आचरणको इस पुस्तकके अनुसार ठीक कर सकें और परम उपादेय जो आत्मानुभवरूपी अमृतरसायन है उसका स्वाद ले सकें।

बम्बई वीर सं० २४३९ }
भादों सुदी १२ ता. १२-९-१३ई० }

प्रार्थी—
सीतलप्रसाद ब्रह्मचारी।

विषय सूची ।

नोट—(कृपाकर शुद्ध कर लेवें)

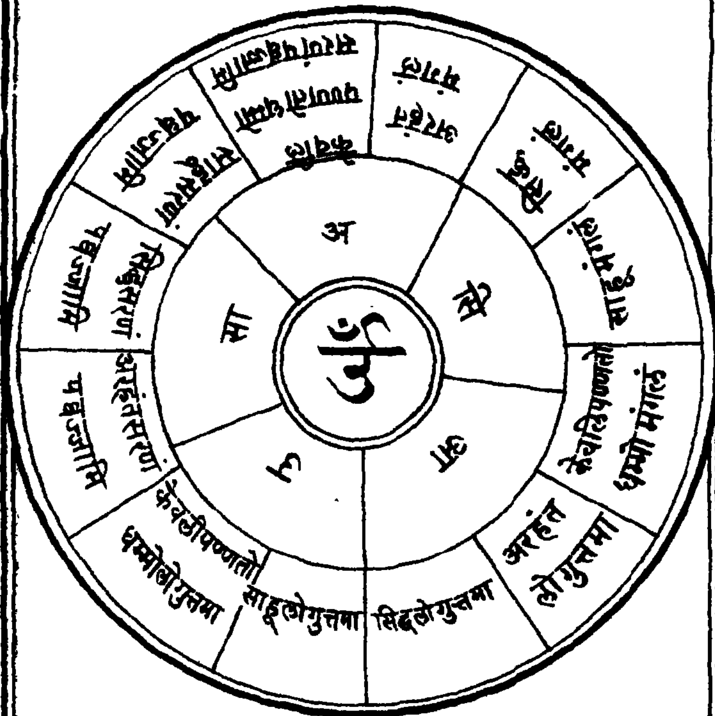
शुद्धाशुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०	३	भय	मय
२८	७	यः	पः
३३	१७	योवर	योवराज्य
३३	१९	आर्हन्य	आर्हन्त्य
३८	१८	ह्रीं	ह्रीं
३८	१८	ह्रः	ह्रः
४९	७	विद्याध्यायन	विद्याध्ययन
४७	८	तङ्का	तङ्कां
५०	८	श्रत	श्रुत
५३	३	वृणोहम्	वृणेऽहम्
५५	२	कुंथ्वर	कुंथ्वर
५५	६	प्रजा	प्रभा
५५	१२	रनंत	रानंत
५५	१२	विशाल	विशालप्रभ
५८	१	त्यति	व्यति
५८	७	विस्कुरण	विस्फुरण
५८	८	मत्रधन	मंत्रघन
५८	९	दुःषकम	दुष्कर्म
५८	१८	लगषो	लगणो
५९	७	चवढाना	चढवाना
७१	१६	घम	धर्म
९४	७	मी भज	कभी भज
१०९	२२	द्वयदिश्यते	व्यपदिश्यते

१५०	३	र	रह
१५६	३	भावयेत	भावयेत्
१६२	३	जघन्घ	जघन्य
१६४	१४	अष्ट द्रव्यसे ।	अष्ट द्रव्यसे पूजा
१६४	१६	स्मामी	स्वामी
१६८	५	प्रोषघो	प्रोषघो
१६८	१६	घर	घर
१७२	१७	निघेय	निघये
१९०	१५	मुक्त्वा	भुक्त्वा
१९२	९	भूवा	मूवा
१९३	८	वाकं	वाके
१९९	१८	अपनी	अपनी शक्ति
२०२	९	व्रतम	व्रतमें
२१४	६	१८००००.	१८०००
२३०	१६	पोत्पा	पोत्या
२३४	५	मैक्ष्या	भैक्ष्या
२४०	१६	से कुछ	कुछ
२६०	२	कण	कर्ण
२६०	७	त्रिसघ्यं	त्रिसंघ्यं
२७०	१८	सयमक	संयमके
२७४	२१	मंगलवार करे....करे।	मृतककी हड्डी मंगलवार
२८०	२१	घम	धर्म
२८५	१२	ज्ञानधनो	ज्ञानघनो
२८८	१७	कहनाय	कहवाय
२८९	११	श्रत	शांत
२९५	१४	घमके	धर्मके

१३९	३	कहा है	कहा है । तथा पत्ते और साक भी न खावे·
३३०	१२	ज	जे
३३०	१७	जासा पूजा	जासों पूजों
३३९	२०	प्रातदापक	प्रतिदीपकै
,,	,,	विभति	विभूति

सिद्धयंत्र वा क्रौं विनायक यंत्र। ह्रौं



यह यंत्र तामेका बना बनाया सेठ गंभीरमलजी जुहारमलजी पो० जयपूर (राजपूताना) के ठिकानेसे पत्र भेजनेपर व्ही.पी. द्वारा मिल सकता है। मूल्य अनुमान १॥) रु० के होगा।

प्रकाशक



जिनेन्द्रमतदर्पण तृतीय भाग।



नमः श्रीवीतरागायः

गृहस्थधर्म।

अध्याय पहला।

पुरुषार्थ।

संसारमें इस अमूल्य मनुष्य-जन्मको पाकर जीवोंको अपने आप अपने ही पुरुषार्थके द्वारा अपनी उन्नति करनेका अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न और अपने पुरुषार्थके उपयोगके बलसे ही यह जीव अनादि कालसे अपने साथ चला आया जो मिथ्यात् नामा वैरी उसका चूर २ कर सक्ता है और सम्यक्त-रत्न पाकर उसके द्वारा स्वस्वरूपमें आचरण करता हुआ और आत्माकी शुद्धि करता हुआ एक दिन कर्म मैलसे मुक्त हो सक्ता है। परन्तु यह उसी वक्त सम्भव

है जब आत्मा प्रयत्नशील हो और पुरुषार्थको अपना इष्ट समझता हो ।

वास्तवमें विचारकर देखिये तो उद्यम सब ही हर समय किया करते हैं; परन्तु कोई चढ़ती और कोई गिरती अवस्थाकी तरफ । विद्वानोंका कथन है कि अगर तुम उन्नति न करोगे तो अवनति करोगे; एकसी समान अवस्थामें नहीं रह सक्ते । पदार्थोंमें नवजीर्णपना हरएक समयमें होता है। जो व्यक्ति अपने बलको बाह्य निमित्तोंके साथ संयोगमें लाकर उन्नतिके लिये साहस और उत्साहसे पुरुषार्थ करता है वह उन्नति और जो आलसी रहता है वह अपनी वर्तमान अवस्थासे भी अवनति कर बैठता है । यदि हम दश हजार रुपय रखते हुए भी खर्चें तो बराबर, क्योंकि खर्च बिना जीवन नहीं रह सक्ता; परन्तु पैदा करके उसमें कुछ भी हानिकी पूर्ति व उसकी वृद्धि न करें तो धीरे २ दश हजारके धनीसे एक हजारके धनी रहकर एक दिन सब खोकर कंगाल हो जावेंगे । इसी प्रकार यदि हम प्राचीन कालमें बांधे हुए शुभ कर्मोंका फल तो भुगतते चले जावें, परन्तु नवीन शुभ कर्मोंको पैदा न करें तो एक दिन हमारे पुण्यका अंत आकर हम पुण्यके दरिद्री हो जावेंगे । खाली दरिद्री ही नहीं, बल्कि पापकी गठरीको सिरपर लादकर, भारी भरकम होकर अधोगतिके पात्र हो जावेंगे । पुरुषार्थ विना मनुष्यका मनुष्यत्व ही प्रगट नहीं हो सक्ता । जो २ शक्तियां मनुष्यके

भीतर हैं वे सब राखके नीचे दबी हुई अग्निकी तरह छिपी ही रह जाती हैं, यदि उनको काममें न लाया जावे।

पुरुषार्थ ऐसी वस्तु है कि जिसके बलसे हम अशुभ कर्मोंकी प्रकृतिको शुभ कर्मरूप कर सक्ते हैं, उनका तीव्र बल घटाकर मंद कर सक्ते हैं, उनकी स्थिति जो बहुत कालकी हो उसको थोड़ी कर सक्ते हैं अर्थात् पापका फल भुगतनेके पहले पापको पुण्यमें पलटा सक्ते हैं।

साधारण बात है कि यदि ईंट, चूना, मिट्टी सब तयार हो और घर बनानेवाला शिल्पी भी हो, परन्तु जबतक शिल्पी हाथ पैर हिलाकर उन ईंट, चूने, मिट्टीको न जोड़े तबतक मकान नहीं बन सक्ता और न शिल्पीका शिल्पपना ही प्रगट हो सक्ता है। उसी तरह हम संसारी जीवोंको अपना साधारण ज्ञान दर्शन ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्मके क्षयोपशमसे अपने चित्तका बिलकुल पागलपन न होना मोहनीकर्मके क्षयोपशमसे, अपनेमें साधारण शक्ति होना अंतरायके क्षयोपशमसे, शरीर और उसके अंग हाथ पैर आदि बनना नामकर्मके उदयसे, ऊंच व नीच कुलमें जन्म पाना गोत्रकर्मके उदयसे, अच्छे व बुरे देश तथा कुटुम्बियोंके मध्यमें पैदा होना वेदनीकर्मके उदयसे, एक गतिमें कुछ दिनों तक कायम रहना आयुकर्मके उदयसे–ऐसा सब सामान प्राप्त हुआ है। इन सर्व सामग्रियोंको पाकर जबतक हम इनसे तरह तरहका काम लेनेका उद्यम न करें तबतक कदापि

संभव नहीं है कि हम दुनियांका कोई काम कर सकें । यहां-तक कि यदि हम अपने मुंहमें ग्रास न रक्खें तो अपना पेट कदापि नहीं भर सक्ते हैं और न हम पुरुष कहलाकर अपना पुरुषपना प्रगट कर सक्ते हैं । जैसे उद्यमके विना शिल्पी और उसका सब सामान बेकाम होता है वैसे ही यह पुरुष और उसके मुंहके आगे रक्खी हुई सर्व सामग्री यदि वह उनसे काम न ले तो बेकाम होंगी ।

उद्यम करना मनुष्यका कर्तव्य है । इसी बातको ध्यानमें रखकर प्राचीन, आचार्योंने चार तरहके पुरुषार्थ नियत किये हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । हमारा मुख्य प्रयोजन धर्मरूप पुरुषार्थसे है, जोकि सर्व अन्य पुरुषार्थोंका वीज है । उसी प्रथम पुरुषार्थमें लीन होना हमारे परम कल्याणका कारण है ।

अध्याय दूसरा ।

सम्यक्चारित्रकी आवश्यक्ता ।

जिस मनुष्यने सात तत्वोंका स्वरूप भली भांति समझकर निश्चय कर लिया है उसको अपने उस निश्चय किये हुए मन्तव्यके अनुसार आचरण करना बड़ा भारी फर्ज़ हो जाता है । हमारा तो यह विश्वास है कि उस सम्यग्दृष्टी

पुरुषसे आचरणके मैदानमें चले बिना रहा ही नहीं जायगा वह अपनी शक्ति अनुसार चलेगा; चाहे धीरे धीरे चले चाहे जल्दी। वह जितनी शक्ति अपने पैरोंमें चलने की ज्यादा पायगा उतनी जल्दी जरूर चलेगा। क्योंकि सम्यग्दृष्टीको यह निश्चय होता है कि अपने आत्माको सच्चे व अनुपम सुखका पूर्ण लाभ विना मोक्ष–महलमें पहुंचे कदापि संभव नहीं है संसारमें इस सुखका अनन्त काल-के लिये पाना अत्यन्त दुर्लभ है। यदि संसारमें यह सुख मिल भी जाय तो बहुत समयतक स्थिर नहीं रहता है। पस उस सुखमें आशक्त चित्त सम्यग्दृष्टी क्यों न मोक्ष–महलमें जल्दी पहुँचनेकी कोशिस करेगा और अपनेमें शक्ति रखता हुआ क्यों न चलेगा? अवश्य चलेगा।

सिर्फ जान लेने और विश्वास कर लेनेसे हम किसी भी कार्यका फल नहीं निकाल सक्ते, जबतक कि हम उस कार्यके साधनोंका व्यवहार न करें। जो किसीकी ऐसी सम्मति पाई जाय कि श्रद्धा मात्रसे ही अथवा ज्ञान मात्रसे ही अथवा चारित्र मात्रसे ही भव–सागर पार हो जाँयगे सो कदापि संभव नहीं है। जो सिर्फ इतनी ही श्रद्धा मात्र रखता हो कि व्यापार करनेसे लाभ होगा वह कभी भी द्रव्य प्राप्त नहीं कर सक्ता; न उसको द्रव्यका लाभ हो सक्ता है जो केवल व्यापार करनेके योग्य उपायोंका ही ज्ञान मात्र रखता हो और न उस पुरुषको धनका आगम होगा

जो विना श्रद्धा और ज्ञानके अयोग्य उपायों और साधनोंसे व्यापार करने लग जायगा। द्रव्यका लाभ तो वही कर सक्ता है जो ठीक२ श्रद्धा और ज्ञानके साथ उपाय करै ।

श्रीसमन्तभद्राचार्य्य अपने रत्नकरंडश्रावकाचारमें कहते हैं:—

मोह-तिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥४७॥

अर्थात् साधु पुरुष मोहांधकारके दूर होनेसे सम्यग्दर्शनको पाकर सम्यग्ज्ञानी होता हुआ राग और द्वेषको नाश करनेके लिये आचरणकी तरफ झुकता है।

श्रीअमृतचंद्र आचार्य्य अपने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ग्रंथमें इस तरह लिखते हैं:—

विगलितदर्शनमोहैः समंजसज्ञानविदिततत्त्वार्थैः ।
नित्यमपि निःप्रकम्पैः सम्यक्चारित्र मालम्ब्यम्॥३७
न हि सम्यग्व्यपदेशं चरित्रमज्ञानपूर्वकं लभते ।
ज्ञानानन्तरमुक्तं चारित्राराधनं तस्मात् ॥ ३८ ॥

अर्थात् जिनका दर्शनमोहनामा कर्म गल गया है, जो यथार्थ ज्ञानसे तत्त्वोंके अर्थको जानते हैं और सदा ही निभर्य हैं उनको सम्यग्चारित्रका आश्रय लेना चाहिये। अज्ञानसहित आचरणको ठीक आचरण नहीं कह सक्ते, इसीलिये चारित्रका सेवन ज्ञानके पीछे कहा गया है।

श्रीगुणभद्राचार्यजी अपने आत्मानुशासनमें चारित्रके लिये इस भांति प्रेरणा करते हैं:-

हृदयसरसि यावन्निर्मलेऽप्यत्यगाधे ।
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात् ।
श्रयति गुणगणोऽयं तन्न तावद्विशङ्कं ।
समदमयमशेषैस्तान् विजेतुं यतस्व ॥ २१३ ॥

अर्थात् अत्यंत अगाध और निर्मल हृदयरूपी तलाबके होते हुए भी जब तक उसमें कषायरूपी मगरमच्छ चारों ओर बस रहे हैं उस वक्त तक गुणोंके समूह उसमें रह नहीं सक्ते। इसलिये सबसे पहिले शंका त्याग उन कषायोंको जीतनेके लिये सम, दम, यम आदिकसे यत्न करना योग्य है।

सम्यग्चारित्रका पालना बहुत ही जरूरी समझकर, जिनको निराकुल सुख पानेकी कामना है उनको यह नर-भव सफल करना चाहिये। पाठकगण! यह बात अच्छी तरह जानते होंगे कि यह सम्यग्चारित्र देव-गति और नरक-गतिमें तो किसी जीवको प्राप्त ही नहीं होता । पशुगतिमें अन्धेके हाथ बटेरके समान कभी किसी मनसहित पंचेन्द्री पशुको किसी महात्माकी संगतिसे प्राप्त हो जाय तो हो सक्ता है। परन्तु साधारण रूपसे कह सकते हैं कि पशुगतिमें भी सम्यक्चारित्र प्राप्त नहीं हो सकता है । यदि है तो यह एक मनुष्य—जन्म ही है कि जिसमें जीव सम्यक्चारित्रको

प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंको यह शक्ति है कि यदि वे उद्यम करें तो नीचीसे नीची दशासे ऊंचीसे ऊंची दशा तक प्राप्त कर सक्ते हैं। जिन मनुष्योंने जन्मका बहुतसा समय कुआचरणमें गमाया, वे ही जब सम्यग्दृष्टी हुए तब सम्यक्-चारित्रपर चलकर ऐसे महात्मा मुनि हो गये कि जिनके चरणोंको राजा महाराजा देवादि तक नमस्कार करने लगे। विद्युत् चोर उत्तम कुली होनेपर भी चोरी आदि व्य-सनोंमें पूर्ण रूपसे रत था, परन्तु श्रीजम्बूस्वामी महाराज-की संगति पा मुनि हो गया। उसने अत्यन्त कठिन चारित्र पाला तथा मथुराके बनमें उपसर्ग सहकर धर्म--ध्यानके बलसे परम पुण्यको बांध सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिन्द्र होता भया।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसहित जो आचरण होता है उसे सम्यग्चारित्र कहते हैं।

पाठकोंको विदित है कि जैनधर्ममें निश्चय और व्यव-हार दो नय बतलाई गई हैं। निश्चयनय किसी चीज़की असली हालतको बतलाती है और व्यवहारनय उस चीज़में दूसरी चीज़ोंके मिलने व छूटनेसे जो २ हालतें होती हैं उनको बत-लाती है तथा निश्चयनयकी हालतको पानेका रास्ता बताती है। निश्चयनयकी अपेक्षासे सम्यग्दर्शनसे अपने आत्म-स्वरूप-की दृढ़ श्रद्धारूप रुचि होनेका, सम्यग्ज्ञानसे आत्माके गुणोंको अच्छी तरह जाननेका और सम्यग्चारित्रसे अपने आत्म-स्वरूपमें लीन होनेका मतलब है। अर्थात् जिस वक्त यह

आत्मा श्रद्धा और ज्ञानसहित बीतरागी हो, अपने आत्म-स्वरूपमें तन्मय होकर एकमेक हो जाता है, तब तीनोंकी एकता होनेसे निश्चय मोक्ष-मार्ग होता है और यही ध्यान कहलाता है। इसी सीधे रास्तेपर चलनेसे अर्थात् अपने आत्म-स्वरूपमें अपने मनको निश्चल रखनेसे कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है और इस आत्मानुभवरूप आचरणको हमेशा बारबार जारी रखनेसे किसी न किसी वक्त सर्व आत्माको घात करनेवाले कर्म झड़ जाते हैं और यह आत्मा अपने निज आनन्दमय स्वरूपमें ऐसा मगन याने लवलीन हो जाता है कि उस रसका स्वाद लेते हुए कभी दूसरी तरफ नहीं झुकता और उसी वक्त निराकुल सुखको पाकर मुक्त-जीव कहलाता है, इस निश्चयसम्यग्चारित्रको स्वरूपाचरण कहते हैं जैसा कि पंडित दौलतरामजी अपने मनोहर छन्दोंमें कहते हैं:—

जिन परम पैनी सुबुधि—छैनी डार अंतर भेदिया।
वरणादि अरु रागादितैं निज भावको न्यारा किया॥
निज मांहि निजके हेत निज कर आपको आपै गह्यो
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मंझार कुछ भेद न रह्यो॥
जहं ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वच भेद न जहां।
चिद्भाव कर्म चिदेशकर्त्ता चेतना किरिया तहां॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोगकी निश्चल छटा।

प्रगटी जहां दृग ज्ञान ब्रह्म ये तीन धा एकै लशा ॥
परमाण नयनिक्षेपको न उद्योत अनुभवमें दिखै ।
दृगज्ञान सुख बल भय सदा नाहिं आन भाव जो मो विखै॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अर तसु फलनितें ।
चित पिंड चंड अखंड सुगुण करंड च्युत पुनि कलनितें ॥
यों चिन्त्य निजमें थिर भए तिन अकथ जो आनन्द लह्यो।
सो इन्द्र नागनरेन्द्र वा अहमिन्द्रके नाहीं कह्यो ॥

असलमें सम्यग्चारित्र अपने आत्माको परमात्मा अनुभवकर उसमें एकाग्रचित्त होनेका ही नाम है और यही रास्ता हर तरहसे पकड़नेके लायक है। परन्तु संसारी लोग संसारकी वासनाओंमें अनादि कालसे पड़े हुए हैं और अपने मनमें आत्मस्वरूपसे सर्वथा जुदी ऐसी चीजोंको वारम्बार बिठा चुके हैं और अब भी बिठाए हुए हैं। क्या ऐसे लोगोंके लिये यह बात सम्भव है कि वे एकदमसे अपना मन सबसे हटाके आत्माकी तरफ ले जा सकें और उसमें उसे बराबर स्थिर रख सकें? कदापि नहीं। इसीलिये श्रीतीर्थंकर भगवानने व्यवहार–मोक्षमार्गको बतलाया है कि जिसके सहारेसे ये संसाराशक्त आत्माएं अपना राग, द्वेष व क्रोधादि कषायोंको धीरे २ कम करते हुए किसी समय पूर्ण वीतरागी हो जावें और अपने ज्ञानानंदस्वरूपका लाभ करें।

व्यवहार सम्यग्दर्शनमें जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ऐसे ७ तत्त्वोंकी श्रद्धा करनी होती है, जिसका वर्णन दूसरा भाग अर्थात् तत्त्वमालामें किया जा चुका है। इन सात तत्त्वोंके ज्ञान और श्रद्धानसे ही यह संभव है कि संसारी जीवको अपने आत्मस्वरूपका निश्चय प्राप्त हो जावे।

व्यवहार सम्यग्ज्ञानमें सात तत्त्वोंका विशेष ज्ञान तथा आत्मा और कर्मोंका पूर्ण वर्णन जाननेके लिये जैन शास्त्रोंका खूब अभ्यास करना योग्य है। प्रथमानुयोग जिसमें महान पुरुषोंके जीवनचरित्र हैं; करणानुयोग जिसमें तीन लोक व गणित ज्योतिषादि विद्याका वर्णन है; चरणानुयोग जिसमें मुनि और श्रावकोंके आचरण विस्तारसे दिखाए हैं; द्रव्यानुयोग जिसमें जीवादि षट् द्रव्यका कथन पूर्णरूपसे कथित है—ऐसे चारों अनुयोगोंके शास्त्र जैसे महापुराण, हरिवंशपुराण, त्रिलोकसार, गोम्मटसार, मूलाचार, श्रावकाचार, बृहद्द्रव्यसंग्रह, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार आदि शास्त्रोंको भले प्रकार समझना चाहिये। ज्यों २ अधिक शास्त्रज्ञान होगा त्यों त्यों अधिक आत्मस्वरूपके पहचाननेकी योग्यता प्राप्त होगी।

व्यवहार सम्यग्चारित्रके दो मार्ग हैं—एक मुनि, दूसरा श्रावक। मुनिमार्ग निरन्तर स्वरूपाचरणकी ओर ले जानेवाला है और इसीलिये उत्तम और श्रेय है। श्रावक—मार्ग

गृहस्थियोंका है, जो मुनिमार्गपर चलनेमें अशक्त हैं और घरमें ही रहकर कभी २ ध्यानका तथा राग और द्वेष छुड़ानेका अभ्यास कर सक्ते हैं। यह श्रावकका मार्ग मुनिमार्गके ग्रहण करानेमें सहायक है। जिसने श्रावक–अवस्थामें श्रावकमार्गका अभ्यास किया है वह मुनि होनेपर सहजमें ही उस मार्गपर चल सक्ता है। श्रावककी ग्यारह श्रेणियां हैं एक दूसरेसे अधिक २ व्यवहारचारित्र पलवाती हैं और इस तरह श्रावकको अधिक अवसर आत्मानुभवके लिये प्रदान करती हैं। इन श्रेणियोंका वर्णन आगे किया जायगा।

अध्याय तीसरा।

श्रावककी पात्रता।

श्रावकधर्मके पालनेके अधिकारी दो तरहसे होते हैं। एक तो जब बालक श्राविकाके गर्भमें आवे तबहीसे उसपर श्रावकधर्म पालनेका असर पड़ता चला जावे। दूसरे जो अजैन हैं वे श्रावकधर्मका श्रद्धान कर श्रावकके आचरणको करें। इन दो रीतियोंके द्वारा श्रावकधर्म पालनेकी पात्रता होती है। प्रथम हम उसी पात्रताका वर्णन करेंगे जो मनुष्य अवतारके धारण करनेके अवसरमें आ सक्ती है।

जब बालक माताके गर्भमें आता है तब उसकी शक्तियोंको मजबूती और कमजोरीका पहुँचाना माताके ऊपर है।

माता उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंको कुण्ठित रखने व तेज करनेके लिये एक अद्भुत बलको धारनेवाली है। माताके मन, वचन, कायकी क्रियाका असर बालकके ऊपर पड़ता है। इसलिये माताको सच्ची श्राविका होना जरूरी है। यदि माता विवेकवती, सुशीला, धर्मात्मा और विदुषी होगी तो उसके मन, वचन, कायोंकी योग्य क्रिया बालककी शक्तियोंपर अपनी वैसी ही छाप बैठानेके लिये निमित्त कारण हो जायगी। यदि माता अज्ञान, कुशीला, अधर्मी और मूर्खा होगी तो उसकी क्रियाओंका बहुत बुरा असर बालकके ऊपर पड़ेगा। यद्यपि मनुष्यके पूर्वोपार्जित कर्म भी मनुष्यकी शक्तियोंके खिलानेमें निमित्त कारण हैं तथापि बाह्य निमित्त भी सहायक होते हैं। इसलिये हमको अपने उद्यमकी अपेक्षा बाह्य निमित्तोंकी पूर्ति अवश्य करनी चाहिये। इसलिये गर्भस्थित बालकोंकी शिक्षाके लिये भी माता धर्मात्मा और विदुषी होनी चाहिये। यदि सच्चे श्रावक उत्पन्न करना है तो जैनसमाजको चाहिये कि,योग्य माताओंको तयार करे। अपनी कन्याओंको धर्म, नीति, गृह,प्रबंध, कारीगरी आदि की ऐसी शिक्षा देवे जिससे वे योग्य माता हो सकें। माता जो आहारपान करती है उसीका अंश गर्भस्थित बालकको प्राप्त होता है। यदि माता शुद्ध आहार पान करेगी तो बालकका शरीर भी उसीसे पोषित होगा, जिससे उसके शरीरमें निरोगता रहेगी और रुधिर शुद्ध होगा। माताके मनमें यदि अच्छे विचार

होंगे तो उनके संसर्गसे बालकोंकी भी मानसिक वृत्तिपर अच्छा असर होगा। अकसर देखा जाता है कि यदि कोई महान् तेजस्वी पुण्यात्मा जीव माताके गर्भमें आता है तो उसके ज्ञान और धर्म-बलके निमित्तसे माताके मनके विचारमें भी फर्क आ जाता है; उसी प्रकारके नाना प्रकारके रोहले उत्पन्न होते हैं। यदि तेजस्वी पुत्र हो तो माता दर्पणमें मुंह देखती है। यदि अत्यन्त धर्मात्मा पुत्र हो तो माताके मनमें तीर्थ-यात्रा करनेके भाव होते हैं। यदि दरिद्री पुत्र हो तो माता चने अथवा मिट्टीके टुकड़े खाना चाहती है। ऐसे ही माताके सुविचारोंका असर भी बालकपर पड़ता है। द्रव्यपर भावका और भावपर द्रव्यका असर पड़ता है। इसलिये माता जैसी योग्य होगी वैसा ही बालकके विचारोंमें भी उसका असर अवश्य पड़ेगा। अतएव कन्याओंको योग्य, धर्मात्मा, सुशील और सुआचरणी बनाना मनुष्यसमाजके सुधारके लिये अत्यन्त जरूरी है।

जैसे गर्भमें रहते हुए बालकोंके मन, वचन, कायपर माताके मन, वचन और कायका असर पड़ता है वैसे ही जबतक शिशु माताकी गोदमें रहता है और दूध पीता है उस समय भी माताद्वारा बालकोंके मन, वचन, कायोंपर असर पड़ता है। माता बालकोंकी बुरी और भली आदतोंकी जिम्मेदार है। माता बालकोंके बुरे व भले वचनोंकी जिम्मेदार है। माता ही बालकोंके बुरे व भले भावोंकी

जिम्मेदार है। चूंकि बच्चोंकी सर्व क्रियाएँ, सर्व रहनसहन माताओंके द्वारा होता है, इसलिये माताओंको खास तौरसे बच्चोंके बिगाड़ और सुधारका जिम्मेदार कहना पड़ता है।

बच्चोंके योग्य होनेके वास्ते जैसे योग्य माताओंकी आवश्यकता है वैसे ही शास्त्रमें कहे हुए कुछ अन्य संस्कारोंके किये जानेकी भी ज़रूरत है। इन संस्कारोंका वर्णन श्रीजिनसेनाचार्य कृत आदिपुराणजी अध्याय ३८, ३९ और ४० में दिया हुआ है। ये गर्भाधानादि संस्कार कहलाते हैं। हरएक गृहस्थी श्रावकको अपने बालकोंके कल्याणके लिये इन संस्कारोंका किया जाना अवश्यक है। ये संस्कार भी द्रव्य-परमाणुओंकी शक्तिकी अपेक्षासे बालकोंके मन, वचन और तनके अन्दर अपने असरको पैदा करते हैं।-आजकल जैनसमाजमें इन गर्भाधानादि संस्कारोंका अभाव होगया है-कोई जैनी भाई इनकी तरफ ध्यान नहीं देते हैं। प्राचीन कालमें इनका यथार्थ व्यवहार होता था। आगे हम संक्षेपसे इनकी विधि और मंत्र इस रीतिसे बयान करेंगे जिससे एक मामूली गृहस्थ भी बिना किसी विशेष खर्च और दिक़तके इन संस्कारोंको कर सके। जिनको बड़ी विधिसे करना हो वे अन्य ग्रन्थोंसे जानकर इनको प्रचारमें लावें। इनका वर्णन त्रिवर्णाचारोंमे भी है।

अध्याय चौथा ।

गर्भाधानादि संस्कार ।

गर्भाधान—पहला संस्कार ।

पुरुषको स्त्रीका संभोग विषयोंकी इच्छासे नहीं करना चाहिये, बल्कि सिर्फ पुत्रकी उत्पत्तिकी इच्छासे ही करना योग्य है। स्त्री मासके अंतमें जब ऋतुवंती हो, तब वह ४ दिन तक एकान्त स्थानमें बैठे, शृंगार न करे, नियमसे जो सादा भोजन मिले उसे करे, बारहभावनाका विचार करे तथा न घरका कोई काम करे, न किसी पुरुषको देखे। ऐसी स्त्री पांचवें दिन अथवा किसी २ की सम्मतिसे छठे दिन स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन अपने पतिके साथ श्रीमंदिरजीमें जाकर श्रीअरहंतकी पूजा करे। फिर वह घरमें आकर श्रीजिनेंद्रकी प्रतिमा जो सिंहासनपर तीन छत्रसहित विराजमान हो उसके दाहिने बाएं ३ चक्र स्थापे, तथा वेदीके आगे अग्निके तीन कुंड बनावे। बहुधा गृहस्थियोंके यहां चैत्यालय होते हैं। यदि प्रतिमाका सम्बन्ध न बन सके तो सिद्धयंत्रको विराजमान करे। यदि उसका भी सम्बन्ध न हो सके तो श्री जिनशास्त्रको विराजमान करके उसके आगे ३ कुंड बनावे। एक कुंडका नाम गार्हपत्य, इसको चौखूंटा □ बनावे। दूसरे कुंडका नाम आह्वनीय, इसको त्रिखूंटा △ बनावे।

तीसरे कुंडका नाम दक्षिणावर्त्त, इसको (◡) अर्द्ध चंद्रके आकार बनावे। इन तीनोंमें अग्नि जलावे। पहले कुंडकी अग्निको तीर्थंकरके निर्वाणकी अग्नि, दूसरे कुंडकी अग्निको गणधरके निर्वाणकी अग्नि तथा तीसरे कुंडकी अग्निको सामान्य-केवलीके निर्वाणकी, अग्नि कहते हैं। इन तीनोंकी प्रणीताग्नि संज्ञा है। यदि तीन कुंड बनानेका आरंभ न कर सके तो १ चौखूंटा कुंड तो अवश्य बनावे।

प्रतिमा या यंत्र या शास्त्रको सिंहासन वा ऊंचे आसनपर विराजमान करनेके पहिले जो क्रिया करनी चाहिये वे इस भांति है:—

शुद्ध प्राशुक जल लेकर 'नीरजसे नमः' यह मंत्र पढ़कर जहां पूजा करनी है उस भूमिको छींटा दे शुद्ध करे। फिर 'दर्पमथनाय नमः' यह मंत्र पढ़कर डाभका आसन ठीक मौकेपर अपने बैठनेको बिछावे। फिर आसनपर बैठकर आगेकी जमीनको 'सीलगंधाय नमः' यह मंत्र पढकर प्राशुक जलसे छींटे। फिर 'विमलाय नमः' यह मंत्र पढ़कर उस भूमिमें पुष्प चढावे। फिर 'अक्षताय नमः' यह मंत्र पढ़कर अक्षत चढ़ावे। फिर 'श्रुतधूपाय नमः' यह मंत्र पढ़कर धूप देवे। फिर 'ज्ञानोद्योताय नमः' यह मंत्र पढ़कर दीप चढ़ावे। फिर 'परमसिद्धाय नमः' यह मंत्र पढ़कर नैवेद्य चढ़ावे। इस प्रकार जमीनको शुद्ध करके फिर सिंहासन या ऊंचे आसनपर प्रतिमा व यंत्र व शास्त्र विराजमान करे।

फिर आगे चौकीपर सामग्री रख थालमें देव, गुरु, शास्त्रकी नित्यपूजा स्थापनापूर्वक करे। पूजा संस्कृत हो चाहे भाषा। नित्यनियमपूजा बहुधा सर्वको कंठ आती है, नहीं तो उसको बतलाने वाली पुस्तकें हर स्थानमें मिलती हैं। इसलिये वह यहां नहीं लिखी जाती है। तथापि पुस्तकके अंतमें नित्यानियमपूजा भाषा दी गई है। सो यदि और पुस्तक न हो तो उसीको सूची-पत्र परसे निकाल पूजन करें। यदि समयकी आकुलता न हो तो सिद्धपूजा भी की जाय। इस प्रकार नित्यनियमपूजा हो चुकनेके पश्चात् अग्निके उन कुंडोंमें व १ कुंडमें होम करे।

होमकी विधि।

कुंडमें ॐ वा सांथिया। 卐 बनावे। तथा लाल चंदन, कपूर, सफेद चंदन, पीपलकी लकड़ी, अगुरु (अगर) और छीली हुई आककी लकड़ी शुद्ध प्राशुक होम करने योग्य कुंडमें रक्खे और अग्नि जलावे। फिर नीचे लिखा श्लोक पढ़कर अर्घ चढ़ावे।

श्रीतीर्थनाथपरिनिर्वृत्तिपूज्यकाले
आगत्य वह्निसुरपा मुकुटोल्लसद्भिः॥
वह्निव्रजैर्जिनपदेहमुदारभक्त्या
देहुस्तदग्निमहमर्चयितुं दधामि॥
ॐ ह्रीं प्रणीताग्नये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऐसा बोलकर अर्घ चढ़ावे। यदि कुंड तीन हों तो तीन

दफे ॐ ह्रीं आदि बोलकर तीन अर्घ चढ़ावे । फिर होमकी सामग्री लेकर नीचे प्रमाणे होम करे ।

होमकी सामग्री ।

चंदन, अगुरु, बदामकी गिरी, पिस्ताकी गिरी, छुहारा तोड़ा हुआ, खोपरा, किसमिस, शक्कर, लवंग, कर्पूर, छोटी इलायचीके दाने आदि सुगन्धित द्रव्य लेवे । इन सबके बराबरका घी लेवे और नीचे लिखे एक २ मंत्रपर घी और सुगन्धित द्रव्य अग्निकुंडमें होमे ।

पीठिकाके मन्त्र ।

ॐ सत्यजाताय नमः ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः ॥ २ ॥
ॐ परमजाताय नमः ॥३॥ ॐ अनुपमजाताय नमः ॥४॥
ॐ स्वप्रधानाय नमः ॥ ५ ॥ ॐ अचलाय नमः ॥ ६ ॥
ॐ अक्षताय नमः ॥७॥ ॐ अव्याबाधाय नमः ॥ ८ ॥
ॐ अनंतज्ञानायनमः॥९॥ ॐ अनंतदर्शनायनमः ॥१०॥
ॐ अनंतवीर्याय नमः॥११॥ ॐ अनंतसुखाय नमः ॥१२॥
ॐ नीरजसे नमः ॥ १३ ॥ ॐ निर्मलाय नमः ॥ १४ ॥
ॐ अच्छेद्याय नमः ॥ १५ ॥ ॐ अभेद्याय नमः ॥१६॥
ॐ अजराय नमः ॥ १७ ॥ ॐ अमराय नमः ॥ १८ ॥
ॐ अप्रमेयाय नमः॥१९॥ ॐ अगर्भवासाय नमः ॥२०॥
ॐ अक्षोभाय नमः ॥२१॥ ॐ अविलीनाय नमः ॥२२॥

ॐपरमघनायनमः२३॥ॐपरमकाष्ठायोगरूपाय नमः २४
ॐलोकाग्रवासिनेनमोनमः२५ॐ परमसिद्धेभ्योनमोनमः
॥२६॥ॐअर्हात्सिद्धेभ्योनमो नमः ॥२७॥ ॐकेवालिसिद्धे-
भ्यो नमो नमः॥२८॥ॐअंतःकृत्सिद्धेभ्यो नमोनमः ॥२९॥
ॐ परंपरासिद्धेभ्यो नमो नमः ॥३०॥ ॐ अनादिपरंपरा
सिद्धेभ्यो नमो नमः ॥ ३१ ॥ ॐ अनाद्यनुपमासिद्धेभ्यो
नमो नमः॥३२॥ ॐ सम्यग्दृष्ट्यासन्नभव्यनिर्वाणपूजार्हा-
ग्नीन्द्राय स्वाहा ॥ ३३ ॥

इस तरहँ ३३ मंत्र पद आहूति देकर फिर नीचे लिखा आशीर्वाद सूचक मंत्र पद आहूति देवे और पुष्प ले अपने व सर्व पास बैठनेवालोंके ऊपर डाले।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु ॥

अथ जातिमंत्र।

ॐ सत्यजन्मनः शरणं प्रपद्ये॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जन्मनः शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥ ॐ अर्हन्मातुः शरणं प्रपद्ये॥ ३ ॥ ॐ अर्हत्सुतस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥ ॐ अनादिगमनस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥ ॐ अनुपमजन्मनः शरण प्रपद्ये ॥ ६ ॥ ॐ रत्नत्रयस्य शरणं प्रपद्ये ॥ ७ ॥ ॐ

सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे ज्ञानमूर्ते ज्ञानमूर्ते सरस्वति सरस्वति स्वाहा ॥ ८ ॥

इस तरहँ जातिमंत्र पढ़ आठ आहूति देकर आशीर्वाद सूचक नीचे लिखा मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे।

सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु।

अथ निस्तारकमंत्र।

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा॥२॥ ॐ षट्कर्मणे स्वाहा ॥३॥ ॐ ग्रामपतये स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ अनादिश्रोत्रियाय स्वाहा ॥५॥ ॐ स्नातकाय स्वाहा ॥६॥ ॐ श्रावकाय स्वाहा ॥७॥ ॐ देवब्राह्मणाय स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ सुब्राह्मणाय स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥ १० ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे निधिपते निधिपते वैश्रवण वैश्रवण स्वाहा ॥ ११ ॥

इत तरहँ ११ आहूति दे फिर वही "सेवाफलं षट्परम स्थानं भवतु। अपमृत्युविनाशनं भवतु। समाधिमरणं भवतु।" मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे।

अथ ऋषिमंत्र।

ॐ सत्यजाताय नमः ॥१॥ ॐ अर्हज्जाताय नमः ॥२॥ ॐ निर्ग्रन्थाय नमः ॥३॥ ॐ वीतरागाय नमः ॥ ४ ॥

ॐ महाव्रताय नमः ॥५॥ ॐ त्रिगुप्ताय नमः ॥ ६ ॥ ॐ महायोगाय नमः ॥ ७ ॥ ॐ विविधयोगाय नमः ॥ ८ ॥ ॐ विविधर्द्धये नमः ॥९॥ ॐ अंगधराय नमः ॥ १० ॥ ॐ पूर्वधराय नमः ॥११॥ ॐ गणधराय नमः ॥ १२ ॥ ॐ परमर्षिभ्यो नमो नमः ॥१३॥ ॐ अनुपम॰ जाताय नमो नमः ॥१४॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे भूपते भूपते नगरपते नगरपते कालश्रमण कालश्रमण स्वाहा ॥ १५ ॥

ऐसी १५ आहूति देकर वही निम्न लिखित अशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे ।

"सेवाफलं षट्परमस्थानं भवतु । अपमृत्युविनाशनं भवतु । समाधिमरणं भवतु ॥ "

अथ सुरेन्द्रमंत्र ।

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥१॥ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा॥२॥ ॐ दिव्यजाताय स्वाहा॥३॥ॐ दिव्यार्चिर्जाताय स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ नेमिनाथाय स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ सौधर्माय स्वाहा ॥ ६ ॥ ॐ कल्पाधिपतये स्वाहा ॥७॥ अनुचराय स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ परंपरेन्द्राय स्वाहा ॥ ९ ॥ ॐ अहमिन्द्राय स्वाहा॥१०॥ॐ परमार्हताय स्वाहा ॥११॥

ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥१२॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे-कल्पपते कल्पपते दिव्यमूर्ते दिव्यमूर्त्ते वज्रनामन् वज्रनामन् स्वाहा ॥ १३ ॥

इसतरहँ १३ आहूति दे वही पहिले लिखित आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे ।

अथ परमराजादिमंत्र ।

ॐ सत्यजाताय स्वाहा ॥ १ ॥ ॐ अर्हज्जाताय स्वाहा ॥ २ ॥ ॐ अनुपमेन्द्राय स्वाहा ॥ ३ ॥ ॐ विजयार्च्य-जाताय स्वाहा ॥ ४ ॥ ॐ नेमिनाथाय स्वाहा ॥ ५ ॥ ॐ परमजाताय स्वाहा ॥६॥ ॐ परमार्हताय स्वाहा॥७॥ ॐ अनुपमाय स्वाहा ॥ ८ ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे उग्रतेजः उग्रतेजः दिशांजन दिशांजन नेमिविजय नेमिविजय स्वाहा ॥ ९ ॥

इस तरह ९ आहूति दे वही आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे ।

अथ परमेष्ठिमंत्र ।

ॐ सत्यजाताय नमः ॥१॥ ॐअर्हज्जाताय नमः ॥२॥ ॐ परमजाताय नमः ॥३॥ ॐ परमार्हताय नमः ॥४॥ ॐ परमरूपाय नमः ॥५॥ ॐ परमतेजसे नमः ॥६॥

ॐ परमगुणाय नमः ॥७॥ ॐ परमस्थानाय नमः ॥८॥ ॐ परमयोगिने नमः॥९॥ ॐ परमभाग्याय नमः ॥१०॥ ॐ परमर्द्धये नमः ॥११॥ ॐ परमप्रसादाय नमः ॥१२॥ ॐ परमकांक्षिताय नमः ॥१३॥ ॐ परमविजयाय नमः ॥ १४ ॥ ॐ परमविज्ञानाय नमः ॥१५॥ ॐ परमदर्शनाय नमः ॥ १६ ॥ ॐ परमवीर्याय नमः ॥ १७ ॥ ॐ परमसुखाय नमः ॥१८॥ ॐ परमसर्वज्ञाय नमः ॥१९॥ ॐ अर्हते नमः ॥२०॥ ॐ परमेष्ठिने नमः ॥२१॥ ॐ परमनेत्रे नमो नमः ॥ २२ ॥ ॐ सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे त्रैलोक्यविजय त्रैलोक्यविजय धर्ममूर्ते धर्ममूर्ते धर्मनेमे धर्मनेमे स्वाहा ॥ २३ ॥

इस प्रकार २३ आहूति देकर वही आशीर्वाद सूचक मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे।

इस तरहँ (३३+८+११+१५+१३+९+२३) ११२ आहूति और ७ आहूति आशीर्वादकी ऐसी १२० आहूति दे होम पूर्ण करे।

ये सात प्रकार पीठिकाके मंत्र हैं।

फिर गर्भाधान क्रियाके खास मंत्रोंको पढ़ आहूति देवे और एक २ आहूतिके साथ पति पत्नीपर पुष्प क्षेपे; स्वयं डाले व पूजा करनेवाला डाले।

गर्भाधान क्रियाके खास मंत्र ।

सज्जातिभागी भव ॥ १ ॥ सद्गृहभागी भव ॥ २ ॥
मुनीन्द्रभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रभागी भव ॥ ४ ॥
परमराज्यभागी भव ॥ ५ ॥ आर्हन्त्यभागी भव ॥ ६ ॥
परमनिर्वाणभागी भव ॥ ७ ॥

इस प्रकार होम करके शांतिपाठ, विसर्जन जैसा मंदिरोंमें करते हैं करे। बाद सर्व घरके पाहुनोंका यथायोग्य सत्कार कर व यथायोग्य दान देय आप पति पत्नी परम प्रीति सहित अपने २ पात्रमें भोजन करें। फिर दिनभर आनन्दमें बितावें, किसीसे कलह लड़ाई झगड़ा व शोक विषाद न करें और न पापोंके चिन्तवनमें समय बितावें। रात्रिको पत्नी सर्व शृंगार किये हुए पतिसे प्रेम प्रगट करे। विषयानुराग विना सच्चे प्रेमके साथ पुत्रोत्पत्तिकी कांक्षासे पति पत्नी संभोग करें।

यह गर्भाधान क्रियाकी रीति है। इस संस्कार द्वारा जो गर्भ रहेगा उसी समय गर्भस्थित आत्माको पुद्गलपरमाणुओंद्वारा असर पहुंचेगा।

२. प्रीति क्रिया—दूसरा संस्कार।

गर्भके दिनसे तीसरे महीने यह दूसरी क्रिया की जाती है। इस दिन भी पहलेकी ही तरहँ दम्पति सुगंधित पदार्थोंसे स्नान कर, मंदिर जा, घर आ पूजाका विधान करें। जैसा कि गर्भाधान क्रियामें किया था वैसी ही पूजा तथा होम करे। पीठिकाके सात प्रकारके मंत्रों तक होम करे। फिर इस क्रियाके

नीचे लिखे खास मंत्र पढ़ आहूति देवे और पति पत्नीपर तथा पत्नी पतिपर पुष्प क्षेपे ।

त्रैलोक्यनाथो भव ॥ १ ॥ त्रैकालज्ञानी भव ॥ २ ॥ त्रिरत्नस्वामी भव ॥ ३ ॥

फिर शांति विसर्जन करके दान देवे भोजन करे, करावे । इस क्रियासे धार्मिक प्रीति पैदा करनेका अभिप्राय है और बालकपर इसीका असर डालना है । इस दिन याने प्रीति क्रिया करनेके दिनसे मकानके द्वारपर तोरण बांधे तथा दो पूर्ण कुंभ स्थापित करे और यदि योग्यता हो तो नित्य बाजे बजवावे, उच्छव करे ।

३. सुप्रीतिक्रिया—तीसरा संस्कार ।

गर्भाधानसे ५ वें महीने सुप्रीति क्रिया करे । इस क्रियामें भी पहिलेकी भांति पूजापाठ होमादि करे । सात प्रकारके पीठिकाके मंत्रोंतक वही विधि है । फिर इस क्रियाके निम्न लिखित खास मंत्र पढ़ होम करे और पुष्प क्षेपे ।

अवतारकल्याणभागी भव ॥ १ ॥ मन्दरेन्द्राभिषेकक-ल्याणभागी भव ॥ २ ॥ निष्क्रांतिकल्याणभागी भव ॥ ३ ॥ आर्हन्त्यकल्याणभागी भव ॥ ४ ॥ परमानिर्वाण-कल्याणभागी भव ॥ ५ ॥

इस भांति पूजा करके प्रेमपूर्वक दान देय आहार करें । यह क्रिया परम प्रीति बढ़ानेवाली है ।

४. धृति क्रिया--चौथा संस्कार ।

यह क्रिया गर्भसे ७ वें महीने की जाती है । इसमें भी पहिलेकी तरहँ पूजापाठ होमादि करे । सात पीठिकाके मंत्रों तक वही विधि है । फिर इस क्रियाके नीचे लिखे मंत्र पढ़ आहूति दे पुष्प क्षेपे ।

सज्जातिदातृभागी भव ॥ १ ॥ सदगृहदातृभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रदातृभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रदातृभागी भव॥४॥परमराज्यदातृभागी भव ॥५॥ आर्हन्त्यदातृभागी भव ॥ ६ ॥ परमनिर्वाणदातृभागी भव ॥७॥

फिर शांतिपाठ विसर्जन करके दान देय आहार करे, करावे । यह क्रिया धैर्य्य प्रदान करनेवाली है ।

५. मोदक्रिया--पाँचवा संस्कार ।

यह क्रिया गर्भके दिनसे ९ वें मास करनी होती है । इसमें भी पहिलेकी तरहँ सात पीठिकाके मंत्रोंतक होम करके फिर इस क्रियाके नीचे लिखे खास मंत्र पढ़के आहूति देवे और पुष्प क्षेपे ।

सज्जातिकल्याणभागी भव ॥ १ ॥ सदगृहकल्याणभागी भव ॥ २ ॥ वैवाहकल्याणभागी भव ॥ ३ ॥ मुनीन्द्रकल्याणभागी भव ॥ ४ ॥ सुरेन्द्रकल्याणभागी भव ॥ ५ ॥ मंदराभिषेककल्याणभागी भव ॥ ६ ॥ यौवराज्यकल्याणभागी भव ॥ ७ ॥ महाराज्यकल्याण-

भागी भव ॥ ८ ॥ परमराज्यकल्याणभागी भव ॥ ९ ॥ आर्हन्त्यकल्याणभागी भव ॥ १० ॥

पश्चात् शांति विसर्जन करे। फिर गर्भिणी स्त्री अपने उदरमें गंधोदक लगावे। पति नीचे लिखा मंत्र पढ़ पत्नीके उदरको छुए और उसी मंत्रको गंधोदकसे उसके पेटपर लिखे।

ॐ कं ठं ह्रः यःअसिआउसा गर्भार्भकं प्रमोदेन परिरक्षत स्वाहा।

फिर पत्नीके हाथमें णमोकार मंत्र पढ़ रक्षाका सूत्र बांधे। इस दिन घरमें मंगलाचार करे,दान देय, आहार करे, करावे तथा गीत गावें, वादित्र बजावावें।

गर्भिणी स्त्रीके कर्तव्य।

५ वें महीनेसे गर्भिणी स्त्री बहुत ऊंची जमीनपर चढ़े उतरे नहीं, नदी तरके न जावे, गाड़ीपर न बैठे, कठिन दवाई न खावे, खार पदार्थ न खावे,मैथुन सेवन न करे,बोझा न ढोवे।

पतिका कर्तव्य।

गर्भिणी स्त्रीके पतिको उचित है कि देशांतर न जावे, ऐसा किसी नए मकान आदिका काम शुरू न करे, जिससे छुट्टी न पा सके। गर्भिणीकी सदा रक्षा करनी उचित है।

६. प्रियोद्भवक्रिया—छठा संस्कार।

यह क्रिया जब बालक जन्मे तब करनी होती है। इस

दिन घरमें पहिलेकी तरहँ पूजन होनी चाहिये। गृहस्थाचार्य अथवा कोई द्विज पूजन करे। पिता व कुटुम्बीजन सामने रहें। जब सात पीठिकाके मंत्रोंतक होम हो चुके तब नीचे लिखे मंत्रोंको पढ़ आहूति देवे।

दिव्यनेमिविजयाय स्वाहा। परमनेमिविजयाय स्वाहा। आर्हत्यनेमिविजयाय स्वाहा।

फिर भगवानके गंधोदकसे बालकके अंगको छींटे देवे। यदि घरमें प्रतिमाजी व यंत्र न हो तो श्रीमंदिरजीसे गंधोदक मंगा लेवे। फिर पिता बालकके सिरको स्पर्श करे और आशीर्वाद देवे। अशीस देते समय पिता इस तरहँ कहे:—

कुलजातिवयोरूपगुणैः शीलप्रजान्वयैः। भाग्याविधवतासौम्यमूर्तित्वैः समधिष्ठिता॥ सम्यग्दृष्टिस्तवाम्बेयमतस्त्वमपि पुत्रकः। सम्प्रीतिमाप्नुहि त्रीणि प्राप्य चक्राण्यनुक्रमात्॥ १११-११२॥

यदि संस्कृतमें कहते न बने तो भाषामें इस तरहँ कहे:—

" तेरी माता कुल शुद्धि, जाति कुल शुद्धि, वय, रूप, शील इत्यादि गुणनिकर मंडित, उत्तम संतानकी उपजावनहारी, भाग्यवती, सौभाग्यवती, विधिमार्गकी प्रवृत्ति करनहारी, महा सौम्यमूर्ति, सम्यग्दर्शनकी धारक, अणुव्रतकी पालनहारी, महा योग्य। अरे! हे पुत्र तू हूं दिव्यचक्र जो इन्दुपद अर विजयचक्र जो चक्रवर्ती पद अर परमचक्र जो तीर्थेश्वर पद

इन तीन चंक्रनिका अनुक्रमसे धारक हूज्यो।" पुत्रके अंगको छूकर उसके रूपमें अपना साक्षात् रूप देख स्नेहधारि यह कहेः—

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादपि जायसे। आत्मा वै पुत्र-नामाऽसि स जीव शरदः शतम् ॥ ११४ ॥

अथवा भाषामें इसतरह कहेः—हे पुत्र! तू मेरे अंगतैं उपज्या है, हृदयथकी उपज्या है, मानूं मेरा आत्मा ही है, सो घने वर्ष जीव।

फिर दूध घीसे बना हुआ अमृत लेकर उससे बालककी नाभिको सींचे और नाभि-नाल काटे, उस समय यह अशीस देवेः—

घातिजयो भव, श्रीदेव्यः ते जातक्रिया कुर्वन्तु।" इसका भावार्थ यह है कि, "घातिया कर्म जीते तथा श्रीदेवी तेरी जन्म-क्रिया करे।"

फिर बहुत यत्नके साथ बालकके शरीरमें सुगंधित चूर्ण याने उबटना लगाकर शोभित करे। फिर सुगंधित जलसे बालकको स्नान करावे उस समय यह मंत्र पढ़े "मंदिराभि-षेकार्हो भव।" फिर पिता बालकके सिरपर अक्षत डाले और अशीस कहे "चिरंजीवयात्।"

फिर औषधियोंसे मिलेहुए घीको बालकके मुंहमें माता तथा अन्य कुटुम्बीसहित पिता लगावे। उस समय यह मंत्र पढ़े "नश्यात् कर्ममलं कृत्स्नं।"

फिर बालकका मुंह माताके आंचल (स्तन) में लगावे, तब यह मंत्र पढ़े " विश्वेश्वरा स्तन्य भागी भूयात् । "

इस दिन जन्मका उत्सव करे, दान देवे। बालकका जरापटल नाभि–नालिसहित ले जा कर किसी पवित्र धान्य उपजने योग्य भूमिको खोदकर गाड़े। भूमि खोदने पहिले यह मंत्र पढ़े "सम्यग्दृष्टे सर्वमातृ वसुंधरे स्वाहा।" यह मंत्र पढ़कर पहिले अक्षत और जल गड्ढेमें डाले। फिर जरापटल और नाभि–नाल गाड़े। इनके रखनेके पहले पांचों रंगके रत्न नीचे रक्खे। फिर जरापटलादि रक्खे तब यह मंत्र पढ़े।

" त्वत्पुत्रा इव मत्पुत्रा भूयात्सुचिरजीविनः। "

फिर क्षीरवृक्ष बड़ पीपल आदिकी शाखा उसी जमीनमें रक्खे, गड्ढा बन्द करे।

इधर माताको उष्ण याने गर्म जलसे स्नान करावे, तब यह मंत्र पढ़े।

" सम्यग्दृष्टे सम्यग्दृष्टे आसन्नभव्ये आसन्नभव्ये विश्वेश्वरे विश्वेश्वरे ऊर्जितपुण्ये ऊर्जितपुण्ये जिन-माता जिनमाता स्वाहा। "

इस प्रकार जन्मके दिन क्रिया की जावे।

पूजा करानेवाला द्विज पितासे सब काम करावे। जहां अर्हंत आदिकी पूजाका विधान हो उसे द्विज आप करे। *

---

*नोट–आदिपुराणमें सर्व क्रिया पिता ही को करनी लिखा है। चूंकि बालकके जन्मसे वर्तमान प्रवृत्तिके अनुसार पिताको सूतक लग जाता है, इस लिये पूजा सम्बन्धी क्रिया गृहस्थाचार्य करे। सम्पादक।

जन्मसे तीसरे दिन पिता उस बालकको रात्रिके विषैं हाथमें लेकर ऊंचा करके नक्षत्रोंकर मंडित आकाश दिखावे, तब यह मंत्र पढ़े "अनंतज्ञानदर्शी भव"।

७. नामकर्म—सातवां संस्कार।

जन्मके दिनसे १२ वें दिन बालकका नाम रक्खे। नाम बहुत सुन्दर रक्खे, इस दिन भी ऊपर कहे प्रमाण पूजा व होम सात प्रकार पीठिकाके मंत्रोंतक करे। फिर नीचे लिखे मंत्र पढ़कर बालकके सामने आहूति देवेः—

"इत्यष्टसहस्रनामभागी भव। विजयनामाष्टसहस्रभागी भव। परमनामाष्टसहस्रभागी भव।"

फिर गृहस्थाचार्य व द्विज १००८ नाम जो सहस्रनाममें आते हैं अथवा अन्य शुभ नाम कागज़के अलग २ टुकड़ोंपर लिखकर रख दे और किसी सदाचारी मनुष्य व बालक द्वारा उनमेंसे १ पत्र उठवा ले। उसमें जो नाम निकले वही नाम पुत्रका रक्खे। नाम सुन्दर हो, जैसे जिनदास, शुभचंद्र, ज्ञानचंद्र, रत्नज्योति आदि।

इस दिन भी सर्वको दान देय संतोषित कर पिता आहार पान करे।

८. बहिर्यानक्रिया—आठवां संस्कार।

दूसरे, तीसरे अथवा चौथे महीने ठीक मुहूर्त और अनुकूल दिनमें प्रसूति—घरसे बालकको बाहर लाया जावे। आजकल लोग एक मास भी नहीं बीतता है कि बालकको प्रसूति—घरसे बाहर कर लिया करते हैं। ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि प्रसूति—घरके बाहर आ जानेसे माताका ध्यान दूसरी बातोंपर चला जाता है। प्रसूति—घरमें माताका यह फ़र्ज़ है कि पुत्रकी पालना भले प्रकार करे और आप भी आराम पाती हुई शरीरकी निर्बलताको दूर करे।

इस दिन भी पहिलेकी तरह पूजा होम करे। फिर माता अथवा धाय बालकको स्नानादि कराय योग्य वस्त्र पहिराय प्रसूति—घरसे बाहर लावें और होम कुंडके समीप सविनय माता बालक सहित बैठे। उस समय नीचे लिखे मंत्र पढ़ आहूति देवे। उपनयनिष्क्रांतिभागी भव ॥ १ ॥ वैवाहनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ४ ॥ मंदराभिषेकनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ५ ॥ योवरनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ६ ॥ महाराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ६ ॥ परमराज्यनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ७ ॥ आर्हन्त्यनिष्क्रान्तिभागी भव ॥ ८ ॥

फिर सर्व बंधुजन कुटुम्बी हर्षसे बालकको देखें और उसके

हाथमें द्रव्य देवें। इसका अभिप्राय यह है कि आगामी कालमें यह पिताका धन पावे।

फिर सर्व कुटुम्बी-जन मिलके मातासहित बालकको धूम-धामके साथ श्रीजिनमन्दिरमें ले जाँय, दर्शन करावें। यदि यह न बन सके तो घरमें जो चैत्यालय हो उसीमें दर्शन करावें। दर्शन कराते समय यह मंत्र पढ़ें।

ॐ नमोऽर्हते भगवते जिनभास्कराय तव मुखं बालकं दर्शयामि दीर्घायुष्यं कुरु कुरु स्वाहा।

फिर लौटकर दानपूर्वक बंधुजनोंका सम्मान करके आहारपान करे।

९. निषद्याक्रिया—नवां संस्कार।

पांचवें महीने अथवा जब बालक बैठने योग्य हो जावे तब यह क्रिया करनी चाहिये। इस क्रियाका यह मतलब है कि यह बालक विद्याके सिंहासनमें बैठने योग्य होवे। इसकी विधि यह है कि पहलेकी तरह पूजन होम पीठिकाके मंत्रोंतक करके फिर नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करे।

दिव्यसिंहासनभागी भव ॥ १ ॥ विजयसिंहासन-भागी भव ॥ २ ॥ परमसिंहासनभागी भव ॥ ३ ॥

फिर अक्षत बालकके मस्तकपर डाल, उस बालकको पलं-गपर बैठावे जिसपर कि रुईके कोमल बिछौने बिछे होवें। इस दिन घरमें मंगल गीत गाये जावें।

१०. अन्नप्राशन क्रिया—दसवां संस्कार।

जब बालक जन्मसे ७, ८ व ९ महीनेका हो जाय तब उसको अन्नके आहारका प्रारम्भ करना चाहिये। जब तक यह क्रिया न हो जाय तबतक अन्न नहीं खिलाना चाहिये।

इस दिन भी पहिले की भांति पूजा व होम पीठिकाके मंत्रों तक करके फिर नीचे लिखे मंत्रोंसे होम पूजा करके बालकके ऊपर अक्षत डाल उसको सुवस्त्रोंसे सुशोभितकर अन्न शुरू करावें।

दिव्यामृतभागी भव ॥ १ ॥ विजयामृतभागी भव ॥ २ ॥ अक्षीरामृतभागी भव ॥ ३ ॥

इस दिन भी घरमें मंगलाचार करे।

११ व्युष्टिक्रिया अथवा वर्षवर्धन क्रिया—ग्यारहवां संस्कार।

जब बालक जन्म—दिनसे १ वर्षका हो जाय तब यह क्रिया करनी चाहिये। आजके दिन इष्टबंधु मित्रजनोंको बुलाना चाहिये। पहिलेकी तरहँ पूजन होम करके नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करके आशीर्वाद—सूचक अक्षत, वस्त्रोंसे सज्जित बालकके ऊपर क्षेपे।

उपनयनजन्मवर्षवर्धनभागी भव ॥ १ ॥ वैवाहनिष्ठवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ २ ॥ मुनीन्द्रजन्मवर्षव-

र्द्धनभागी भव ॥ ३ ॥ सुरेन्द्रजन्मवर्षवर्द्धनभागी-भव ॥ ४ ॥ मन्दराभिषेकवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ५ ॥ यौवराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ६ ॥ महाराज्यवर्ष-वर्द्धनभागी भव ॥ ७ ॥ परमराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ८ ॥ आर्हन्त्यराज्यवर्षवर्द्धनभागी भव ॥ ९ ॥

इस प्रकार पूजन विसर्जन करके यथाशक्ति दान देवे, बंधुजनोंका सम्मान करे, उन्हें आहार कराय आप भोजन करे और घरमें मंगल गीत गवावे।

१२. चौलिक्रिया अथवा केशवायकर्म (मुंडनक्रिया) बारहवां संस्कार।

जब बालकके केश बढ़ जावें तब यह मुंडनक्रिया कराई जावे। इसके लिये कोई खास समय नियत नहीं है, किन्तु तेरहवां संस्कार बालकके पांचवें वर्ष पूर्ण होनेपर होता है। इसलिये उसके पहिले २ जब बालक दो तीन व ४ वर्षका होय तब यह क्रिया यथायोग्य की जावे। शुभ दिन देखकर मुंडन कराना योग्य है। पहलेकी तरहँ पूजा होमादि करे। पीठिकाके मंत्रोंके बाद नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करे। बालक व बंधुजन वस्त्रोंसे सज्जित निकट बैठें।

उपनयनमुण्डभागी भव ॥ १ ॥ निर्ग्रन्थमुंडभागी भव ॥ २ ॥ निष्क्रान्तिमुंडभागी भव ॥ ३ ॥ परम-

निस्तारककेशभागी भव ॥ ४ ॥ सुरेन्द्रकेशभागी भव ॥ ५ ॥ परमराज्यकेशभागी भव ॥ ६ ॥ आर्हन्त्यराज्यकेशभागी भव ॥ ७ ॥

फिर भगवानके गंधोदकसे बालकके केश गीले करके आशिकाके अक्षत बालकके सिरपर डाले जावें। फिर बालक दूसरे स्थानपर जावे और उस समय चोटी सहित बिलकुल सिर मुंडन कराया जावे। इधर विसर्जन हो जाय। फिर बालकको गंध-जलसे स्नान कराके चंदनादि सुगंध द्रव्य बालकके मस्तकादि अंगोंपर लगावे, तथा योग्य आभूषण पहिरावे। सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित कर सर्व बंधुजन मिलके उस बालकको श्रीमुनिमहाराजके निकट ले जावें। यदि मुनि महाराज न हों तो श्रीजिनमंदिरजीमें गाजे बाजके साथ ले जावें और वहां दर्शन व प्रणाम तथा सामग्रीकी भेंट कराय फिर गृहस्थाचार्य या द्विज बालकके मस्तकपर चोटीके स्थानपर चंदनसे साँथिया कर दे, जिसका प्रयोजन यह है कि अब इसको चोटी रखनी होगी। फिर श्री मंदिरजीसे सर्व घर लौट आवें और दानादि करें, बंधुजनोंको आहार कराय आप भोजन करें। घरमें मंगलगीत गाए जावें।

इस क्रियामें आभूषण पहिरानेका वर्णन लिखा है, सो आभूषण ऐसे मुलायम होने चाहिये, जिससे बालकको कष्ट न हो। आभूषणों में आजकल कुंडल व बाले कानोंमें पहने

जाते हैं, परन्तु आदिपुराणमें कानोंके बींधे जानेकी कोई विधि नहीं है; इससे यह प्रगट होता है कि प्राचीन कालमें विना कानोंको बींधे ही कानोंपर ऊपरसे ही कुंडल पहनाते होंगे। परन्तु 'सोमसेन त्रिवर्णाचार'में कानोंके व नाक (कन्याके सम्बन्धमें) के बींधे जाने की विधि व मंत्र लिखा है। मालूम होता है कि उस समय यह रीति प्रचलित होगी। हमारी सम्मतिमें यदि बींधनेकी पृथा बन्द की जावे तो बालकोंको कानोंके बिंधानेका कष्ट न हो। तथापि सोमसेनजीके लिखे अनुसार हम उस मंत्रको लिख देते हैं। जबतक यह पृथा न छोड़ी जाय तब तक जैन-मंत्रके अनुसार ही यह कार्य्य किया जाय। कर्ण-बेध क्रियाको सोमसेनजीने नामक्रियाके साथ ही करना कहा है तथा नामक्रियाको जन्मसे ३२ वें दिन भी कर सक्ते हैं, ऐसा कहा है। चूंकि मुंडनक्रियाके साथ ही यह क्रिया होनेकी पृथा है इसलिये यहींपर वह मंत्र लिखा जाता है। जिस समय मुंडन कराया जाय उसी समय कर्णबेध भी हो सक्ता है।

कर्णबेध मंत्र।

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं बालकस्य हः कर्णनासावेधनं करोमि अ सि आ उ सा स्वाहा।

१३. लिपि संख्यान क्रिया—तेरहवां संस्कार।

जब बालक पांच वर्षका हो जाय तब यह क्रिया किसी

शुभ दिन विषैं की जाती है । यदि अध्यापक घरमें ही आकर पढ़ावे तब तो यह क्रिया घरहीमें की जाय, किन्तु जो किसी जैनशालामें पढ़ने जावे तो वहीं यह क्रिया की जाय । तब सर्व बंधुजनोंको एकत्र कर बालकको वस्त्राभूषणोंसे सज्जित कर गाजे बाजेके साथ शालामें ले जावें। वहीं पूजन और होमकी विधि की जाय । जैसा होमादि पीठिकाके मंत्रोंतक इसकी पूर्वकी क्रियाओंमें हुआ है वैसा ही यहां किया जाय। फिर नीचे लिखे मंत्रोंसे होम करके अक्षत बालकके ऊपर डाले जावें ।

शब्दपारगामी भव ॥ १ ॥ अर्थपारगामी भव ॥ २ ॥
शब्दार्थसम्बन्धपारगामी भव ॥ ३ ॥

फिर उपाध्याय बालकके हाथसे पहले 'ॐ' अक्षरको लिखवावे । लिखानेका विधान यह है कि अक्षतोंको कलमसे जोड़ कर अक्षर बनवावे, व केशरसे कलम द्वारा अक्षत, सोने, चांदी, व धातु पाषाणकी पाटीपर लिखवावे । ॐ के पीछे ॐ नमः सिद्धेभ्यः' लिखवावे तथा बँचवावे । फिर अन्य अक्षर भी लिखा व बँचा सक्ता है । बालकको अक्षरोंकी लिपि--पुस्तक दी जाय और उसके रखनेकी विधि बताई जावे । जिस समय बालकको गुरु अक्षराभ्यास करावे उस समय बालक गुरुके सामने वस्त्रादि द्रव्य भेंट रक्खे और हाथ जोड़ प्रणाम करे, विनयसे गुरुके सामने बैठे । उस समय बालकको पिता यथायोग्य दान करे, सर्व बंधुजनोंको व गुरुके अन्य शिष्योंको मिष्टान्नादिसे

सम्मानित करे, याचकोंको तृप्त करे। फिर गाजे बाजे सहित घरको लौटे, यथायोग्य बंधुओंका सत्कार कर भोजन किया जाय।

आजके दिनसे प्रतिदिन बालक अक्षर व अंक आदिका अभ्यास करे अर्थात् इसके आगे करीब ३ वर्षमें होनेवाली जो उपनीति क्रिया है उसके पहिले २ अपनी (Primary Education) प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण कर ले; याने अक्षर, शब्द, वाक्योंका ठीक २ ज्ञान, लिखना, बांचना अर्थ समझना, जोड़, बाकी, गुणा, भाग आदि गणित सीखे। यदि एकके सिवाय अन्य लिपिके शास्त्रोंका भी आगे अभ्यास करनेका इरादा होय तो उन लिपियोंको भी इस कालमें सीख लेवे तथा साधारण धर्मकी शिक्षा भी लेता रहे, जिससे अपने जैनपनेको पहचानता जाय। नित्य दर्शन, जाप आदि व खानपान क्रियाओंमें ठीक२ वर्ते। इस कालमें बालक मातापिताके पास ही रहता है, परन्तु विद्याका अभ्यास अध्यापक द्वारा घरमें व उसके स्थानपर लेता है। प्राथमिक शिक्षा (Primary Education)में इस बालकको उपनीति क्रियाके पहिले२ चतुर हो जाना चाहिये। इसीलिये ३ वर्षका काल नियत किया गया है।

१४. उपनीति क्रिया (जनेऊ क्रिया)—चौदहवां संस्कार।

गर्भके दिनसे जब बालक ८ वर्षका हो जाय तब शुभ नक्षत्रमें में यह यज्ञोपवीत क्रिया करनी योग्य है। त्रिवर्णाचारमें यह

भी विधि है कि ब्राह्मण ८ वें वर्षमें, क्षत्री ११ वें वर्षमें, तथा वैश्य गर्भसे १२ वें वर्षमें यज्ञोपवीत करावे। तथा अंतकी हद्द ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्यके लिये क्रमसे १६, २२ और २४ वर्ष हैं, परन्तु आदिपुराणके अनुसार तीनोंके लिये सामान्य काल ८ वर्ष है।

इस दिन श्रीजैनमंदिरजीमें व किसी खास मंडपमें जहां श्रीजिनविम्ब विराजमान हो और बंधुजनादि बैठ सकें वहां यह क्रिया होनी चाहिये। गृहस्थाचार्य वा प्रवीण द्विज या श्रावक यज्ञोपवीतकी सर्व क्रिया करावे। पहली क्रियाओंकी तरह पूजा व होम सात पीठिकाके मंत्रोंतक किया जाय। जिसका यज्ञोपवीत हो वह बालक चोटी सिवाय अन्य अपने सब केशोंका मुंडन कराय स्नान कर गृहस्थाचार्यके निकट आवे तब द्विज नीचे लिखे मंत्रोंसे आहूति देता हुआ उसके ऊपर अक्षत डाले और फिर विकाररहित सफेद वस्त्रादि पहिरावे, आदिकी क्रिया करे।

परमनिस्तारकलिंगभागी भव ॥ १ ॥ परमर्षिलिंगभागी भव ॥२॥ परमेंद्रलिंगभागी भव ॥ ३ ॥ परमराज्यलिंगभागी भव ॥ ४ ॥ परमार्हन्त्यलिंगभागी भव ॥५॥ परमनिर्वाणलिंगभागी भव ॥ ६ ॥

पहले कमरमें मूंजका डोरा तीन तारका बटा हुआ (लाल हो तो शुभ है) नीचे लिखा मंत्र पढ़ तीन गांठ देकर बांधे।

तीन गांठ देनेका यह मतलब है कि यह रत्नत्रयका चिह्न है।

ॐ ह्रीं कटिप्रदेशे मौंजीबन्धनं प्रकल्पयामि स्वाहा।

फिर सफेद कपड़ेकी कोपीन मौजीको पकड़के नीचे लिखा मंत्र पढ़के अक्षत डालते हुए बांधे।

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकर परमेश्वराय कटि सूत्रं कौपीनसहितं मौंजीबन्धनं करोमि पुण्यं बंधो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा।

फिर गलेमें यज्ञोपवीत नीचे लिखा मंत्र पढ़के डाले। यज्ञोपवीत कच्चे सूतका हो, जो पीला रंगा जाय और सात तारका बनाया जाय, जिसका प्रयोजन यह है कि यह बालक ७ परम स्थानका भागी हो।

ॐ नमः परमशांताय शांतिकराय पवित्रीकृतार्हं रत्न-त्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

फिर मुंडे हुए सिरमें चोटीको गांठ लगावे, मस्तकपर नीचे लिखा मंत्र पढ़ पुष्पमाला रक्खे वा पुष्प डाले। मस्तकपर तिलक करे और १ सफेद धोती और सफेद दुपट्टा पहरावे। मूंडनेका मतलब यह है, यह मन वचन कायको मूंडने अर्थात् वशमें रखनेकी इच्छाको वृद्धि करे।

ॐ नमोऽर्हते भगवते तीर्थंकरपरमेश्वराय कटिसूत्र परमेष्ठिने ललाटे शेखरशिखायां पुष्पमालां च दधामि मां परमेष्ठिनः समुद्धरन्तु ॐ श्रीँ ह्रीं अर्हं नमः स्वाहा ।

उज्ज्वल धोई धोती दुपट्टा देनेका मतलब यह है कि यह अरहंतके पवित्र कुलका धारी है। फिर वह बालक एक अर्घ भगवानको चढ़ावे और अक्षतादि सहित हाथ जोड़कर गृहस्थाचार्य्यसे व्रत मांगे, तब द्विज नीचे लिखा मंत्र तीन बार पढ़कर णमोकार मंत्र देवे, तथा पांच स्थूल पापोंके त्यागका उपदेश दे और स्थूलपने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शील और तृष्णाका घटाव-ये पांच व्रत भले प्रकार समझाकर ग्रहण करावे। विद्याभ्यास करने तक पूरा ब्रह्मचर्य्य ग्रहण करावे।

ॐ ह्रीं श्रीँ क्लीँ कुमारस्योपनयनं करोमि अयं विप्रोत्तमो भवतु अ सि आ उ सा स्वाहा ।

तथा नीचे लिखी बातोंके न करनेका उपदेश देवे। और उसका दूसरा शुभ नाम रक्खे।

१. हरे काष्ठसे दन्त-धावन न करे। २. ताम्बूल न खावे। ३. सुरमा न लगावे। ४. हलदी आदि पदार्थोंको लगाकर स्नान न करे, केवल शुद्ध जलसे प्रतिदिन नहावे। ५. खाटपर न सोवे, तखत चटाई व भूमिपर अकेले सोवे। ६. दूसरेके अङ्गसे अपना अंग अकेले न छुवावे।

फिर वह बालक अग्निके उत्तरकी ओर खड़ा हो एक अर्घ चढ़ावे और अपने आसनपर बैठे। फिर पूजा विसर्जन की जाय और तब वह बालक द्विजकी आज्ञा ले भिक्षाका पात्र ले भिक्षा मांगनेको जावे। क्षत्रीका पुत्र अपने माता पितादिसे ही भिक्षा मांगे। ब्राह्मण व वैश्यका पुत्र तीन वर्णोंके गृहस्थियोंसे भिक्षा ले, गुरुके आश्रममें जावे। वहीं पहले श्रावककी क्रियाका ग्रंथ उपासकाध्ययन पढ़े। फिर व्याकरण, छंद, ज्योतिष, गणित अपने २ वर्णके योग्य पारमार्थिक और लौकिक विद्याका अभ्यास करे। शिष्य जिसके घर भिक्षा लेने जाय उसके आंगनमें जा "भिक्षांदेहि" ऐसा शब्द कहे। तब दातार अत्यन्त सम्मान पूर्वक तंदुलादि जो दे सो ले ले। इस तरहँ संतोष वृत्तिके साथ भिक्षासे उदर भरता हुआ और दिन रात गुरुके पास ब्रह्मचारीके रूपमें रहता हुआ विद्याभ्यास करे।

यज्ञोपवीत धारनेका विचार--जनेऊ अपने तालूके छेद से नाभितक लम्बा लटकता रहना चाहिये, नाभिके नीचे न जावे, न इससे छोटा हो। लघुशंका करते समय कानमें तथा दीर्घशंका समय सिरमें भी लपेट सक्ता है, ताकि अशुद्ध न होने पावे। शौच करने बाद व सूतक पातक होनेपर व अंगमें तेल लगाकर स्नान करनेपर जनेऊको गलेसे उतारकर अच्छी तरह धोवे, फिर पहिने। यदि जनेऊ तथा मौजीसूत्र टूट जावे तो दूसरा बदल ले और पुरानेको नदी व दूसरे बहते पानीमें डाल दे।

१५. व्रतचर्य्या–पन्द्रहवां संस्कार।

इस क्रियाका कोई खास दिन व मंत्र नियत नहीं है। इस क्रियाके कहनेका यह अभिप्राय है कि वह विद्यार्थी-ब्रह्मचारी कटिचिन्ह (मौजीबन्धन), उरुचिन्ह (जंघाचिन्ह), गलेका चिन्ह (जनेऊ) तथा सिरका चिन्ह (सिर मुंडा हुआ शिखा–सहित) ऐसे चार चिन्होंसहित गुरुके पास विद्याध्यायन करे। दृढ़ताईसे ब्रह्मचर्य्यव्रत पाले। अपने वीर्य्यकी भले प्रकार रक्षा करे। वीर्य्यका कभी भी खोटा उपयोग न करे। गरिष्ट भोजन न खावे। भूखसे कुछ कम भोजन करे। अपने कर्तव्यमें पूरा तल्लीन रहे। नाटक खेल नाच कूद न देखे, जिससे परिणामोंमें विकार पैदा हों। इस तरह कमसे कम ८ वर्षतक गुरुके पास खूब विद्याभ्यास करे। यदि अधिक कालतक विद्याभ्यास करता रहे तो कोई हर्ज़की बात नहीं है। विद्याके लाभमें खूब प्रवीण हो जावे। विद्याभ्यास करनेकी तो यही पद्धति है; परन्तु यदि गुरुके आश्रममें पढ़नेका साधन न हो तो यज्ञोपवीत कराकर रक्षकोंको योग्य है कि अपने पुत्रोंको कमसे कम ८ वर्षतक विद्याभ्यास करावें, यदि पढ़नेमें शौक बढ़ता जा रहा हो तो और अधिक पढ़ने देवें और घरमें भी उनको ब्रह्मचारीकी रीतिसे ही रखनेकी पूरी २ चेष्टा करें। विद्यार्थियोंको धार्मिक विद्याके साथ २ लौकिक विद्याका पूर्ण विद्वान, विद्यार्थीकी रुचिके अनुसार, विद्याके विभागमें बनाना चाहिये और जबतक विद्यारूपी स्त्रीकेलाभमें

विद्यार्थी लवलीन रहे तबतक भूलकरके भी उसके सामने विवाहकी चरचा तक न करनी चाहिये, सगाई व विवाह करना तो दूर ही रहा। विद्याभ्यास करनेवाले विद्यार्थीको मांस, मदिरा, मधु आदि अभक्ष्य पदार्थोंके खानेका त्याग होता है।

१६. व्रतावतारण क्रिया—सोलहवां संस्कार।

विद्याभ्यास कर लेनेके बाद विद्यार्थी गुरुकी आज्ञा लेकर माता पिताके निकट आता है। यदि उसके परिणाम होते हैं कि मैं अब ब्रह्मचारी ही रहूं अथवा उत्कृष्ट श्रावक व मुनिके व्रत पालूं तो वह अपने मातापितासे आज्ञा लेकर उनको संसारकी अनित्यता दिखाकर श्रीआचार्यके निकट रह व्रतका पालन करता है। और यदि उसके परिणाम विरक्त नहीं होते तो वह विवाहकी इच्छा करके घरमें रहता है। जनेऊ-दाता गृहस्थाचार्य्यकी आज्ञासे पहिलेके व्रतोंको उतारता है, वस्त्राभरण व पुष्पमालादि अपने कुलके योग्य धारण करता है; परन्तु मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलका त्याग इसके सदा रहता है तथा पंच अणुव्रतोंको सदाकाल पालता है और देवपूजा दानादि कर्मको करते हुए अपने २ कुलके योग्य व्यापारादि में प्रवर्तन करता है। इसके पश्चात् मातापिता उसके योग्य कन्या तलाश करते हैं। जिसके साथ प्रसन्न होकर वह विवाह-संस्कार करता है।

१७. विवाह क्रिया-सत्रहवां संस्कार ।

योग्य कन्याका योग्य वरके साथ विवाह होना भी एक धर्म कार्य है । जैसा श्रीआदिपुराण पर्व १५ में कहा है:-

देवेमं गृहिणां धर्मं विद्धि दारपरिग्रहम् ।
संतानरक्षणे यत्नः कार्यो हि गृहमेधिनाम् ॥

अर्थात् संतानके लिये ये विवाह-संस्कार गृहस्थियोंका धर्म है

कन्याके लक्षण ।

अन्यगोत्रभवां कन्यामनातङ्कां सुलक्षणाम् ।
आयुष्मतीं गुणाढ्यां च पितृदत्तां वरेद्वरः ॥

अर्थात् दूसरे गोत्रमें जन्मी हो, रोग रहित हो, सुलक्षणवान हो, दीर्घायु हो तथा गुणवती हो (विद्याभ्याससे गृहधर्म और आत्मीक धर्ममें चतुर हो) तथा पिताद्वारा दी गई हो ।

वरके लक्षण ।

वरोपि गुणवान् श्रेष्ठो दीर्घायुर्व्याधिवर्जितः ।
सुकुली तु सदाचारो गृह्यतेऽसौ सुरूपकः ॥

अर्थात् वर गुणवान (धर्मकार्य्य तथा लौकिक आजीविकादि कार्य्यमें चतुर हो), कन्यासे बड़ा, दीर्घायु, नीरोगी, सुकुली, सदाचारी तथा सुरूपवान हो ।

विवाह योग्य आयु ।

कन्याको १२ वर्षकी उमरमें विवाह देना चाहिये, उससे

पहले नहीं। यदि रजस्वलाधर्म होनेकी संभावना न हो तो १२ से अधिक अवस्थामें भी विवाह हो सक्ता है। रजस्वला-धर्म होनेकी संभावनापर कन्याको अवश्य विवाह देना चाहिए। कन्याकी उमरसे वरकी उमर कमसे कम ४ वर्ष अधिक व अधिकसे अधिक ८ वर्ष अधिक हो तो ठीक है।

यद्यपि माता-पिता कन्या व पुत्रके विवाहके अधिकारी हैं, तथापि कन्या व वरको भी अपने २ आगामी सम्बन्धीका हाल वाग्दानके पहले ही मालूम हो जाना चाहिये; क्योंकि विवाह होनेपर दोनोंमें एकता रहने ही से गृह-धर्मकी शोभा होगी। यदि किसी वर व कन्याका मन परस्पर न मिले तो माता पिताको उनसे पूछकर उनका वाग्दान नहीं करना चाहिये, किन्तु अन्य सम्बन्ध खोजना चाहिए।

वाग्दान क्रिया।

जिस मासमें लग्न होनेका हो उसके पहले पहले वाग्दान हो जाना चाहिये। सर्व सम्बन्धियोंके सम्मुख कन्या और वरके पिता किसी स्थानपर अपने २ इष्ट देवकी पूजा करके एकत्र हों, वहां गृहस्थाचार्य भी हो। तथा पहले कन्याका पिता यह वचन कहे कि " आप सबके सामने मैं अपनी इस कन्याको सद्धर्मकी वृद्धिके लिए अपने मन, वचन, कायसे आपके पुत्रको देना चाहता हूं। " यह वचन सुन वरका पिता ऐसा कहे, " मैं सर्व मंडलीके सम्मुख आपकी कन्याको अपने पुत्रके अर्थ वंश-वृद्धिके हेतुसे स्वीकार करता हूं। "

फिर कन्याका पिता अपने इस वचनके संकल्पको दिखलानेके लिये वरके पिताके हाथमें फल और अक्षत तथा तांबूल देवे। फिर वरका पिता भी उसे फल, अक्षत व ताम्बूल देवे।

सगाई (गोद लेना।)

कन्याका पिता किसी शुभ दिनमें वरको अपने घर बुलावे। उस दिन कन्याका पिता वरको वस्त्रादि देवे, टीका करे। घरमें पहलेकी भाँति देव-पूजा तथा सप्तपीठिकाके मंत्रोंतक होम करना चाहिये।

इसी प्रकार वरका पिता भी किसी शुभ दिन कन्याको बुलावे और ऊपरके समान कार्य्य किया जाय।

लग्नविधि।

किसी शुभ दिनमें कन्याका पिता पंचोंके सम्मुख विवाह करनेकी लग्न निश्चय करके पत्रमें लिख सेवकके हाथ वरके पिताके घर भेजे। वरका पिता पंचोंके सामने उस लग्नपत्र को बांचकर सुनावे और सेवकको वस्त्रादि देवे।

सिद्धयंत्रका स्थापन।

जैसा पहली क्रियाओंमें कहा गया है कि इस यंत्रका स्थापन हरएक गृहस्थीके यहां होता ही है। यदि न हो तो विवाहके पहले यह सिद्ध यंत्र वर तथा कन्याके पिताके घरमें श्रीमंदिरजीसे यथायोग्य उत्सवके साथ लाया जाय अथवा

यदि नवीन स्थापना करनी हो तो स्थापित किया जाय और देव गुरु शास्त्रकी पूजा नित्य की जाय।

कंकण—बंधन विधि।

विवाहके तीन दिन पहले गृहस्थाचार्य नीचे लिखा मंत्र पढ़ वर और कन्याको हरएकके घरमें रक्षाबंधनके लिये कंकण बांधे। इस दिन भी पहलेकी भांति सप्त पीठिकाके मंत्रों तक पूजा व होम किया जाय।

जिनेन्द्रगुरुपूजनं श्रुतवचः सदा धारणं।
स्वशीलयमरक्षणं ददतुसत्तपो बृंहणम्॥

इति प्रथितषट्क्रियानिरतिचारमास्तां तवेत्यथ प्रथनकर्मणे विहितरक्षिकाबंधनम्।

मंडप तथा वेदीकी रचना।

कन्याका पिता ४ काठके थंभोंसे युक्त एक सुन्दर चौकोर वेदी बनवावे। उसे लाल वस्त्र और सूत से वेष्टित करे। बीचमें वेदी (चबूतरा) चार हाथ लम्बी, चौड़ी बनावे, जिसमें तीन कटनी कन्याके हाथसे एक २ हाथ ऊंची बनवावे। सबसे ऊपरकी कटनीपर सिद्धयंत्र स्थापित करे। बीचकी कटनी पर शास्त्र तथा नीचेकी कटनीपर आठ मंगल द्रव्य अर्थात् झारी, पंखा, कलश, ध्वजा, चमर, ठोणा, छत्र और दर्पण रक्खे। यदि ये मंगल द्रव्य चांदी व धातुके बने न हों तो आठ मंगल द्रव्योंका तोरण बांध दे तथा एक रकाबीमें

केशरसे चौसठ ऋद्धियोंके नाम लिखे अथवा नीचे लिखा वाक्य लिखे।

बुद्धिचारणाविक्रियातपः बलौषधिरसाक्षीणचतुःषष्टि-ऋद्धिधारकेभ्यो गुरुभ्यो नमः ।

तीसरी कटनीके आगे वेदीपर ही होमके लिये चौकोर तीर्थकुंड बनवावे। पूजा तथा होमकी सामग्री तय्यार रक्खे।

विवाह विधि ।

पाणिग्रहणके समय कन्या तथा वर और दोनोंके पिता माता और गृहस्थाचार्य ऐसे सात जीव रहने योग्य हैं। गृहस्थाचार्य नीचे लिखा मंत्र पढ़के प्राशुक जलसे भरे हुए यथासंभव नवरत्न तथा पुष्प गंधाक्षत व बिजौरा फलसे शोभित कलशको बीचकी कटनीपर शास्त्रकी उत्तरओर स्थापित करे।

ॐ अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणो मतेऽस्मिन् विधीयमानविवाहकर्मणि होममंडपभूमि-शुद्ध्यर्थं पात्रशुद्ध्यर्थं क्रियाशुद्ध्यर्थं शांत्यर्थं पुण्याह-वाचनार्थं नवरत्नगंधपुष्पाक्षतादिबीजपूरशोभितशुद्ध-प्राशुकतीर्थजलपूरितं मंगलकलशस्थापनं करोम्यहं झ्वीं क्ष्वीं हंसः स्वाहा ।

अब शुभ घड़ीमें बरात लेकर वर श्वसुरके घरपर आवे। वर बरातके दिन स्नानादि कर वस्त्रादिसे सुसज्जित हो

चैत्य–बिम्ब व सिद्धयंत्रकी तीन प्रदक्षिणा दे नमस्कार करके सर्व बरातियोंके साथ योद्धाकी भांति यथासंभव उत्सवके साथमें श्वसुरके द्वारपर आवे और द्वारपर जो तोरण (वन्दन-माल) बंधा हो उसको स्पर्श करे। फिर स्त्रियोंके साथ कन्या-की माता आवे। वरके मुखको देखकर वरके मस्तक ऊपर अक्षतादिकी अंजली फेंके और सरसों, पुष्प, मोती, दूब, अक्षत और दीपकोंके समूह सहित थाल लेकर आरती उतारे तथा मुद्रिका आदि कुछ भी आभूषण देवे। उसी समय वरका पिता कन्याके लिये लाये हुए वस्त्राभूषण कन्याकी माताको अर्पण करे। उसी समय कन्याको स्नान करा वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित की जावे।

फिर कन्याका मामा वरको लाकर वेदीके दक्षिणओर पूर्व मुखसे खड़ा कर दे। फिर कन्याको भी लाकर वरके सम्मुख खड़ी कर दे। गृहस्थाचार्य्य कोई भी मंगल पाठ व स्तोत्र पढ़े। तब कन्या सेहरा उठाकर वरका मुख देखे और वर कन्याका मुख देखे। फिर कन्या वरके गलेमें सुगन्धित पुष्पोंकी माला पहिरावे।

फिर पहले कन्याका मामा वरसे कहे, "मैं तुम्हारे चरणोंकी सेवाके लिये यह कन्या देना चाहता हूं।" फिर ऐसा-ही कन्याका पिता भी कहे, फिर कन्याके कुटुम्बके अन्य लोग भी ऐसा ही कहें। फिर कन्याका पिता अपने वंशको अपने परदादेसे गिनाता हुआ वरके परदादेसे बापतक नाम

लेता हुआ कहता है कि, "अमुककी यह कन्या सो अमुकके पुत्र जो तुमको देना चाहता हूं, सो तू उसे वर।"

वर सिद्धमहाराजको नमस्कार करके कहता है, "वृणोऽहम्" अर्थात् मैं वरी। फिर कन्याका पिता कहता है, "इसे धर्मसे पालन करना।" वर कहता है, "मैं धर्मसे, अर्थसे और कामसे इसका पालन करूंगा।" फिर कन्याका पिता जलकी भरी झारी हाथमें उठावे। तब दोनों पक्षके स्त्री पुरुष कहैं "वृणीध्वं वृणीध्वं वृणीध्वं" अर्थात् वरो वरो वरो। फिर गृहस्थाचार्य्य पिताकी ओरसे कहे, अमुक वर्षकी तिथि वारमें अमुक गोत्र नामवालामैं अपनी कन्याको प्रदान करता हूं। तब यह नीचे लिखा मंत्र पढ़कर झारीमेंसे जलकी धारा वरके हाथमें डाले। सर्व स्त्री पुरुष वर कन्याके मस्तकपर अक्षत क्षेपण करें।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते वर्द्धमानाय श्रीबलायुरारोग्यसंतानाभिवर्द्धनं भवतु, इमां कन्यामस्मै कुमाराय ददामि झ्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।

फिर गृहस्थाचार्य्य नित्यनियमपूजा, देवशास्त्रगुरुकी पूजा तथा सिद्धपूजा करे। पूजा हो चुकने पर वर और कन्या खड़े रहें अथवा शक्ति न हो तो बैठ जावें। सिद्धपूजाके बाद सात पीठिकाके मंत्रोंतक जैसा पहले लिखा है होम किया जावे। फिर कोई सुहागन स्त्री वर और कन्याका

गठजोड़ा करे अर्थात् दोनोंका वस्त्र बांधे तथा कन्याका पिता हल्दी व मेंहदी अपनी कन्याके बाएं और वरके दक्षिण हाथमें लगावे । फिर गृहस्थाचार्य्य णमोकारमंत्र पढ़ता हुआ कन्याका बांया हाथ नीचे और वरका दाहना हाथ ऊपर रखकर जोड़ दे । उस समय कन्याका पिता अपनी योग्यतानुसार दहेज देवे । फिर सात परमस्थानकी प्राप्तिके लिए वर कन्या वेदीकी सात प्रदक्षिणा देवे । सातवीं प्रदक्षिणा हो चुकने पर कन्याकी संज्ञा छूटकर वधूकी संज्ञा हो जाती है । फिर वर वधू वेदीके सामने खड़े हो जावें; तब गृहस्थाचार्य्य हाथमें कलश ले जल–धारा देता हुआ नीचे लिखे मंत्र पढ़कर शांति–धारा करे ।

ॐ पुण्याहं पुण्याहं । लोकोद्योतनकरा अतीतकालसंजाता निर्वाणसागरमहासाधुविमलप्रभशुद्धाभश्रीधरसुदत्तामलप्रभोद्धराग्निसन्मातिशिवकुसुमांजालिशिवगणोत्साहज्ञानेश्वरपरमेश्वरविमलेश्वरयशोधरकृष्णज्ञानमातिशुद्धमातिश्रीभद्रशांताश्चेति चतुर्विंशतिभूतपरमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ १ ॥

ॐ संप्रतिकालश्रेयस्करस्वर्गावरणजन्माभिषेकपारिनिष्क्रमणकेवलज्ञाननिर्वाणकल्याणविभूतिविभूषितमहाभ्युदयाः श्रीवृषभाजितशंभवाभिनन्दनसुमतिपद्मप्रभसु-

पार्श्वचंद्रप्रभ पुष्पदन्तशीतलश्रेयोवासुपूज्याविमलानंतधर्म शांतिकुंथ्वरमल्लिमुनिसुव्रतनमिनेमिपार्श्ववर्धमानाश्चेति चतुर्विंशातिवर्तमानपरमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ २ ॥

ॐ भविष्यत्कालाभ्युदयप्रभवाः महापद्मदेव-सुप्रभस्वयंप्रभसर्वायुधजयदेवोदयदेवप्रजादेवोदंकदेवप्र-श्नकीर्तिजय कीर्तिपूर्णबुद्धानिष्कषायाविमलप्रभबहलनिर्म-लचित्रगुप्तसमाधिगुप्तस्वयंभूकंदर्पजयनाथविमलनाथदि व्यवागनंतवीर्याश्चेति चतुर्विंशातिभाविष्यत्परमदेवाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ३ ॥

ॐ त्रिकालवर्तिपरमधर्माभ्युदयाः सीमंधरयुग्मंधर-बाहुसुबाहुसंजातकस्वयंप्रभऋषभेश्वरनंतवीर्यविशालव-ज्रधरचंद्राननचंद्रबाहुभुजंगेश्वरनेमप्रभुवीरसेनमहाभद्र-यशोभद्रजयदेवाजितवीर्याश्चेति पंचविदेहक्षेत्रविहरमाणा विंशतिपरमदेवाश्च व, प्रीयन्ताम् प्रीयंतां ॥ धारा ॥४॥

ॐ वृषभसेनादिगणधरदेवा वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ५ ॥

ॐ कोष्ठबीजपादानुसारिबुद्धिसंभिन्नश्रोत्रप्रज्ञाश्र-वणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ ६ ॥

ॐ आमर्षक्ष्वेडजल्लविड्डुत्सर्गसर्वौषधयश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ ७ ॥

ॐ जलफलजंघातंतुपुष्पश्रेणिपत्राग्निशिखाकाशचारणाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ ८ ॥

ॐ आहाररसवदक्षीणमहानसालयाश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ९ ॥

ॐ उग्रदीप्ततप्तमहाघोरानुपमतपश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ १० ॥

ॐ मनोवाक्कायबलिनश्च वः प्रीयंतां प्रीयंतां ॥ धारा ॥ ११ ॥

ॐ क्रियाविक्रियाधारिणश्च वः प्रीयंतां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ १२ ॥

ॐ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥ धारा ॥ १३ ॥

ॐ अंगांगबाह्यज्ञानदिवाकराः कुंदकुंदाद्यनेकदिगंबरदेवाश्च वः प्रीयन्तां प्रीयन्तां ॥धारा॥१४॥

ॐ इह वान्यनगरग्रामदेवतामनुजाः सर्वे गुरुभक्ताजिनधर्मपरायणाः भवन्तु ॥ धारा ॥ १५ ॥

दान तपोवीर्यानुष्टानं नित्यमेवास्तु ॥ धारा ॥१६॥

मातृपितृभ्रातृपुत्रपौत्रकलत्रसुहृत्स्वजनसंबंधिबंधुसहितस्यामुकस्य (वरका नाम बोलो) ते धनधान्यैश्वर्यबलद्युतियशाः प्रमोदोत्सवाः प्रवर्द्धंतां॥धारा॥१७॥

शान्तिधारा ।

तुष्टिरस्तु । पुष्टिरस्तु । वृद्धिरस्तु । कल्याणमस्तु । अविघ्नमस्तु । आयुष्यमस्तु । आरोग्यमस्तु । कर्मसिद्धिरस्तु । इष्टसंपत्तिरस्तु । काममांगल्योत्सवाः संतु। पापानि शाम्यंतु । घोराणि शाम्यन्तु। पुण्यं वर्द्धतां। धर्मो वर्द्धतां । श्रीर्वर्द्धतां । कुलं गोत्रं चाभिवर्धताम् । स्वस्ति भद्रं चास्तु । इवीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा ॥ श्रीमज्जिनेन्द्रचरणारविंदेष्वानंदभक्तिः सदाऽस्तु ॥धारा॥१८॥

इस प्रकार पढ़ता हुआ मंगल कलशसे धारा छोड़ता जाय ।

इति शांतिधारा ।

फिर नीचे लिखी स्तुति पढ़कर गृहस्थाचार्य जलधारा देवे व शांतिके लिये पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे ।

चिद्रूपभावमनवद्यमिमं त्वदीयं

ध्यायन्ति ये सदुपाधित्यातिहारमुक्तं ।
नित्यं निरंजनमनादिमनंतरूपं
तेषां महांसि भुवनत्रितये लसंति ॥ १ ॥
ध्येयस्त्वमेव भवपंचतयप्रसार–
निर्णाशकारणविधौ निपुणत्वयोगात् ।
आत्मप्रकाशकृतलोकतदन्यभाव–
पर्यायविस्फुरणकृत्परमोऽसियोगी ॥ २ ॥
त्वन्नाम मन्त्रधनमुद्धतजन्मजातम्–
दुःष्कमदावमभि शम्य शुभांकुराणि ।
व्यापादयत्यतुलभक्तिसमृद्धिभांजि
स्वामिन्यतोऽसि शुभदः शुभकृत्त्वमेव ॥ ३ ॥
त्वत्पादतामरसकोशनिवासमास्ते
चित्तद्विरेफसुकृती मम यावदीश ।
तावच्चसंसृतिजकिल्वि षतापशापः
स्थानं मयि क्षणमपि प्रतियाति काचित् ॥ ४ ॥
त्वन्नाममंत्रमनिशं रसनाग्रवर्ति
यस्यास्ति मोहमदघूर्णननाशहेतु ।
प्रत्यूहराजिलगषोद्भवकालकूट–

भीतिर्हि तस्य किमु संनिधिमेति देव ॥ ५ ॥
तस्मात्त्वमेव शरणं तरणं भवाब्धौ
शांतिप्रदः सकलदोषनिवारणेन ।
जागर्त्ति शुद्धमनसा स्मरतां यतो मे
शांतिः स्वयं वरतले रभसाभ्युपैति ॥ ॥ ६

फिर "उदकचंदन आदि" बोलकर वर वधूसे अर्घ चवढ़ाना चाहिये। फिर नीचे लिखा मंत्र पढ़कर गृहस्थाचार्य्य वर वधूसे पुष्प क्षेपण करावे।

जगति शांतिविवर्धनमंहसां
प्रलयमस्तु जिनस्तवनेन मे ।
सुकृतबुद्धिरलं क्षमया युतो
जिनवृषो हृदये मम वर्त्ततां ॥ १ ॥

फिर गृहस्थाचार्य्य नीचे लिखा मंत्र पढ़ पुष्पांजलि क्षेप कर पूजा विसर्जन करे तथा जलधारा देवे।

ॐ ह्रीं अस्मिन् विवाहमांगल्यकर्मणि आहूयमानदेवगणाः स्वस्थानं गच्छन्तु, अपराधक्षमापनं भवतु।

फिर सासू और अन्य स्त्रियें वर और कन्याका अक्षत सहित आरता करें।

गृहस्थाचार्य नीचे लिखे मंत्रसे आशीर्वाद देवे, वर वधू विनय करे ।

आरोग्यमस्तु चिरमायुरथो शचीव
शक्रस्य शीतकिरणस्य च रोहिणीव ।
मेघेश्वरस्य च सुलोचनका यथैषा
भूयात्त्वेप्सितसुखानुभवोद्य धात्री ॥ १ ॥

इसके पीछे वर सासू आदिको प्रणाम करे । वरका पिता सेवकनको दान देवे तथा श्रीजैनमंदिर व विद्या-वृद्धिके कामोंमें वर और कन्याके पिता यथायोग्य दान देवें । यदि विवाहमें १०००० लगावें तो दसवां भाग धर्मार्थ अवश्य देवें । इसी हिसाबसे दान करना उचित है ।

पश्चात् वर वधूको लेकर व दहेजको लेकर वरके सम्बन्धी अपने घर आवें। घरमें सात दिनतक वर वधू ब्रह्मचर्यसे रहें, परन्तु दोनों परस्पर प्रेमसे वचनालाप कर सकते हैं । यदि दूसरे ग्राममें बरात गई हो तो डेरेपर आकर दूसरे दिन उस ग्रामके मंदिरोंके दर्शन वींद वींदनी करें, फिर घरमें पधारें। इसी प्रकार ७ दिनतक सर्व मंदिरोंके बराबर दर्शन करें। आठवें दिन श्रीमंदिरजीके दर्शन करके उच्छवसहित घरमें आवें और कंकण-डोरा खोला जावे। उस दिन रात्रिको दूसरे तीसरे प्रहर केवल संतानके अर्थ काम सेवन करें ।

पश्चात् ऋतु समयहीमें अर्थात् रजस्वला होने पर ही कामसेवन करना उचित है ।

इस तरहँ विवाह–संस्कार तक १७ संस्कारोंका संक्षेपमें वर्णन किया गया है। विवाह सम्बन्धी विशेष विधि " जैन विवाहविधि " नामकी पुस्तकसे मालूम हो सक्ती है, जो " जैनग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई से प्राप्त होती है। अन्य आवश्यक संस्कार यथा अवसर कथन किये जाँयगे ।

अध्याय ५ वां ।

अजैनको श्रावककी पात्रता ।

श्रीआदिपुराण ३९ वें पर्वमें अजैनका जैनी बनानेका जो विधान लिखा है उसका संक्षेप भावार्थ हम यहां इसलिये देते हैं कि हमारे पाठकोंको इसकी रीति मालूम हो। अजैनको शुद्ध करनेकी जो क्रियाएं हैं वे दीक्षान्वय क्रियाएं कहलाती हैं। इनकी संख्या ४८ है, परन्तु जो मुख्य २ क्रियाएं हैं वे यहां बयान की जाती हैं।

१. अवतार क्रिया ।

तत्रावतारसंज्ञास्यादाद्यादीक्षान्वय क्रिया।मिथ्यात्वदूषिते भव्ये सन्मार्गग्रहणोन्मुखे ॥ ७ ॥

स तु संयत्य योगीन्द्रं युक्ताचारं महाधियम् ।
गृहस्थाचार्यमथवा प्रच्छतीति विचक्षणः ॥८॥

ये श्लोक प्रमाणके अर्थ दे दिये गये हैं। इस क्रियाका

मतलब यह है कि जो भव्य पहले अविधि याने मिथ्यामार्गसे दूषित है वह सन्मार्गके ग्रहणकी इच्छा करके किसी मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके पास जाकर प्रार्थना करे कि मुझे निर्दोष धर्मका स्वरूप कहिये; विषय कषायके प्ररूपनहारे मार्ग मुझे दोषरूप भाष रहे हैं। तब आचार्य्य देव, गुरु और धर्मका उसे सच्चा स्वरूप समझावें। सुनकर वह भव्य दुर्मार्गसे बुद्धि हटाकर सच्चे मार्गमें अपना प्रेम प्रगट करता है और आचार्य्यको धर्मरूप जन्मका दाता पिता समझता है ।

२. व्रतलाभ क्रिया।

पश्चात् यह शिष्य अपनी श्रद्धा करके व्रतको ग्रहण करे और अपने गुरुका उपकार माने। यद्यपि आदिपुराणमें व्रतोंका नाम नहीं लिखा है, परन्तु प्रारम्भमें पांच अणुव्रतका ग्रहण और तीन मकारका त्याग कराया जाता है अर्थात् संकल्प करके १. त्रस हिंसाका त्याग (आरम्भका नहीं), २. स्थूल असत्यका त्याग, ३. स्थूल चोरीका त्याग, ४. परस्त्रीका त्याग, ५. परिग्रहका प्रमाण तथा मदिरा (शराब) मांस

नोट—इस व्रत—लाभ क्रियाकी प्राप्तिमें यह भव्य मोटे रूपसे अन्यायोंको छोड़ता है, जैसे मांस न खाना, शराब न पीना, शहद न खाना, जानबूझकर इच्छासे किसी जानवरको नहीं मारना, दूसरेको ठगनेवाली झूठको न कहना, किसीका माल न उठाना, वेश्या व परस्त्रीसे काम—सेवन न करना, और तृष्णाको घटानेके लिये द्रव्यका प्रमाण कर लेना कि अमुक रकम हो जानेपर व्यापार न करूंगा, जैसे १ लाख या २ लाख जैसी अपनी इच्छा हो ।

और मधु याने सहत—इन तीन मकारोंका त्याग—इस प्रकार व्रतोंको पाले। इसका अभ्यास हो जानेके पीछे शिष्य तीसरी क्रियाका प्रारम्भ करता है।

३. स्थान—लाभ क्रिया।

किसी शुभ नक्षत्रमें यह क्रिया की जावे। जिस दिन यह क्रिया हो उस दिनके पहले शिष्य उपवास करे। पारणाके दिन गृहस्थाचार्य्य श्रीजिनमंदिरजीमें महा सूक्ष्म पीस्या चूनसे वा चंदनादि सुगंध द्रव्योंसे आठ दल कमलका व समवशरणका मांडला मंडवावे और विस्तार सहित श्रीअरहंत और सिद्धकी पूजा करे पंच परमेष्ठीका पाठ व समयके अनुसार अन्य कोई पाठकी पूजा करे। शिष्य भगवानकी प्रतिमाके सम्मुख बैठे, सर्व पूजा भावसे सुने। पूजाके पीछे गृहस्थाचार्य्य पंचमुष्टि—विधान अथवा पंचगुरुमुद्राके विधान कर शिष्यके मस्तकको हाथसे छुए अर्थात् उसके सिरपर अपना हाथ रक्खे और कहे " पूतोसिदीक्षया " अर्थात् तू इस दीक्षाकरके पवित्र भया। ऐसा कह पूजन से शेष रहे आशिकारूप अक्षतोंको इसके मस्तकपर डाले और फिर पंच णमोकारमंत्रका इसको उपदेश करे और कहेः—

" मंत्रोऽयमखिलात् पापात् त्वां पुनीतात् "।

अर्थात् यह मंत्र सर्व पापसे छुड़ाकर तुझे पवित्र करे। फिर गृहस्थाचार्य उसको पारणा करनेके लिये भेजे। वह शिष्य

गुरुकी कृपासे संतोष मानता हुआ अपने घर जाकर पारणा करे। इसके पीछे चौथी क्रिया करे।

४. गणगृह क्रिया।

इस क्रियाका मतलब यह है कि वह भव्य अपनी मिथ्यात्वकी अवस्थामें श्रीअरहंत सिवाय और देवताओंकी मूर्तियोंको, जिनको कि वह पूजता था, अपने घरसे बिदा करे; याने किसी-गुप्त स्थानमें जहां उनको बाधा न हो और उनकी सेवा भी न हो ऐसी जगहमें धर आवे। जिस समय इन मूर्तियोंको अपने घरसे हटावे उस समय यह वचन कहे:-

इयन्तं कालमज्ञानात् पूजिताः स्वकृतादरम्।
पूज्यास्त्विदानीमस्माभिरस्मत्समयदेवताः॥
ततोऽपमृषितेनालमन्यत्र स्वैरमास्यताम्॥

अर्थात् अबतक मैंने अज्ञानसे तुम्हारी आदरपूर्वक पूजा की, मुझे अपने आगममें कहे देवताओंकी पूजा करना चाहिये, इसलिये, हे मिथ्या देवताओ! तुम मेरेपर कोप न करके अन्यत्र जहाँ इच्छा हो वहां वसो। फिर शांत स्वरूप जिनेन्द्र देवकी पूजा करे। संस्कृतमें शब्द हैं:-

विसृज्यार्च्चयतः शान्ता देवताः समयोचिताः।

भाषा आदिपुराणमें यह बाक्य है:—

यह क्रिया जो रागी देवनिकूँ अपने घरतें बिदा करि वीत-राग देवको पधरावे।

इससे यह प्रगट है कि इस दिनसे वह भव्य श्रीजिनेन्द्रकी पूजा करे। इसके पश्चात् पांचवीं क्रिया करे।

५. पूजाराध्य क्रिया।

इस क्रियामें यह भव्य भगवानकी पूजा करके तथा उपवास करके द्वादशांगके संक्षेप अर्थ सुने, जिनवाणीका धारण करे। इसके पीछे छठवीं क्रिया करे।

६. पुण्य–यज्ञ क्रिया।

इस क्रियामें भव्य जीव साधर्मियोंके साथमें १४ पूर्वका अर्थ सुने।

७. दृढ़चर्य्या क्रिया।

इस क्रियामें भव्य जीव अपने शास्त्रोंको जानकर अन्य शास्त्रोंको सुने व जाने।

नोट–ये सर्व क्रियाएं किसी खास शुभ दिनमें प्रारंभ की जाती हैं। इसके पीछे ८ वीं क्रिया करे।

८. उपयोगिता क्रिया।

इस क्रियाको धारते हुए हरएक अष्टमी और चौदसको उपवास करे, रात्रिको कायोत्सर्ग करे व धर्म–ध्यानमें समय बितावे। इसके पीछे नवमी जनेऊ लेनेकी क्रिया करे।

९. उपनीति क्रिया।

जब वह भव्य जिन–भाषित क्रियाओंमें पक्का हो जाय

और जैनागमके ज्ञानको प्राप्त कर ले तब गृहस्थाचार्य्य उसको चिन्होंका धारण करावे । इस क्रियामें इस भव्यको वेष, वृत्त व समय इन तीन बातोंको देवगुरुके समक्ष यथाविधि पालन करनेकी प्रतिज्ञा लेनी होती है । सफेद वस्त्र और यज्ञोपवीतका धारण कराना सो तो वेष है । जनेऊ लेनेकी जो विधि पहले लिखी जा चुकी है उसी तरह यह क्रिया भी होनी चाहिये । आर्योंके योग्य जो षट्कर्म करके आजीविका करना सोही इसके व्रत्त है (आर्यषट्कर्मजीवित्वं व्रत्तमस्य प्रचक्षते ॥ ५५ ॥) षट्कर्म ये हैं—असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प और विद्या । जैनोपासककी दीक्षाका होना सोही इसके समय है । इस समय उसका गोत्र, नाम और जाति आदि नियत करे । (दधतो गोत्रजात्यादिनामान्तरमतः परम् ॥ ५६ ॥)

नोट—इस लेखसे ऐसा विदित होता है कि अब इसका जैनपने का नाम रक्खा जावे और किस जाति व गोत्रसे इसके गृहस्थीका व्यवहार चले सो ठीक कर दिया जावे। क्योंकि अब यह उपासकोंकी संज्ञामें आ जाता है ।

भाषा आदिपुराणमें लिखा है कि "जब यह जिनमार्गी होय तब गोत्र जात्यादि नाम धारण करे ।"

इस उपनीति संस्कारके होनेके पश्चात् कुछ दिन तक यह उपासक ब्रह्मचारीके रूपमें रहे और फिर दसवीं व्रतचर्य्या क्रिया करे ।

१०. व्रतचर्य्या क्रिया ।

गुरु मुनि अथवा गृहस्थाचार्यके निकट उपासकाध्ययन

भलीप्रकार पढ़नेके लिये रहे । संस्कृतमें तो इस क्रियाके सम्बन्धमें एक यही श्लोक है:—

ततोऽयमुपनीतः सन् व्रतचर्य्यां समाश्रयेत् ।
सूत्रमौपासकं सम्यगभ्यस्य ग्रन्थतोऽर्थतः॥ ५७ ॥

अर्थ—तब यह उपनीत होकर व्रतचर्य्याका आश्रय करै और ग्रन्थसे उपासकाध्ययन सूत्रको भली प्रकार पढ़े ।

भाषामें इस भांति और है:—"जबतक उपासकाध्ययन पाठ करे ब्रह्मचारीके रूपमें रहे । चोटीके गांठ, सिर नंगे, गलेमें जनेऊ, कमरमें त्रिगुणरूप मूंजके डोरेका बंधन तथा पवित्र उज्ज्वल धोती पहरे, पैरोंमें पादत्राण नहीं अर्थात् नंगे रहे और धोती डुपट्टे सिवाय अन्य वस्त्र आभूषण नहीं पहरे ।"

नोट—प्रयोजन यह है कि यह नवीन जैनी कुछ दिन खास गुरुकी संगतिमें ब्रह्मचारी होकर रहे और श्रावकाचार भली प्रकार सीख लेवे । जब पढ़ चुके तब गुरुकी आज्ञासे ग्यारहवीं क्रियाको धारण करे ।

११. व्रतावतरण क्रिया ।

जब उपासकाध्ययन भणि चुके तब गृहस्थाचार्य्यके निकट ब्रह्मचारीका भेष उतारि आभूषणादि अंगीकार करे, पीछे बारहवीं विवाह क्रिया करे ।

१२. विवाह क्रिया ।

जिनधर्मके अंगीकार करनेके पहले जो स्त्री पत्नी थी उसको गृहस्थाचार्य्यके निकट ले जाय, श्राविकाके व्रत ग्रहण

करावे । फिर किसी शुभ दिनमें सिद्धयंत्रका पूजन, होम पहिले लिखी विधिके अनुसार करके उस स्त्रीको स्वीकार करे ।

इसके पीछे तेरहवीं वर्णलाभ क्रिया है, जिसका प्रयोजन यह है कि वह भव्य अपने समान आजीविका करनेवाले उपासकोंके साथ वर्णपनेके व्यवहारको कर सके अर्थात् कन्या प्रदानादि काम कर सके । यदि किसी अजैनके पहले परणी हुई स्त्री न हो तो उसके लिये यहां ऐसा भाव प्रतीत होता है कि वह भव्य पहले वर्णलाभ क्रिया करके फिर अपना विवाह पंचोंके सम्मतिके अनुसार नियत किये हुए वर्णमें करे ।

१३. वर्णलाभ क्रिया ।

इस क्रियाके प्रारंभमें श्रीजिनसेनजी यह श्लोक कहते हैं:-

वर्णलाभस्ततोऽस्य स्यात्सम्बन्धं संविधित्सतः ।
समानाजीविभिर्लब्धवर्णैरन्यैरुपासकैः ॥ ६१ ॥

इसका भावार्थ ऊपर आगया । इस क्रियाके लिये शुभ दिनमें श्रीजिनेन्द्रदेवकी पूजा करके वह भव्य चार बड़े मुख्य श्रावकोंको बुलाकर कहे "जो मोहि तुम आप समान किया । तुम संसारके तारक देव ब्राह्मण हो, लोक विषैं पूज्य अर मैं श्रावकके व्रतका धारक भया, अंगीकार करी हैं अणुव्रत दीक्षा मैं । जो श्रावकका आचार था सो मैं आचरया, देव गुरुकी पूजा की, दान दिये; गुरुके अनुग्रह करि अयोनीसंभव जन्म मैंने पाया । चिर-

कालके अज्ञानरूपी अव्रतको तजकर जे पूर्वे नहीं अंगीकार किये थे सम्यक्तसहित श्रावकके व्रत ते आदरे । व्रतकी शुद्धताके अर्थ मैं जनेऊका धारण किया और उपासकाध्ययन सूत्र मैंने भली भांति पढ़ा । पढ़नेके समय ब्रह्मचारीके रूपमें रहा । बहुरि व्रतावतरणके अंत आभरणादि अंगीकार किये और मेरी पहली अव्रत अवस्थाकी स्त्री ताहि श्राविकाके व्रत दिलाये ताका ग्रहण किया । या भांति किया है श्रावकके व्रतका अंगीकार मैं,सो अब तुम सारिखे साधर्मीनिकी कृपासे मोहि वर्णलाभ क्रिया योग्य है " इस तरह उन पंचोंसे कहे । तब वे श्रावक उत्तरमें कहें, " तुम सत्य हो, तुम्हारे कोई क्रिया जिनधर्मसे विपरीत नाहीं, तिहारे वचन प्रशंसा योग्य हैं, तुम सारिखा और उत्तम द्विज कौन, तुम सारिखे सम्यग्दृष्टीनिके अलाभ विषैं मिथ्यादृष्टीनिसों सम्बंध होय है " इस तरह कहें । और फिर वे श्रावक इसको वर्णलाभ क्रियासे युक्त करें अर्थात् णमोकारमंत्र पढ़कर आज्ञा करे कि पुत्र पुत्रीनिका सम्बन्ध यासूं किया जाय । उनकी आज्ञातें वर्णलाभ क्रियाको पायकर उनके समान होय । संस्कृतमें श्लोक है:—

इत्युक्त्वैनं समाश्वास्य वर्णलाभेन युज्यते ॥
विधिवत्सोऽपितंलब्ध्वा याति तत्समकक्षताम् ॥ ७१ ॥

नोटः—इस क्रियासे यह विदित होता है कि जब अजैनका संस्कार हो जाय तब उसको अपनी जातिमें मिलाकर उसके साथ सम्बन्ध करनेका नियम

जैनधर्ममें पाया जाता है। यह भी प्रगट होता है कि वह जैसी आजीविका करता हो उस प्रमाणे वह ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य इन तीन प्रकारके द्विजोंमेंसे एकमें शामिल हो सकता है। इसके पीछे कुलचर्य्या और गृहीसिता आदि क्रियाएं हैं, जिनसे प्रगट है कि वह अपने कुलके योग्य वृत्ति करे, गृहस्थधर्म पाले फिर क्रमसे गृह त्यागे। क्षुल्लक हो तथा फिर दिगम्बर मुनि हो जावे।

(यदि वह स्पर्श शूद्र है तो जैनी हो क्षुल्लक तक होसक्ता है, परन्तु इसको यज्ञोपवीत संस्कार नहीं है।)

इस प्रकार अजैनको श्रावककी पात्रता कैसे हो और वह कैसे वर्णमें शामिल हो इसका विधान कहा गया है।

अध्याय छठा।

श्रावक-श्रेणीमें प्रवेशार्थ प्रारंभिक श्रेणी।

यज्ञोपवीत आदि संस्कारसे संस्कृत किया हुआ गृहस्थ गृहमें रहता हुआ परम्परा मोक्षरूपी सर्वोत्तम पुरुषार्थकी सिद्धिको अपने अंतरंगसे चाहता हुआ धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थको यथासंभव पालन करता है। चूंकि मोक्षकी सिद्धि साक्षात् मुनिलिङ्गके धारने ही से हो सक्ती है। इसलिये उस अवस्थाके धारनेका अनुरागी होकर पहले उसके नीचेके जो श्रावकके दरजे हैं उनमें प्रवीण होनेका यत्न सोचता है। श्रावकके दरजे क्रमसे ग्यारह हैं, जो इन ग्यारह श्रेणियोंमें सफलता प्राप्त कर लेता है वह मुनिधर्म सुगमतासे पाल सकता है। हरएक कार्य्य नियमानुसार किये जाने पर ही यथार्थ फलकी सिद्धि होती है जैसे किसीको हाईकोर्टकी

सालिसिटरी प्राप्त करनी है तो वह पहले इंग्रेजी भाषाके प्रथम दरजेसे योग्यता प्राप्त करना शुरू करता है और क्रम क्रमसे आगे बढ़ता हुआ एन्ट्रैन्स क्लासको तयकर फिर कालेजकी क्लासोंको पासकर सालिसिटरीमें प्रवेश करता है । इसी प्रकार मुनि-मार्गका इच्छुक पहले श्रावकके दरजे तय करता है तब सुगमतासे मुनिधर्मको पाल सकता है-राजमार्ग यही है । परन्तु कोई शक्तिशाली साहसी पुरुष यदि साधारण गृहस्थसे एकदम मुनि हो जाय तो उसके लिये निषेध नहीं है, क्योंकि पुराणोंमें प्रायः ऐसे बहुतसे दृष्टान्त मिलते हैं । किसी किसीकी ऐसी धारणा है कि इस कालमें मुनिधर्म पाला नहीं जा सक्ता-यह बात ठीक नहीं है । श्रीसर्वज्ञ भगवानकी आज्ञानुसार पंचम कालके अंत तक मुनिधर्म रहेगा तथा सप्तम गुणस्थानके धारी होंगे । इसलिये मुनिलिंगका अभाव नहीं हो सकता, किन्तु जो श्रावककी ११ श्रेणियोंको क्रमशः तय करता जायगा उसको मुनिधर्मके धारनेमें कुछ भी कठिनता नहीं हो सकती है । इस कालमें मुनिधमका निर्वाह कैसे हो, इसका हम किसी दूसरे अध्यायमें वर्णन करेंगे ।

इस अध्यायमें हमको यह कहना है कि गृहस्थी श्रावककी श्रेणियोंमें प्रवेश होने योग्य किस तरहँ होवे ।

पहली प्रतिमाका नाम ' दर्शन प्रतिमा ' है । इस प्रतिमामें भरती होनेके लिये तय्यारी करनेवाले गृहस्थको पाक्षिक श्रावक कहते हैं ।

पाक्षिकश्रावक—सच्चे देव, गुरु, धर्म और शास्त्रकी दृढ़ श्रद्धा रखता है तथा सात तत्त्वोंका स्वरूप जानकर उसका श्रद्धान करता है । (इन सात तत्त्वोंका स्वरूप इस दर्पणके द्वितीय भाग अर्थात् तत्त्वमालामें भले प्रकार बतलाया गया है ।)वह पाक्षिक श्रावक व्यवहार सम्यक्तको पालता है, परन्तु सम्यक्तके २५ दोषोंको बिलकुल बचा नहीं सक्ता है । पाक्षिकश्रावकका आचरण—श्रीसमन्तभद्राचार्य्यजीके कथनानुसार नीचे लिखे आठ मूल गुणोंको पाले ।

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुःगृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥६६॥

अर्थात्—मद्य याने शराब, मांस और मधु याने शहद इन तीनोंको त्यागे और स्थूलपने पांच अणुव्रतोंके पालनेका अभ्यास करे, जैसे संकल्प अर्थात् इरादा करके त्रस—हिंसा न करे, स्थूल असत्य न बोले, स्थूल चोरी न करे, स्थूल अब्रह्म त्यागे अर्थात् पर स्त्री व वेश्याका सेवन न करे और स्थूलपने तृष्णाको घटावे ।

स्थूलका अर्थ यह समझना चाहिये कि जिस कार्य्यमें राजा दंड देवे और पंच भंडे (दंड देवे) उस कार्य्यको न करे । पाक्षिकश्रावक इन आठ मूलगुणोंमें अतीचार नहीं बचा सकता है, मूल मूल धारता है । श्रीजिनसेनाचार्य्यजीने आठ मूलगुण इस भांति कहे हैं:—

हिंसाऽसत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात् ।
द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्ट सन्त्यमी मूलगुणाः ॥

अर्थात् स्थूल हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह, जूआ, मांस और मदिरा इन आठको छोड़े ।

सागारधर्मामृतमें पंडित आशाधरजीने आठ मूलगुण किसी अन्य आचार्य्यके प्रमाणसे इस भांति कहे हैं:—

मद्यपलमधुनिशासनपंचफलीविरतिपंचकाप्तनुती ।
जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥

अर्थात् शराब, मांस, शहद, रात्रिभोजन, पांच उदम्बरफल (याने बड़फल, पीपलफल, पाकरफल, गूलर और अंजीर) इनको त्यागे; पंच परमेष्ठीकी भक्ति करे, जीवदया पाले और जल छानकर वर्ते ।

अन्य कई ग्रन्थकर्त्ताओंने पाक्षिकके लिये कहा है कि सात व्यसन त्यागे और ८ मूलगुण धारे । व्यसन नाम शौक करनेका है । इन सात बातोंका शौक छोड़े—१. जुआ (बदके खेलना), २. मांस खाना, ३. शराब पीना, ४. वेश्यासेवन, ५. शिकार करना, ६. चोरी करना, और ७. परस्त्री-सेवन करना । जिस किसीको इनके करनेका शौक होता है वह इनसे रुक नहीं सकता है । इन सातोंका शौक छोड़े तथा ८ मूलगुणोंको धारे । अर्थात् मदिरा, मांस और मधु तथा ५ उदम्बरफल इनको नियम रूपसे कभी न खावे ।

ऊपर लिखे हुएका सारांश यह है कि पाक्षिकश्रावकको नीचे लिखे अनुसार आचरण करनेका अभ्यास रखना चाहिये।

१. मांसकी डलीको हरगिज न खावे, न दवाईमें लेवे; क्योंकि मांस जीव–बधसे प्राप्त होता है तथा मरे हुए जीवके मांसमें भी हर वक्त त्रसजीव होते हैं और मरते हैं।

२. शराबको हरगिज न पीवे, न दवाईके वास्ते लेवे; क्योंकि इसके बननेमें अनगिनते त्रसजीव मरते हैं।

३. मधु याने मधुमक्खियोंसे इकट्ठा किया हुआ शहद न खावे; क्योंकि उसके लिये मधुमक्खियोंको कष्ट दिया जाता है तथा उनके प्राणघात किये जाते हैं और उसमें उनके मांसका सत भी मिल जाता है।

४. पांच उदम्बरफल या ऐसे अन्य फल जिनमें त्रस जीव चलते, उड़ते हों हर्गिज न खावे।

५. बद करके जुआ न खेले, क्योंकि इसकी हार और जीत दोनों मनुष्योंको नीच मार्गी बनाती है।

६. चोरी, डाकाजनी, लूट न करे; जिससे राज्यमें दंडित हो।

७. शिकार न खेले; क्योंकि केवल अपने मजेके वास्ते पशुओंको कष्ट देना उचित नहीं। क्षत्रियोंका भी शिकार खेलना कर्तव्य नहीं है। वे धनुष–विद्याका अभ्यास वृक्ष आदिकोंपर व अचित्त द्रव्योंपर करते थे, हिरण आदि पशुओं-पर नहीं।

८. वेश्याका सेवन न करे; क्योंकि वेश्या धर्म, धन, बल, कुटुम्ब-प्रेमको लूटनेवाली और रोगी बनाकर जीवनको निर्फल करानेवाली है।

९. परस्त्रीका सेवन न करे; क्योंकि पर-स्त्री दूसरेकी स्त्री है, उसपर इसका कोई हक नहीं। झूठनको खाना नीच अधम पुरुषोंका काम है। क्या कोई किसीकी झूठनको खाता है?

पाक्षिकश्रावक इन ऊपर लिखी बातोंके अतीचारोंको नहीं बचा सक्ता है तथापि अतीचारोंको चलाकर व्यर्थ करता भी नहीं है। जीवदयाके पालनेके अभिप्रायसे तथा रोगादिसे वचनेकी इच्छासे तथा अन्यायसे वचनेके लिये नीचे लिखा आचरण भी पालता है:-

१-रात्रिको रसोई नहीं जीमता है।

२-विना छना पानी, दूध, घी व कोई पतली चीज नहीं ग्रहण करता है।

इन दोनोंके विषयमें पंडित आशाधरजीने सागारधर्मामृतमें यह श्लोक कहा है:-

रागजीववधापायभूयस्त्वात् तद्वदुत्सृजेत्।
रात्रिभुक्तं तथा युंज्यान्न पानीयमगालितम्॥ १४॥

टीकामें 'रात्रिभुक्तं'का अर्थ-रात्रौ अन्नप्राशनं याने रात्रिको अन्न खाना ऐसा किया है। तथापि फलाहार आदि खाना भी नहीं चाहिये, क्योंकि दोनोंमें समानता है।

३-अन्यायसे विश्वासघात करके द्रव्य नहीं पैदा करता अर्थात् झूठ बोलकर दूसरेको नहीं ठगता है।

४–षट्कर्मका अभ्यास करता है जैसे देवपूजा, गुरुकी भक्ति, स्वाध्याय, संयम, तप और दान।

५–जीवदया पालनेमें उत्साही रहता है। इरादा करके किसी त्रसजीवके प्राण नहीं लेता है। जैसे खटमलोंको मारना आदि ऐसी हिंसा नहीं करता है।

६–अपने आधीन स्त्री पुत्रोंको विद्याभ्यास कराता है।

७–संघमें वात्सल्यके अर्थ जैनसंघको जिमाता, तीर्थ-यात्रा करता, प्रभावनार्थ मंदिर धर्मशाला पाठशाला बनवाता है।

८–अपने २ वर्णके अनुसार ६ प्रकारकी आजीविका करता है।

क्षत्रीके लिये असिकर्म याने देश–रक्षार्थ शस्त्रकर्म, वैश्यके लिये मसि याने हिसाबादि लिखना, कृषि याने खेती, व्यापार याने एक देशकी चीज दूसरेमें ले जाकर वेचना। शूद्रके लिये शिल्प याने कारीगरीकी मिहनत तथा विद्याकर्म याने गाना बजाना ज्योतिष आदि। ब्राह्मणके लिये आजी-विका नहीं, जो तीन वर्णवाले सन्मानसे देवें उसपर वसर करता है।

पाक्षिक श्रावककी दिनचर्य्या।

प्रातःकाल सूर्य्योदयके पहले उठे, शय्यापर बैठे हुए णमोकारमंत्रका स्मरण करे तथा बिचारे कि मैं वास्तवमें औदारिक, तैजस, कार्माण–इन तीन शरीरोंके भीतर बंद. स्वभावसे परम शुद्धताका धारी चैतन्यात्मा हूं, मेरे जन्म

मरणका दुःख कब दूर होवे । आज दिनमें मैं श्रीजिनेन्द्र-देवकी कृपासे अन्यायसे बचूं और धर्ममें प्रवर्तूं—ऐसा विचार कर दाइना पग पहले रखकर उठे । यदि रात्रिको स्त्रीसंसर्गसे मलीन नहीं हुआ है और दीर्घबाधा (पाखाने) की इच्छा नहीं है तो लघुशंका (पेशाब) कर हाथ पैर धो अंगोछेसे बदन पोंछ दूसरी धोती पहन किसी एकान्त स्थानमें जाकर बैठे और पंचपरमेष्ठीके मंत्रकी जाप देवे तथा बारहभावना आदि वैराग्यके पाठ व स्तोत्र पढ़े । कमसे कम १५ व २० मिनट तौ अवश्य ही यह धर्म—ध्यान करे । और २४ घंटेके लिये कुछ संयम धारण करले याने आज इतनी दफे भोजन तथा पान करूंगा, इतनी तरकारी खाऊंगा, इतनी सवारीपर चढूंगा, कामसेवन करूंगा व नहीं, गाना बजाना सुनूंगा व नहीं, आज इतनी दूर जाऊंगा। आदि बातोंका नियम अपने मनको रोकनेके लिये जिसमें अपने परिणाम निराकुल रहें उस प्रमाणे करे । यदि बिस्तरसे उठते वक्त दीर्घशंकाकी बाधा हो व स्त्री—संसर्गसे अशुद्ध हो तो स्नान करके जाप करे । फिर बहिर्भूमिमें पाखानेके लिये जावे । गांवके बाहर मैदानमें दीर्घ-शंका करनेसे एक तो तबियत बहुत साफ होती है, दूसरे घरमें जो मलके ऊपर मल पड़के जीवोंकी अधिक उत्पत्ति होती है वह न होवे । यदि गांवके बाहर जगह बहुत दूर हो तो ऐसा किया जावे कि पाखानेके लिये एक किनारे कई टट्टियां हों, जिनमें

अलग २ पके कूंडे व टीनके कूंडे रहें, उनमें एक एकका ही मल पड़े अथवा जहां जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल मिले वैसा बर्ता जावे। दीर्घशंका करके छने पानीसे स्नान करे। स्नान जहां तक संभव हो थोड़े जलसे करे, क्योंकि स्नान केवल शरीरके ऊपरसे मैले परमाणुओंको हटानेके लिये किया जाता है। शरीरको गाढ़े अंगोछेसे अच्छी तरह पोंछे। यदि नदी व जलाशयमें स्नान करना चाहे तो केवल स्नान मात्रमें उसके जलको व्यवहार कर सकता है। जैसा कि यशस्तिलकचम्पूमें कहा है :-

वातातपादिसंस्पृष्टे भूरितोये जलाशये।
अवगाह्याचरेत्स्नानमतोऽन्यद्गालितं भजेत् ॥

अर्थात्—हवा और धूपसे छुए हुए तथा बहुत पानीसे भरे हुए तालावमें डुबकी लगाकर स्नान कर सकता है, परन्तु इसके सिवाय हर मौकेपर पानीको छान करके काममें लेवे। यद्यपि यहां ऐसी आज्ञा है; परन्तु अन्य स्थानमें यह भी कथन है कि इस प्रकार डुबकी लगाकर नहानेकी रस्मको जारी नहीं करना चाहिये, नदी किनारे लोटे आदिसे पानीले नहाना अच्छा है, कम हिंसाका कारण है।

पाक्षिकश्रावकको नित्य देवपूजा भी करनी चाहिये। यदि अपने घरमें चैत्यालय हो तब तो स्नान करके शुद्ध धोए वस्त्र याने धोती दुपट्टा पहन श्रीजिनेन्द्रभगवानका

प्रक्षाल, पूजन भावसहित करे, नहीं तो अपने नगरके मंदिर-जीमें मंदिरके वास्ते अलग रक्खे हुए कपड़े पहन नंगे पैर अथवा कपड़ेका जूता पहनकर जावे। मंदिरजीके लिये कपड़े अलग ही रखने चाहिये। ऊन व चमड़ेके वस्त्र व हड्डीके संसर्गके वस्त्र व हड्डीके बटन आदि मंदिरजीमें कभी न लेजावे। यदि मंदिरजीमें अष्ट द्रव्यसे पूजन करनी हो तो घर-के तय्यार किये हुए आठ द्रव्य ले जावे और मंदिरजीमें थोड़े प्राशुक जलसे स्नान करके पूजाके वस्त्र पहन प्राशुक जलसे सामग्री तय्यार करे और प्रक्षाल पूजन करे। यदि विशेष कारणवश अष्ट द्रव्यसे पूजन करनेकी सामर्थ्य न हो तो कोई भी एक द्रव्य याने अक्षत या फल लेकर श्रीमंदिरजीमें जावे। रास्तेमें दूसरा कोई विचार न करे, भगवत्की भक्ति करूं यही भावना मनमें रक्खे।

दर्शनविधि।

श्रीजिनमंदिरजीको दूरसे देखते ही तीन आवर्त करके दोनों हाथ जोड़ मस्तकको लगाकर नमस्कार करे।

आवर्त्त दोनों हाथ जोड़ अपने मुखके सामने बाईं तरफसे दाहनी तरफको घुमाकर लानेको कहते हैं। तीन आवर्तका अर्थ मन, वचन, कायसे नमन करना है। फिर मंदिरके द्वारपर आते ही कपड़ेका जूता निकाले। द्वारपर जो पग धोनेके लिये प्राशुक जल रक्खा हो उससे पग धोवे। बहुत पानी न मुंधावे। फिर झुकता हुआ

भीतर जावे। भीतर जाते २ ऐसा कहे, "जय जय जय निःसहि निःसहि निःसहि" इसका मतलब यह मालूम होता है कि यदि कोई देव आदि दर्शन करता हो तो वह आगेसे हटकर किनारे हो जावे। यह बात जैसी सुनी है वैसी लिखी गई है। इसके पश्चात् श्रीजिनेन्द्रकी बिम्बके सामने जाकर आंख-भरके प्रभूको देख ले। देखनेका प्रयोजन यह है कि श्रीजिनेन्द्रकी मुद्रा श्रीअरहंतके समान वीतरागभावको प्रगट करनेवाली है कि नहीं, कोई श्वेताम्बरादिका चिन्ह तो नहीं है? क्योंकि स्थापना तदाकार तिस ही वीतरागरूपको दिखलानेवाली होनी चाहिये। फिर जो द्रव्य हाथमें लाया है उसको उसका श्लोक व मंत्र बोलकर चढ़ावे। जैसे यदि अक्षत लाया है तो यह कहकर चढ़ावे।

क्षण क्षण जनम जो धारते, भयो बहुत अपमान।
उज्जल अक्षत तुम चरण, पूज लहों शिव—थान॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्र गुरुभ्यो नमः अक्षय गुण प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा। अर्थात् आत्माके अविनाशी गुणोंकी प्राप्तिके लिये मैं अक्षतोंको चढ़ाता हूं। द्रव्य चढ़ानेके बाद दोनों हाथ जोड़ तीन आवर्त कर नमस्कार करे। जहां वेदीके चारों ओर परिक्रमा हो वहां हाथ जोड़े हुए तीन प्रदक्षिणा देवे। प्रदक्षिणा देते समय हर दिशामें तीन आवर्तके साथ हाथोंको मस्तकपर लगाकर नमस्कार करता जावे। ऐसा करनेमें १२ आवर्त और ४ नमस्कार होवेंगे। प्रदक्षिणा

देता हुआ णमोकारमंत्र पढ़े, भगवानके स्वरूपको विचारे । फिर भगवानके सन्मुख आके संस्कृत व भाषामें कोई दर्शन पढ़े । तदनन्तर कायोत्सर्ग करे अर्थात् खड़ा हो तीन व नौ बार णमोकारके साथ श्रीजिनेन्द्रके ध्यानमई रूपका ध्यानं करे, फिर दंडवत करे । बाद: गंधोदक अर्थात् भगवानके चरणोंके प्रक्षालका जल अपने मस्तक और नेत्रोंको लगावे । उस समय यह कहे:-

निर्मलं निर्मलीकरणं पावनं पापनाशनं ।
जिनगन्धोदकं वन्दे कर्माष्टकविनाशकं ॥

फिर शास्त्र-भंडार-गृहमें जाकर विनयपूर्वक रोजके नियत किये हुए किसी शास्त्रको थिरताके साथ बांचे । यदि सभाका शास्त्र होता हो तो आप स्वाध्याय करके उसको सुने अथवा सभाका शास्त्र सुननेके बाद आप स्वाध्याय करे । बाद घरमें आके श्रीमंदिरजीके कपड़े अलग रख देवे, दूसरे कपड़े पहने । फिर जलपानकी इच्छा हो तो जलपान करे, चिट्ठीपत्री आदिका काम देखे । १० बजेके पहले पहले घरमें रसोई तय्यार कराके पहले किसी पात्रको या किसी भूखेको जिमावे अथवा एक दो रोटी किसी गरीबको व पशुको देनेके लिये अलग निकालके भोजन करे । यदि घरमें छोटे बच्चे व बुड्ढे व बुड्ढी हों तो उनको अपने साथ व अपनेसे पहले जिमावे; क्योंकि उनको भूखकी बाधा शीघ्र सताती है । यदि अभाग्यवश अपने गांवमें श्रीजिनमंन्दिरजी न हो व इतनी दूर हो कि आप जा

नहीं सकता हो तो अपने घरमें स्नान करके किसी एकान्त स्थानपर जाकर आसन विछाकर बैठे और किसी मंदिरजी व प्रतिमाका परोक्ष विचारकर हाथ जोड़ तीन आवर्त-सहित नमस्कार करे और वहां उसी तरह विचार करके कोई द्रव्य चढ़ावे और उसी तरह स्तुति पढ़के दंडवत करे, जिस तरह कि मंदिरजीमें किया जाता है। चढ़ा हुआ द्रव्य जानवरोंके लिये छतपर छोड़ देवे। फिर स्वाध्याय करके उपर्युक्त प्रकार जलपानादि करे। १० बजेसे ४ बजे तकका समय न्यायपूर्वक आजीविकाके लिये वितावे। ४ बजे लौटकर शुचि हो भोजन करे। संध्याके पहले २ सुंदर ताजी हवामें टहल आवे। संध्याको श्रीजिन मंदिरजीमें जा एकान्तमें थोड़ी देरके लिये तप करे; याने जाप जपे, पाठ पढ़े व विचार करे। फिर स्वाध्याय करे। यह काम घरपर भी कर सकता है। स्वाध्याय सर्व कुटुम्बियोंको सुनावे। फिर अपने पुत्र पुत्रियोंका विद्याभ्यास देखे। पश्चात् उपयोगी पुस्तकोंको देखता व वार्तालाप करता १० बजेके पहले २ शयन कर जावे। ६ व ७ घंटेके करीब सोकर सूर्योदयके पहले २ उठे। यदि आजीविकाका कार्य्य अधिक हो तो उसे संध्याके पीछे भी कर सक्ता है, परन्तु १० बजेसे अधिक जागना उचित नहीं है। पाक्षिक श्रावकको उचित है कि हरएक कार्य्य ठीक समयपर करे। ठीक समयपर आहार करे, ठीक समयपर विहार करे और ठीक समयपर निद्रा लेवे।

समयकी पाबन्दीका अवश्य खयाल रखे।

पाक्षिक श्रावकके लिये लौकिक उन्नतिका यत्न ।

पाक्षिक श्रावक नीतिका उल्लंघन न करता हुआ अपने २ वर्णके अनुसार अपने २ व्यापारमें कुशलता प्राप्त करनेका प्रयत्नकरे। राजा हो तो राज्य–कार्य्य व प्रजाकी रक्षामें, वैश्य हो तो अधिक धन धान्यके लाभमें व परदेशोंमें जाकर विद्याभ्यास करने आदिमें समुद्रोंकी यात्रा करनेकी मनाही जैन शास्त्रोंमेंही कहीं नहीं है। अनेक राजपुत्र व सेठपुत्र व्यापारार्थ जहाजों-पर चढ़कर परदेश जाया करते थे, किन्तु यहांतक भी प्रचार था कि जब राजपुत्र व सेठपुत्र अपने विद्याभ्यासमें प्रवीण हो जाता था तो उसका विवाह करनेके पहले उसके मातापिता इस बातको देखते थे कि हमारा पुत्र परदेशमें जाकर धनकी उन्नति करके आता है कि अवनति इसके परीक्षार्थ अपने देशका माल जहाजोंपर विक्रयार्थ दिया जाता था। चतुर सन्तान बड़े २ द्वीपोंमें जाकर उस मालको बेंचते थे और अपने देशमें बिक्री होनेके लायक माल खरीद कर लाते थे। शास्त्रकारोंका यह मत है कि अपने न्याययुक्त कार्य्यके लिये गृहस्थी हर जगह जा सकता है। केवल उसको यह अवश्य देखना चाहिये कि मेरा श्रद्धान न बिगड़े और मेरे व्रतोंका खंडन न हो, जैसा कि कहा है:–

सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
यत्र सम्यक्त हानिर्न यत्र न व्रत दूषणं॥

अर्थात् जैनियोंको वे सर्व ही लौकिक व्यवहार मान्य हैं जहां व जिनमें सम्यक्तको हानि न हो और जहां व्रतको दूषण न हो, समुद्र यात्रामें भी खानपानकी शुद्धताका विचार रक्खे; निरर्गल न हो जावे।

पाक्षिकश्रावक नीतिके ऊपर ध्यान देता हुआ चलता है तथा धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरुषार्थोंकी सिद्धि इस प्रकारसे करता है कि जिसमें एकके बदले दूसरेकी हानि न हो। द्रव्यका उपार्जन करके यह चाहता है कि इसको न्याय सम्बन्धी भोगोंमें लगाऊं तथा धर्म कार्योंमें खर्च करूं। यद्यपि यह पाक्षिक बहु धन्धी होता है तथापि धर्मकी पूरी २ पक्ष रखता है और यही चाहता है कि मैं धार्मिक उन्नतिमें तरक्की करता चला जाऊं। यह अन्यायसे बहुत डरता है और जीवदयाकी पक्ष रखकर यथासंभव दूसरोंको कष्ट नहीं होने देता है।

अध्याय सातवां।

दर्शनप्रतिमा—श्रावककी प्रथम श्रेणी।

पाक्षिकश्रावक अपने श्रद्धानमें दोषोंको बचानेके अभिप्रायसे और अपने आचरणकी शुद्धताके प्रयोजनसे दर्शनप्रतिमाके नियमोंको पालने लगता है। जब वह इस श्रेणीमें भरती होतां है तब अपने श्रद्धानमें नीचे लिखे २५ दोषोंको बचानेकी पूरी २ चेष्टा करता है। यदि कोई दोष हो जावे तो अपनी निन्दा गर्हा करता है तथा उसका दंड लेता

है। यह दर्शन प्रतिमाधारी अपने श्रद्धानमें निश्चय सम्यक्तकी भावना रखता है, अपने आत्माको शुद्ध परमात्मा सिद्धके समान निश्चयसे मानता है, मोक्षके अतीन्द्रिय सुखको ही सुख मानता है और इन्द्रिय सुखोंको क्षणिक आकुलताकारी तथा दुःखका बीज जानता है। दर्शनिकश्रावककी अवस्था 'श्रीसमन्तभद्राचार्य्यजी' के कथनानुसार इस भांति है:—

सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोग निर्विण्णः।
पंचपरमगुरुशरणः दर्शनिकः तत्त्वपथगृह्यः॥ (र० श्रा०)

अर्थात्—जिसका सम्यग्दर्शन शुद्ध है, जो संसार, शरीर और भोगोंसे वैराग्यवान है, जो पंचपरमगुरुकी शरणमें रहता है तथा जो धार्मिक तात्विक मार्गको ग्रहण किये है वह दर्शनप्रतिमाधारी श्रावक है।

तथा श्रीअमितिगतिजी इसभांति लिखते हैं:—

शङ्कादिदोषनिर्मुक्तं संवेगादिगुणान्वितम्।
यो धत्ते दर्शनं सोऽत्र दर्शनी कथितो जिनैः॥८३३॥

(सु० र० संदोह।)

अर्थ—जो शंका आदि दोषोंसे रहित हो तथा संवेगादि गुणोंसे विभूषित हो सम्यग्दर्शनको धारण करता है वह दर्शनिक श्रावक है—ऐसा जिनेन्द्रभगवानने कहा है।

श्रीस्वामिकीर्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीका श्रीशुभचंद कृतमें इस भांति वर्णन है कि, "सम्यग्दृष्टी श्रीवीतराग

अरहंत देवके सिवाय अन्य किसी रागी, द्वेषी देवकी आराधना नहीं करता है, क्षेत्रपालादिको व यक्षादिको व किसी ज्योतिषीदेवको लक्ष्मी आदि देखनेमें सहाई व सुख दुख देनेमें उपकारी, श्रद्धान नहीं करता है।"

गाथा ३१९ में कथन है:—

कोऽपि एवं वदंति हरि हरादयोः देवाः।
लक्ष्मीं ददाति उपकारं च कुर्वते, तदपि असत्॥

अर्थ—कोई ऐसा कहे कि हरहरादिकदेव लक्ष्मी देते हैं व उपकार करते हैं सो असत् याने ठीक नहीं है।

"हरिहरादयः" की व्याख्या इस प्रकार है:—

हरिहरहिरण्यगर्भगजसुंडमूषकवाहनगणपत्यादिलक्षणो देवः व्यंतरचंडिकाशक्तिकालीशक्तियक्षक्षेत्रपालादिको वा ज्योतिष्कसूर्यचंद्रग्रहादिको वा....

स्वामिकार्तिकेयके ३२६ सूत्रकी व्याख्याके अनुसार सम्यक्तीके ४८ मूलगुण और १५ उत्तरगुण हैं।

मूलगुण—४८.—२५ मलदोष रहितपना, ८ संवेगादि लक्षण, ५ अतीचार रहितपणा, ७ भय रहितपना और ३ शल्प रहितपना।

उत्तरगुण—१५. ५ उदम्बरत्याग, ३ मकारत्याग और ७ व्यसनत्याग।

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी टीकाके अनुसार दर्शनप्रतिमाके पहले पाक्षिकश्रावकका दरजा नहीं कह कर सम्यग्दर्शन-शुद्ध ऐसा दरजा रक्खा है और उसका यह लक्षण है कि ४८ मूलगुण, १५ उत्तर गुणसहित सम्यक्त पाले।

पाक्षिकश्रावकमें और सम्यग्दर्शनशुद्धमें इतना ही फ़र्क है कि पाक्षिकश्रावक सम्यक्तके दोषोंको सर्वथा नहीं बचा सक्ता है और सम्यक्दर्शनशुद्धवाला उन्हें भी सर्वथा बचाता है। श्रीसमन्तभद्रजीके अनुसार हमको यही निश्चय रखना चाहिये कि दर्शनप्रतिमाधारी ही शुद्ध सम्यक्दृष्टी होता है। यह १५ उत्तरगुणोंके अतीचारोंको भी बचाता है।

२५ दोषोंके नाम और स्वरूपः—

१. शंका—जैनधर्म व तत्त्वादिमें शंका करना। यदि कोई बात समझमें न आवे तो सम्यक्ती उसको सत्यरूपमें ही निश्चय रखता है, परन्तु निर्णय करनेका प्रयत्न करता है।

२. कांक्षा—संसारिक सुखोंकी रुचि करना।

३. विचिकित्सा-धर्मात्मा पुरुषोंको रोगादिसहित व दीन अवस्थामें देखकर घृणा करनी अथवा मैले पुद्गलोंको देखकर उनका सच्चा स्वरूप न विचार ग्लानि करनी।

४. मूढ़दृष्टि—मूढ़ताईसे किसी चमत्कारको देख किसी कुदेव, कुगुरु, व कुधर्मकी श्रद्धा कर लेना।

५. अनुपगूहन—धर्मात्माके दोषोंको इस इच्छासे प्रकाश करना कि उसकी निन्दा हो। परके दोषोंको छुड़ानेका उपाय

करना सो दोष नहीं है । अथवा अपने आत्माकी शक्तिको मार्दव आदि भावोंके लिये नहीं बढ़ाना प्रमाद रूप रखना ।

६. अस्थितिकरण–अपने या दूसरेको धर्म–मार्गमें शिथिल होते हुए स्थिर न करना ।

७. अवात्सल्य–धर्मात्माओंसे प्रीति भाव न रखना ।

८. अप्रभावना–धर्मकी प्रभावना नहीं चाहना व धर्म–वृद्धि करनेका यत्न न करना ।

नोट–इन आठ दोषोंके उल्टे आठ गुण सम्यक्तरूप अंगीके आठ अंग कहलाते हैं ।

९. जातिका मद—अपने मामा नानाके बड़प्पनका घमंड करना ।

१०. कुलका मद–अपने पिता दादा आदिके बड़प्पनका अभिमान करना ।

११. लाभका मद–अपनेको धन ऐश्वर्यका अधिक लाभ देखकर मद करना ।

१२. रूपका मद–अपने सुन्दर शरीरको देखकर घमंड करना ।

१३. बलका मद–अपने शरीरमें ताकत देखकर उसका अभिमान करना ।

१४. विद्याका मद–अपनेमें विद्वत्ताकी बड़ाई जानकर घमंड करना ।

१५. अधिकारका मद–अपनी आज्ञा बहुत चलती है ऐसा जान मद करना।

१६. तपका मद–आप तप, व्रत, उपवास विशेष कर सक्ता है–इसका घमंड करना।

नोट–ये आठ मद कहलाते हैं। सम्यक्ती आत्माके सच्चे स्वरूपका श्रद्धान करता हुआ इन संसारिक बातोंको तुच्छ समझता है।

१७. देव मूढ़ता–वीतरागदेव सिवाय लोगोंकी देखादेखी अन्य रागी, द्वेषी देवोंकी मानता करनी।

१८. गुरु मूढ़ता–लोगोंकी देखादेखी परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ गुरुके सिवाय अन्य परिग्रहधारी साधुओंको धर्म गुरु मान विनय करनी।

१९. लोक मूढ़ता–लोगोंकी देखादेखी जो धर्मकी क्रिया नहीं है उनको धर्मक्रिया मान प्रवर्तने लगना, जैसे सूर्यग्रहणमें स्नान, संक्रान्तिमें दान, कार्तिक पूनोको गंगास्नान, कागज, कलम, दावात, मिट्टी, शस्त्र, जूता आदिकी पूजा।

नोट–ये तीन मूढ़ता हैं।

२०. कुदेव अनायतन संगति–जहां धर्म प्राप्त नहीं हो सकता ऐसे रागी, द्वेषी देवोंकी संगति करनी।

२१. कुगुरु अनायतन संगति–जिसमें धर्म–प्राप्ति नहीं है, ऐसे कुगुरुओंकी संगति करनी।

२२. कुधर्म अनायतन संगति–धर्म जिसमें नहीं पाइये ऐसे कुधर्म व कुधर्म–प्रतिपादित शास्त्रोंकी संगति करनी।

२३. कुदेव पूजक अनायतन संगति–कुदेवके पूजनेवालों में धर्मका स्थान नहीं है, ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

२४. कुगुरु पूजक अनायतन संगति–कुगुरुके पूजनेवालोंमें धर्मका स्थान नहीं है, ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

२५. कुधर्म पूजक अनायतन संगति–कुधर्मके पूजनेवाले जिनमें धर्म नहीं हैं ऐसे लोगोंकी संगति करनी।

संगतिका अर्थ यह है कि मित्रके समान रात्रिदिन व्यवहार करते हुए सम्मति रखना। इसका प्रयोजन यह है कि जिसमें श्रद्धान विचलित हो जावे ऐसी संगति न करनी; व्यापारादि व्यवहारमें व्यवहार सम्बन्धी कार्य्यादि रखनेमें कोई हर्ज नहीं है। जिस जीवको अभ्यास करना होता है उसके सम्हालके लिये यह उपाय है। जो कोई अपने तत्वज्ञानमें परिपक्व होकर अन्य धर्मोंकी पुस्तकोंको उनके तत्त्वोंके ज्ञान करनेके हेतु देखता है उसके लिये यह बात हर्ज़की नहीं है।

संवेगादि आठ गुण इनको सम्यग्दृष्टीके बाह्य लक्षण कहते हैं। इन गुणोंके द्वारा सम्यक्तीकी पहिचान होती है।

संवेग–धर्मके कार्य्योंमें परम रुचि रखना।

निर्वेद–संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यका होना।

उपशम–क्रोधादि कषायोंकी मंदता रखनी अर्थात् शांति भाव रूप रहना।

निन्दा–अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निन्दा करते रहना।

गर्हा—अपनेमें गुण होते हुए भी अपनी निन्दा अपने मनमें करते रहना।

अनुकम्पा—जीवदयाके भावको प्रगट करना।

आस्तिक्य—नास्तिकपनेका भाव नहीं करना, धर्ममें पक्की श्रद्धा रखनी।

वात्सल्य—धर्मात्मा जीवोंमें प्रीति प्रगट करना।

अब ५ अतीचार कहते हैं:—

शंका—तत्त्वादिकोंमें शंका करनी।

कांक्षा—धर्म सेवासे भोगादिकी इच्छा करनी।

विचिकित्सा—धर्मात्माओंसे ग्लानि भाव रखना।

अन्यदृष्टि प्रशंसा—मनमें मिथ्यादर्शन व मिथ्यादृष्टिको अच्छा समझना।

अन्यदृष्टि संस्तव—बचनसे मिथ्या दर्शन व मिथ्यादृष्टिकी तारीफ करना।

ये पांच अतीचार २५ मलोंमें गर्भित हैं। श्रीदशाध्याय सूत्रजीमें, ५ अतीचारको ही सम्यक्तके दोषोंमें गिनाया है।

७ भय इस प्रकार हैं:—

इस लोक भय—सम्यग्दृष्टि लौकिक भय न रखकर न्याय पूर्वक योग्य आचरण व व्यवहार करता है।

परलोक भय—सम्यक्तीको यह भय नहीं होता कि मैं नरक आदिमें चला जाऊंगा तो क्या होगा? वह निर्भय रह कर अपना कर्तव्य साहसके साथ पालन करता है।

वेदनाभय—सम्यक्ती रोगकी तकलीफका भय नहीं करता, किन्तु रोगोंसे बचनेका यत्न करता है। यदि रोग होवेगा तो योग्य उपचार करता है।

मरणभय—सम्यक्ती मरनेसे नहीं डरता, वह मरणको केवल मकान बदलना समझता है; परन्तु अपनी आत्माको बंधनोंसे रक्षित रखनेका उद्यम करता है।

अनरक्षाभय—मेरा कोई रक्षक नहीं, मैं अकेला हूं—ऐसा जानकर भय नहीं करता है, किन्तु अपने पुरुषार्थमें दृढ़ रहता है।

अगुप्तभय—मेरा माल असबाब कहीं चोरी न चला जाय क्या करूं, ऐसा समझकर सम्यक्ती कम्पित नहीं होता है; किन्तु माल असबाबके सुरक्षित रहनेका योग्य यत्न करता है।

अकस्मात् भय—कहीं अकस्मात् न हो जाय, मकान न गिर पड़े आदि कारणोंकी शंका करके भयभीत नहीं होता है; किन्तु अपनी व अपने परिवारादिकी रक्षा सदा बनी रहे ऐसा उचित यत्न करता है।

३ शल्य ये हैं:—

मायाशल्य—मायाचारका कांटा दिलमें चुभा करना अर्थात् शुद्ध श्रद्धानमें मायाचारके कुछ विकल्प उठते रहना।

मिथ्याशल्य—शुद्ध श्रद्धानमें मिथ्याशल्यका कांटा चुभा करना।

निदान—आगामी भोगोंकी इच्छाका कांटा चुभा करना ।

नोट—जो गृहस्थी सात तत्त्वोंको भलीप्रकार श्रद्धान करके आत्माके स्वरूपको पहचान कर भेदविज्ञानरूपी मंत्रका स्मरण करता है तथा केवल निजस्वरूपकी शुद्धताको चाहता हुआ मोक्षकी इच्छा करके गृहस्थ—धर्मको पालता है तथा सांसारिक सुखोंको क्षणभंगुर समझता है । परन्तु कषायकी बर्जोरीसे छोड़ नहीं सकता है । उस विवेकी मनुष्यकी बुद्धि स्वयं इस तरहकी हो जाती है कि उसके ऊपर लिखे हुए कोई दोष नहीं लगते । जो सच्चा श्रद्धालु होता है वह शंका कांक्षा आदि और मद न करके अपने धर्मकी वृद्धि करता हुआ जैन धर्मकी उन्नति चाहता है और अपने आप धर्मात्माओंकी संगतिको ही पसन्द करता है ।

सम्यक्तीका ज्ञान स्वयं सम्यग्ज्ञानमय हो जाता है तथा आचरण भी मिथ्यारूप नहीं होता । उसकी बुद्धिकी आपसे आप ऐसी सफाई होती है कि उसके आचरणमें ऊपर लिखे हुए दोष नहीं लगते । दर्शनप्रतिमावाले श्रावकको उचित है कि अपने विश्वासको दर्पणके समान साफ और सुथरा रक्खे तथा उसमें मैल अथवा अन्य कोई दोष न लगने देवे । शुद्धनयसे अपने आत्माको शुद्ध, बुद्ध, ज्ञायक, वीतराग, आनन्दमई, असंख्यात प्रदेशवान, अपने परिणामका आप कर्त्ता और भोक्ता, निरंजन, पुरुषाकार अनुभव करे । इस अनुभवके स्वाद लेनेका सदा उत्साही रहे । आत्माकी चर्चामें परमसुख माने । तत्त्वोंकी चरचामें परम हर्ष माने । अनुभव जगानेवाली श्रीजिनेन्द्रकी पूजामें बड़ी ही रुचि रक्खे । दूसरोंको उपकारके योग्य समझ कर अपनी शक्तिके अनुसार उनका भला कर-

नेका यत्न करे तथा आपत्ति पड़नेपर भी किसी शासन देवताको न पूजे जैसा कि आशाधरजीने कहा है:--

आपदा कुलितोऽपि दर्शनिकस्तन्निवृत्यर्थं शासन देवतान् कदाचिदपि न भजते पाक्षिकस्तु भजत्यपि।

अर्थात् आपदासे आकुलित होनेपर भी दर्शनिक उससे छूटनेके लिये शासन देवताओंको कभी न भजे, पाक्षिकश्रावक भी भज भी ले ऐसी शुद्ध श्रद्धाका रखनेवाला श्रावक पाक्षिक-श्रावकके धर्माचरणोंको तो करता ही है, किन्तु अपने आचरणके दोषोंको भी बचाता है। पाक्षिकश्रावकका खास आचरण पांच उदम्बरत्याग, मधु त्याग, सात व्यसन त्याग इस भांति कहा गया था। यह दर्शनिक इन्हीं क्रियाओंमें दोषोंको भी बचाता है। श्रीस्वामिकार्तिकेयकी संस्कृत टीकाके अनुसार दर्शनिकको नीचे लिखी बातें भी छोड़नी चाहिये।

१. चर्मके पात्रमें रक्खा हुआ घी, तेल, जल, हींग अथवा ऐसी ही कोई और बहनेवाली चीज जिसके सम्बन्धसे चर्मकी दुर्गन्ध वस्तुमें हो जाय २. मक्खन, ३. कांजीके बड़े आदि, ४. अचार (८ पहरके अंदरका खाया जा सक्ता है, उसके आगेका नहीं।) ५. घुना हुआ अनाज, ६. कुन्दमूल (जिनमें अनन्तकाय जीव होते हैं) और ७. पत्ती शाखा (पत्र शाखासन)।

श्रीआशाधरकृत सागारधर्मामृतके अनुसार पांच उदम्बर,

तीन मकार और सात व्यसनके अतीचारोंको नीचे लिखे भांति टालना चाहिये ।

१. मांसके अतीचारः—

चर्मके वर्तनमें रक्खा घी, जल, तेल, हींग तथा चमड़ेसे ढका हुआ निमक, चमड़ेकी चालनीमे छाना हुआ आटा व चमड़ेके सूपसे फटका हुआ धान्यादि ।

२. मद्यके अतीचारः—

आठ पहरसे बाहरका अचार (संधान) व मुरब्बा व दही छाछ न खावे, फूई लगी चीज व कांजी (सड़ा हुआ मांड) न लेवे तथा मदिरा पीनेवालेके हाथका भोजन पान न करे, न उसके वर्तनोंसे काम लेवे ।

३. मधुके अतीचारः—

जिन फूलोंसे त्रसजीव अलग नहीं किये जासक्ते उन फूलोंको न खावे जैसे गोभी, कचनार तथा शहदको नेत्रांजनादिमें भी न लगावे ।

४. पांच उदम्बरके अतीचारः—

अजाना याने जिसके गुण दोष हम नहीं जानते ऐसा कोई फल न खावे, विना फोड़े याने भीतर बीचमें देखे विना सुपारी आदि फल न ले और न ऐसे दूसरे फल खावे जिनमें त्रसजीव पैदा हों जैसे जीवसहित बेर, जामन, शेंगफल, वायभडिंग आदि ।

५. द्यूतके अतीचारः—

जुआ देखना नहीं, परस्पर दौड़ करके व कराके व मनके विनोदके लिये तास गंजीफा आदि खेलके द्वारा हार जीत मनाना नहीं।

६. वेश्याके अतीचारः—

वेश्याओंके गीत, वादित्र, नाच देखे सुने नहीं, उनके स्थानोंमें घूमें नहीं और न वेश्यासक्त पुरुषोंकी संगति करे।

७. चोरीके अतीचारः—

राजदर्बारका जोर दिखाके अपने दाइयादारोंसे अन्याय करके हिस्सा न लेवे (न्यायसे लेनेमें दोष नहीं है) और न अपने भाई बहिनोंका हिस्सा छिपावे, जो कुछ उनका हक हो वह उनको दे देवे।

८. शिकारके अतीचारः—

कपड़े, पुस्तक, कागज आदिपर जो मनुष्य व पशुओंकी तसबीरे हों उनके मस्तक, छेदादि न करे, न आटा, पिट्टी शक्कर व मिट्टी आदिके पुतले व पशु बना कर उनका बलिदान व घात करे। दिवालीमें शक्करके खिलौने बनाना, लेना, खाना व खिलाना पाप बंधका कारण है।

९. परस्त्रीके अतीचारः—

कुमारीके साथ रमण न करे, हठसे किसी कन्याको न हरे, अपनी मरजीसे किसी स्त्रीके साथ गंधर्व विवाह न करे।

आशाधरजीकी सम्मतिके अनुसार रात्रि होनेसे दो घड़ी पहले व सबेरे २ घड़ी दिन चढ़े भोजन करे, रात्रिको

आम्र, घी, दूध आदि रसोंका सेवन न करे तथा पानी २ घड़ीके अन्दरका छना पीवे तथा पानी छाननेके बाद उसका विलछन उसी पानीके स्थानमें पहुंचा देवे।

नोट—रात्रि भोजन व पानी सम्बन्धी चर्चा अलग अध्यायमें पढ़नी चाहिये।

दर्शनिक श्रावकको क्या २ आचरण पालना चाहिये?

जो आचरण पाक्षिकश्रावकके लिये वर्णन किया गया है, दर्शनिकश्रावक उस सबको पाले तथा सम्यक्तके आचरणमें ऊपर लिखित दोषोंको बचावे और सात व्यसन, ३ मकार तथा पांच उदम्बरके जो दोष ऊपर कहे हैं उनसे भी बचे। इसके सिवाय उसको नीचे लिखी बातें और भी छोड़ना तथा गृहण करना चाहिये।

१. मद्य, मांस, मधु और अचारका व्यापार न करे।

२. मद्य मांसवाले स्त्री पुरुषोंके साथ शयन व भोजन न करे, न उनके वर्तनोंमें खावे।

३. किसी भी प्रकारका नशा न खावे; जैसे गांजा, भांग, तम्बाकू, चुरुट आदि।

४. देह व मनके आताप—हरणके लिये व सत्पुत्रके लाभके लिये मर्यादारूप अपनी स्त्रीके साथ मैथुन सेवन करे।

५. अपनी स्त्री और पुत्रोंको धर्म—मार्गमें दृढ़ करनेका पूरा उद्यम करे।

ज्ञानानंदश्रावकाचारके अनुसार इस प्रतिमावालेको नीचे

लिखे २२ अभक्ष नहीं खाना चाहिये। इनका बहुतसा वर्णन ऊपर आ गया है।

२२ अभक्ष्यके नाम।

ओरा[१], घोरबड़ा[२], निशभोजन[३], बहुबीजा[४], बैंगन[५], संधान[६]।
बड़[७], पीपल[८], ऊंबर[९], कठूम्बर[१०], पाकरफल[११], जो होय अजान[१२]॥
कंदमूल[१३], माटी[१४], विष[१५], आमिष[१६], मधु[१७], माखन[१८], अरु मदिरापान[१९]।
फल[२०] अति तुच्छ, तुषार[२१], चलितरस[२२], जिनमत ये बाईस अखान॥

ओरा—ओला या बर्फ़ नहीं खाना चाहिये; क्योंकि अनछना पानी जमाया हुआ बहुत देरका होनेसे भीतर त्रस जीवोंको पैदा करता है।

घोरबड़ा—कांजी व दहीके बड़े यह भी हानिकारक वस्तु है। दही, उरद, राई, नमक आदिके सम्बन्धसे त्रस जीव पैदा होते हैं।

बहुबीजा—जिन फलोंके अन्दर बीज गूदेसे अलग २ हों, गूदेके अन्दर अपना घर न करें और फलोंके तोड़नेपर अलग २ गिर पड़ें—उन्हें बहुबीजा कहते हैं।

ऐसा ही कथन दिलारामविलासमें कहा है:— "अरंडकाकड़ी घीया तेल, अवर तिजारा दाना मेल। इत्यादिक बहु बीजा नाम, खाय नहीं श्रावक अभिराम—ऐसा ही किसनसिंहकृत क्रियाकोषमें है:—"वहु बीजा जामें कणधना, कहिये प्रगट तिजारा तना। जिह फल बीजनके घर नाहिं, सो फल

बहुबीजा कहवाय । ऐसे फल अरंडकाकड़ी, तिजारा आदि हैं। संस्कृतमें प्रमाण नहीं मिला।

तुषार—ओसका पानी नहीं पीना चाहिये।

चलितरस—जिन वस्तुओंका स्वाद बिगड़ जावे वे सब चीजें चलितरसमें ली जाती हैं। किस चीजका स्वाद कब बिगड़ता है इस बातकी चरचाका कोई संस्कृत ग्रंथ देखनेमें नहीं आया, परन्तु दौलतरामजीकृत क्रियाकोश भाषाके अनुसार वस्तुओंकी मर्यादा इस भांति है:—

पक्की रसोई—लाडू, घेवर, बावर, मर्मरी, बूंदी आदि जिनमें जलका अंश कम हो उनकी ८ पहर याने २४ घंटेकी मर्यादा है। पुआ, पूरी, भजिया वगैरह जिसमें जलका अंश अधिक हो उनकी मर्यादा ४ पहर याने १२ घंटेकी है याने उसी दिन बनाकर खा लेने चाहिये।

जिस चीजमें पानी न पड़ा हो, जैसे घी, शकर, आटेका मगद व लड्डू—इनकी मर्यादा आटा या किसी भी पिसे हुए चूनके बराबर है। चूनकी मर्यादा शीतऋतुमें ७ दिन, गर्मीमें ५ दिन तथा वर्षामें ३ दिनकी है।

कढ़ी, खिचड़ी, दाल, भात आदिकी मर्यादा दो पहर याने ६ घंटेकी है।

औंटे हुए दूधकी मर्यादा ८ पहर याने २४ घंटेकी है। गर्म जल डालकर तयार की हुई छाछकी मर्यादा ४ पहर याने १२ घंटे व कच्चे जलसे करी हुई छाछकी मर्यादा

जलके बराबर २ घड़ीकी है। दहीकी मर्यादा औंटे हुए दूधमें जामन देनेसे ८ पहरकी है। कच्चे पानीकी मर्यादा २ घड़ी याने ४८ मिनटकी है। लौंग, इलायची, चंदन, राख आदि पानीमें मिलानेसे पानीका स्पर्श, रस, गंध, वर्ण बदल जानेसे उस पानीकी मर्यादा २ पहर याने ६ घंटेकी है। मामूली गरम जलकी मर्यादा ४ पहर तथा औंटे हुए जलकी मर्यादा ८ पहरकी है।

सम्पादकीय नोट—जैनधर्ममें परिणामोंकी उज्ज्वलता ही बहुत जरूरी चीज है। इस दार्शनिक श्रावकके परिणामोंकी उज्ज्वलता पाक्षिकसे अधिक हो जाती है। चरणानुयोगकी अपेक्षासे तो यही कथन है कि यह श्रावक सम्यक्त्वमें कोई दोष नहीं लगाता है, परन्तु करणानुयोगकी अपेक्षासे विचार किया जाय तो सम्यग्दृष्टी ३ प्रकारके होते हैं:—१. उपशम सम्यक्ती, २. क्षायोपशम सम्यक्ती, ३. क्षायक सम्यग्दृष्टी। इनमें उपशम सम्यग्दृष्टीकी मर्यादा अंतर्मुहूर्तकी है तथा क्षायककी ३३ सागरसे अधिक है, परन्तु क्षयोपशमकी सर्वसे अधिक ६६ सागरकी है।

इस पंचम कालमें यहां क्षायकसम्यक्त तो होता नहीं, केवल उपशम और क्षयोपशमसम्यक्त होता है। सो जब उपशमकी मर्यादा केवल ४८ मिनटके भीतर की है तो अधिक कालतक ठहरनेवाला केवल क्षयोपमश सम्यक्त ही है। इस सम्यक्तके होते हुए चल, मल, अगाढ़ ऐसे तीन प्रकारके दोष लगते हैं। मलके भीतर वे ही २५ मलदोष अथवा ५ अतीचार गर्भित हैं। परन्तु चरणानुयोगकी अपेक्षासे इस श्रेणीका श्रावक इस बातका पूरा २ यत्न करता है कि कोई दोष न लग जावे। यदि चारित्रमें कोई दोष लग जावे तो उस दोषको दूर करनेके लिये प्रायश्चित्त याने दंड ल रहता है तथा चारित्रकी उज्ज्वलताके लिये श्रावक सात व्यसन, पांच उदुम्बर तथा मधु इनके दोषोंको अवश्य बचाता है।

अध्याय आठवां।

व्रत प्रतिमा।

दर्शनप्रतिमाके नियमोंका अभ्यास जब अच्छी तरह हो जावे तब मोक्षका इच्छुक श्रावक व्रतप्रतिमाके दरजेमें दाखल होकर इसके नियमोंको पालने लगता है, किन्तु पहलेके नियमोंको त्यागता नहीं है। वास्तवमें अंतरंगमें आत्माके परिणामोंकी उज्ज्वलता और बाह्यमें चारित्रकी निर्मलता ये दोनों एक दूसरे के आश्रय हैं, इसलिये चारित्रकी अधिक उज्ज्वलता इस दरजेमें की जाती है। स्वामी समन्तभद्राचार्य्यके कथनानुसार इस प्रतिमाका यह स्वरूप है:—

निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥१३८॥

(र० श्रा०)

अर्थ—जो माया, मिथ्या, निदान इन तीन शल्य याने मनके कांटोंको छोड़कर पांच अणुव्रतोंको अतीचाररहित पालता है तथा सात प्रकार शीलको भी धारता है—वह व्रतियोंमें व्रत-प्रतिमावाला श्रावक है।

शल्य—जैसे पैरमें कांटा लग जावे तो यद्यपि पैरमें घाव नहीं होता, परन्तु पीड़ा ऐसी होती है जिससे पैरको चैन नहीं पड़ती। इसी तरह माया, मिथ्या, निदान ये तीन शल्य

हैं। इनमेंसे व्रतीके कोई भी होगी तो उसके परिणामोंको निराकुल सुखका लाभ अर्थात् आत्मानुभव बाहर चारित्र पालते हुए भी नहीं होगा। इसीलिये व्रतीको योग्य है कि खूब विचार करके ये तीन कांटे अपने मनसे निकालकर फेंक देवे।

माया—अपने परिणामोंकी विशुद्धता होवे इस अभिप्रायसे तो व्रत न करे, किन्तु किसी अंतरंग लज्जा—भावसे व किसी सांसारिक प्रयोजनसे व मान बड़ाईकी इच्छासे बाहर ठीक चारित्र भी पाले तौ यह मायाका भाव है। इस भावको दूर किया जायगा तब ही व्रत पालनेके भावमें निर्मलता आयगी।

मिथ्या—व्रत पालते हुए चित्तमें पूरा श्रद्धान नहीं होना कि यह व्रत मेरे आत्मोद्धारके कारणभूत हैं। बाहर तो चारित्र ठीक पालना, परन्तु अंतरंगमें यह संशय होना कि मालूम नहीं कि इनसे अपना कल्याण होगा या नहीं अथवा अनध्यवसायका भाव करे कि हमें व्रत तो पालना ही चाहिये जो कुछ फल होगा सो होगा। इसमें यह दृढ़ निश्चय नहीं होता है कि ये व्रत मेरे मोक्ष—साधनमें उपायरूप हैं।

निदान—परलोकमें मैं नर्क, निगोद व पशुगतिसे बचकर स्वर्गादिक व राजादिकोंके मनोहर सुख प्राप्त करूं अथवा इंद्र हो जाऊं और अनेक देव देवियोंपर अपनी आज्ञा चलाऊं—इस तरहके भोगोंकी इच्छा रखता हुआ बाहरमें ठीक २ व्रतोंको पाले सो निदान शल्य है।

जो शुद्ध आत्मीक आनन्दका रसिक है वह कभी भी इन

तीन शल्यरूप भावोंको अपनेमें नहीं लाता और केवल वीत-राग भावकी वृद्धिके लिये ही व्रतादिकोंको आचरण करता है।

पांच अणुव्रत और उनके २५ अतीचार।

१. अहिंसा अणुव्रत।

संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलबधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥
(र० श्रा०)

अर्थ—संकल्प करके (इरादा करके) जो त्रसजीवोंकी हिंसा मन, वचन, काय तथा कृत, कारित, अनुमोदनासे नहीं करनी सो स्थूल वधसे विरमणरूप अहिंसा अणु-व्रत है। इस व्रतमें अपने भोजन, औषधिके उपचार व पूजा-के अर्थ किसी भी द्वेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तक त्रस जीवोंको घात करनेका इरादा नहीं करता है, न इसलिये वचन बोलता है, न कायसे चेष्टा करता है, न दूसरेसे कराता है और न किसीके ऐसे हिंसामई कार्य्यकी प्रशंसा करता है।

यहां स्थूल शब्द किस अर्थमें है? इस विषयमें पंडित आशाधरजी अपने ग्रंथ सागारधर्मामृतकी भव्यकुमुदचंद्रिका नामकी टीकामें लिखते हैं:—

स्थूलग्रहणमुपलक्षणं तेन निरपराधसंकल्प-पूर्वकहिंसादीनामपि ग्रहणं। अपराधकारिषु यथा-विधिदंडप्रणेतॄणां चक्रवर्त्यादीनाम् अणुव्रतादि

धारणं। पुराणादिषु बहुशः श्रूयमाणं न विरुद्ध्यते।

स्थूल शब्दसे यहां निरपराधियोंपर संकल्प करके हिंसादि करना ग्रहण किया गया है; क्योंकि अपराध करने वालोंको यथायोग्य दंड देना यह बात चक्रवर्ती आदिकोंके सम्बन्धमें पुराणोंमें बहुधा सुननेमें आई है और वे अणुव्रतके धारी थे। इससे दंडादि देनेमें न्याय-पूर्वक जो प्रवृत्ति करना है उसका विरोध अणुव्रतधारीके नहीं है। तथा इस व्रतका धारी असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, विद्या ऐसे षट् कर्मोंको न्यायपूर्वक करनेवाला आरंभी गृहस्थी श्रावक होता है; इसलिये आरंभी हिंसाको यह बचा नहीं सक्ता। जैसा पंडित आशाधरजी कहते हैं:—

गृहवासो विनाऽरभान्न चारम्भो विना वधात्।
त्याज्यः स यत्नात्तन्मुख्यो दुस्त्यजस्त्वानुषङ्गिकः॥१२॥

अर्थ—बिना आरम्भके गृहस्थीमें रहना नहीं हो सक्ता और आरम्भ बिना बधके नहीं हो सक्ता, इसलिये अणुव्रती श्राव-कको यत्न करके मुख्य कहिये संकल्पी हिंसाको तो छोड़ना ही चाहिये; क्योंकि व्यापारिक हिंसाका त्यागना तो कठिनतासे होने योग्य है।

मुख्य—इमं जंतुम् आसाद्य अर्थित्वेन हन्मि इति संकल्पप्रभवः।

अर्थात् इस जीवको प्राप्त होकर अपने अर्थके कारणसे मार डालूं, इस संकल्पसे होनेवाली हिंसा।

अनुषङ्गिकः कृष्यादि नु गे जातः—

अर्थात् कृषि आदि कार्यों   प्रयोगमें होनेवाली हिंसा।

श्रीसुभाषितरत्नसंदोहमें श्री मितिगति लिखते हैं:—

भेषजातिथिमन्त्रादिनिमित्तेऽपि नाङ्गिनः।
प्रथमाणुव्रताशक्तैर्हिंसनीयाः कदाचन ॥ ७६७ ॥

अर्थात्—प्रथम अणुव्रतके पालनेवालोंको उचित है कि दवाई, अतिथि—सत्कार (मिहमानोंकी दावत) तथा मंत्र वगैरहके लिये भी त्रस प्राणियोंका घात कभी न करे।

श्रीभरत चक्रवर्ती देशव्रती थे—यह बात नीचेके श्रीआदिपुराणजीके श्लोकसे प्रगट होगी।

त्रिज्ञाननेत्रसम्यक्त्वशुद्धिभाग्देशसंयतः।
स्रष्टारमभिवन्द्यायात् कैलासात् नगरोत्तमम् ॥३२१॥
॥ पर्व ४७ ॥

अर्थ—तीन ज्ञान रूपी नेत्र करके तथा सम्यक्तकी शुद्धता करके सहित देशसंयमी श्रीभरतजी, श्रीआदिनाथ स्वामी ब्रह्माको नमस्कार करके कैलाससे अपने उत्तम नगरको आये।

सारांश यह है कि प्रथम अणुव्रतीके हृदयमें तो करुणा बुद्धि ऐसी होनी चाहिये कि वह थावर एकेन्द्री जीव और त्रस द्वेन्द्रियादि सर्वकी रक्षा चाहे तथा प्रवृत्तिमें खानपानादि व्यवहारके लिये जितनी जरूरत हो उतनी ही थावर कायकी विराधना करे। जरूरतसे ज्यादा व्यर्थ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति कायिकको हिंसा न करे और

त्रस जीवोंकी हिंसा खानपानादि व्यवहार व औषधि मंत्र तंत्र, पूजा अर्चा, अतिथिका आदर आदि कार्योंके निमित्त जान बूझकर कदापि न करे।

व्यापारादि आरम्भ कार्योंमें प्रवर्तन करते हुए यह त्रस हिंसाका बचाव नहीं कर सक्ता है, यद्यपि व्यर्थ और अन्यायपूर्वक त्रस हिंसा कदापि नहीं करता। तीन वर्णके श्रावकोंको अपनी २ पदवीके योग्य असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प तथा विद्या* इन छह कर्मोंके द्वारा आजीविका जबतक आरम्भत्याग नाम श्रावकके आठवें दरजेमें न पहुंचे तबतक थोड़ी या बहुत अपनी २ स्थितिके अनुसार करनी पड़ती है। तौ भी दयावान् श्रावक जहां तक बने बहुत विचार पूर्वक वर्तन करता है। उसके अंतरंगमें तो यही श्रद्धा रहती है कि मुझे जीव हिंसा न करनी पड़े तो ठीक है, परन्तु प्रत्याख्यानावरणी कषायके उदय करके गृह कार्य्य आजीविका आदि त्यागनेको असमर्थ होता है। इससे लाचारीवश आरम्भ-जनित हिंसा छोड़ नहीं सक्ता। परन्तु यथासंभव ऐसी हिंसासे भी बचनेकी चेष्टा करता रहता है तथा यथासंभव ऐसे आरंभ बचाता है, जिनमें बहुत त्रस जीवोंका घात हो। क्षत्री, वैश्य और शूद्र हरएक वर्णवाला इस व्रतको पाल सक्ता है।

नोट—इनमेंसे असि कहिये शस्त्रद्वारा रक्षाके कार्य्यद्वारा क्षत्री; मसि, कृषि, वाणिज्यसे वैश्य और शेष दो से शूद्र आजीविका करता है।

अहिंसा अणुव्रतके ५ अतीचारः—

इस अहिंसा व्रतको निर्दोष पालनेके अर्थ इसके ५ अतीचारोंको भी त्यागना चाहिये।

वधबंधछेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५–७अ:

(उमास्वामी)

मुंचन् बंधं वधच्छेदमतिभाराधिरोपणं।
रोधं च दुर्भावाद् भावनाभिस्तदा विशेत् ॥ १५ ॥

(आशाधर)

१. लाठी, चाबुक आदिसे मारना, २. रस्सी आदिसे बांधना, ३. अंग व उपंग छेदना, ४. पशु व मनुष्योंपर उनकी शक्तिसे अधिक बोझेका लादना, ५. अपने आधीन स्त्री, पुत्र, नौकर, चाकर, पशु आदिकोंका अन्नपान रोक देना, समय टालकर देना व कम देना—ये पांच अतीचार प्रथम अणुव्रतके हैं।

प्रश्न—ग्रहस्थी जब प्रजाकी व पुत्रोंकी रक्षा करता है अथवा पुत्रोंको शिक्षाके अर्थ दंड देता है तथा अपने काम योग्य पशुओंकी परिग्रहको रखता है तब ऊपर लिखित दोषोंसे कैसे बच सक्ता है?

उत्तर—इसी शंकाके निवारणके लिये पंडित आशाधर-जीने दुर्भावात् हेतु दिया है, जिसका खुलासा नीचे लिखे अनुसार संस्कृतमें पंडितजीने किया हैः—

दुर्भावात्—दुर्भावं दुष्परिणामं प्रबलकषायोदय-लक्षणम् आश्रित्य श्रियमाणो यो बंधस्तद्वर्ज्जनम् । अयं विधिः बंधो द्विपदानां चतुष्पदानां वा स्यात् । सोऽपि सार्थकोऽनर्थको वा ? तत्र अनर्थकस्तावत् श्रावकस्य कर्तुं न युज्यते । सार्थकः पुनः द्वेधा—सापेक्षो निरपेक्षः । तत्र सापेक्षो यो दामग्रन्थादिना शिथिलेन चतुष्पदानां विधीयते यश्च प्रदीपनादिषु मोचयितुं छेत्तुं वा शक्यते । निरपेक्षो यन्निश्चलम् अत्यर्थम् अमी वध्यंते । द्विपदानां दासदासीचोरपाठादि-प्रमत्तपुत्रादीनां यदि बंधो विधीयते तदा स विक्रमणा एव अमी बंधनीया रक्षणीयाश्च यथा अग्निभयादिषु एव न विनश्यन्ते ।

अर्थ—दुर्भाव याने खोटे परिणाम जो प्रबल कषायके उदयसे होते हैं ऐसे परिणामोंके द्वारा किया हुआ बंधन सो नहीं करना योग्य है । उसकी विधि यह है:—

द्विपद कहिये मनुष्य और चतुष्पद कहिये गाय, घोड़ा, पशु इनका बंधन जो होता है सो दो प्रकारसे होता है। पहला सार्थक याने मतलबसे, दूसरा निरर्थक याने बे मतलब। सो अनर्थक बंधन तो श्रावकको करना उचित नहीं है और सार्थक बंधन दो प्रकारका है । पहला सापेक्ष दूसरा निरपेक्ष ।

सापेक्षसे मतलब यह है कि (उनकी रक्षाकी अपेक्षा करके) चार पैरवाले पशुओंको ढीला रस्सी आदिसे इस तरह बांधना कि वे अग्नि आदि भय व उपद्रवके पड़नेपर उस बंधनको खुद छुड़ा सकें व उसको छेद सकें ।

निरपेक्ष बंधन यह है कि (रक्षाकी गरज न रखके) अत्यन्त दृढ़ बांध देना, सो न करना चाहिये । तैसे ही दास, दासी, चोर व पढ़ने आदिके आलसी पुत्र शिष्यादिको यदि शिक्षा देनेकी गरजसे बंधन किया जावे तो इस तरह होना चाहिये कि वे चल फिर सकें तथा उनकी रक्षा करनी चाहिये, ताकि अग्नि आदिके भयोंसे उनको हानि न पहुंचे । इसके सिवाय यदि तीव्र क्रोधादि करके अर्थात् अंतरंग हिंसा-भाव करके किसीको बांधा जायगा तो अतीचार होगा, क्योंकि बाह्यमें वह उसका प्राण लेना नहीं चाहता है ।

अतीचार एक देशव्रतके भंगको कहते हैं । इसी विषयमें पंडित आशाधरजी कहते हैंः-

व्रतं द्विविधं अन्तर्वृत्त्या बहिर्वृत्त्या च । तत्र मारयामि इति विकल्पाऽभावेन यदा कोपाद्यावेशात् परप्राणप्रहरणम् अवगणयन् बंधादौ प्रवर्तते न च हिंसा भवति तदा निर्दयता विरत्यनपेक्षतया प्रवृत्तत्वेन अंतर्वृत्त्या तस्य भंगो हिंसायाः अभावात् बहिर्वृत्त्या च पालनम् । देशस्य भंजनात् देशस्यैव पालनात् अतिचारः इत्यादिश्यते. ”

अर्थ-व्रत दो तरहसे होता है। एक अंतरंग और दूसरा बाह्य। जब मैं मार डालूं, इस विकल्पके विना केवल क्रोधादि कषायोंके वेगसे दूसरेके प्राणोंकी पीड़ाको गिनता हुआ दूसरोंके साथ बधादिकी प्रवृत्ति करता है, तब उसकी हिंसा तो नहीं होती हैं, परन्तु उसके परिणाम निर्दयतासे अलग नहीं हैं। इसलिये अंतरंगके भंगसे तो व्रतका भंग हुआ, परन्तु बाह्यमें हिंसा नहीं हुई, इससे बाह्य व्रतका पालन हुआ। इसलिये एकदेश व्रतका त्याग और एकदेश व्रतका पालना इसीको अतीचार कहते हैं।

ऊपर लिखी चरचाके अनुसार तीव्र कषायसहित हो करके जब किसीको लाठी चाबुक आदिसे मारा जायगा व अंग उपंगादि छेदे जांयगे व अति बोझा लादा जायगा व अन्नपान रोका जायगा, तब हिंसामें अतीचार लगेगा। परन्तु जो प्रयोजनार्थ शिक्षाके अर्थ किसीको ताड़ना की जाय व छेदन किया जाय (जैसे डॉक्टर चीरा देता है) व अति बोझा लादा जाय व अन्नपान कुछ कालके लिये रोका जाय, तो अतीचार नहीं लगेगा। क्योंकि वह अंतरंगमें उसकी ओर दया भाव ही रखता है। जैसे शिष्योंको साधारण थप्पड़ मारना व उनके ऊपर तख्ती लादनी व एक किसी खास भोजनकी मनाई कर देनी आदि।

नोट-आजकल यह देखा जाता है कि तीव्र लोभ कषायके वश व्यापारीगण पशुओंके अंगोपांग छेदते, अधिक बोझा लादते व खानपान रोक रखते व जब चलनेमें ढील करते तब जोरसे लाठी चाबुक मारते व कसकर बांध देते हैं इत्यादि। यह प्रवृत्ति पशुओंको दुखदाई है। इसलिये इनकी बन्दी होनी चाहिये तथा अध्यापक लोग बहुधा बड़ी निर्दयताके साथ शिष्योंको बेत

मार देते हैं जिससे उनको बड़ी वेदना हो जाती है। इससे यह उचित है कि स्कूलों और पाठशालाओंसे वेतकी मारको बन्द कर दिया जावे। दयापूर्वक योग्य दंड देनेमें कोई हर्ज नहीं है।

बैल, घोड़े आदिकोंकी इंद्री छेदनेकी जो प्रवृत्ति है क्या इसको बंदकर उनसे काम नहीं लिया जा सक्ता? इस बातपर पाठक गणोंको ध्यान देना चाहिये। यदि कोई वीर पुरुष उद्यम करके इस प्रवृत्तिको बन्द करा देंगे तो कोटानुकोटपशुओंके दया पात्र होंगे।

हमको ध्यान रखना योग्य है कि इक्का, बग्घी, बैलगाड़ी आदि पर उतने ही आदमी बैठें जितनी कि सरकारी आज्ञा है। बिचारे मूक पशु कुछ मुखसे कह नहीं सक्ते और हमारी बेखबरीसे उनको अधिक बोझा घसीटना पड़ता है, जिससे उनके अंतरगं परिणाम संक्लेशित होते हैं और वृथा हांकने वालेके द्वारा मार सहनी पड़ती है।

२. सत्य अणुव्रत।

स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥ ५५ ॥

(र० श्रा०)

अर्थ–जो स्थूल झूठ नहीं बोलता है, न दूसरेसे बुलवाता है तथा जिससे किसीपर विपत्ति आ जाय ऐसे सत्यको भी नहीं बोलता है–उसका नाम स्थूल मृषावादवैरमण–नाम व्रत है ऐसा सन्त पुरुष कहते हैं।

क्रोध,–लोभमदरागद्वेषमोहादिकारणैः।
असत्यस्य परित्यागः सत्याणुव्रतमुच्यते ॥ ७६९ ॥

(अमितिगति)

अर्थ—क्रोध, लोभ, मद, राग,द्वेष,मोह आदि कारणोंसे झूठ बोलनेका जो त्याग करना उसको सत्याणुव्रत कहते हैं। श्रीउमास्वमीजीने कहा है:—

प्रमत्तयोगाद् सदभिधानमनृतम्। १४-७ अ.

अर्थात् प्रमादसहित याने कषायसहित मन, वचन, काय योगोंके द्वारा जो असत्य कहना सो अनृत है।
यह अनृत वचन चार प्रकारका है। (अमृतचंद्र पुरु०)

१. जो चेतन व अचेतन पदार्थ हो उसको कहना कि नहीं है। जैसे किसीने पूछा कि क्या देवदत्त है? उसको कहना कि नहीं है, यद्यपि देवदत्त मौजूद है।

२. जो चेतन व अचेतन पदार्थ न हो उसको कहना कि है; जैसे किसीने पूछा कि क्या यहां घड़ा है? तो इसको यह उत्तर देना कि 'है' यद्यपि वस्तु मौजूद नहीं है।

३. जो चेतन व अचेतन पदार्थ जैसा हो उसको वैसा न कहकर और रूप कहना। जैसे किसीने पूछा कि क्या यहां देवदत्त है? तो देवदत्त होते हुए भी यह कहना कि यहां देवदत्त नहीं है, किन्तु रामसिंह है अथवा धर्मका स्वरूप हिंसामई कहना।

४. गर्हित, सावद्य और अप्रिय वचन कहना, दुष्टता हंसी करनेवाले बचन, कठोर वचन तथा अमर्यादीक वचन व बहुत प्रलाप याने बकवादरूप वचन कहना सो गर्हित है छेदन, भेदन, ताड़न, मारण, कर्षण, वाणिज्य तथा चोरी

आदिके पापरूप वचन कहना सो सावद्य वचन है। अरति पैदा करनेवाले, भय देनेवाले, खेद करनेवाले, वैर, शोक तथा कलह कहिये लड़ाई करानेवाले तथा संताप पैदा करने वाले वचनोंको कहना सो अप्रिय वचन हैं।

इन ४ प्रकारके असत्योंमेंसे केवल भोग और उपभोगकी सामग्रीकी प्राप्ति व उसके उपायोंके लिये सावद्य कहिये पाप रूप वचनोंके सिवाय और समस्त असत्यको त्यागना योग्य है। आरम्भ कार्य्योंके लिये जो वचन कहा जाता है वह भी सावद्य नामका असत्य है, परन्तु आरंभी गृहस्थी इस तरहके असत्यको त्यागनेसे लाचार है। सत्य अणुव्रतीको योग्य है कि वचन बहुत सम्हालके बोले; कड़वे, कठोर, मर्म छेदनेवाले आदि अविनय करनेवाले तथा अभिमान बढ़ानेवाले वचनोंको यद्यपि वे सत्य भी हों तब भी न कहे। जिन सत्य वचनोंसे दूसरेपर भारी आपत्ति आ जाय व प्राण चले जाँय ऐसे सत्य वचनको भी नहीं बोले। व्यापारादिमें वस्तुकी लागत झूठ न बतावे, उचित नफा जोड़कर दाम लेवे, खोटी वस्तुको खरी न कहे। सत्य बोलनेवाला गृहस्थी अपना विश्वास जमाता है तथा थोड़ीसी बातचीतमें अपना मतलब सिद्ध कर सकता है।

यह अवश्य याद रखना चाहिये कि जिस वचनके कहनेमें अंतरंगमें प्रमत्तभाव अर्थात् कषाय भाव हों उसीको असत्य भाव कहते हैं। प्रमत्तयोगरहित जो वचन हैं सो असत्य नहीं हैं।

सत्यवचन बोलनेवाले अणुव्रतीको ५ अतीचार याने दोष बचाने चाहिये ।

मिथ्योपदेश रहोभ्याख्यान कूटलेखक्रियान्यासापहार साकारमंत्रभेदाः ॥ (उमास्वामी—तत्त्वार्थ सूत्र)

अर्थ—१. प्रमादसे सत्य धर्मसे विरुद्ध मिथ्या धर्मका उपदेश देना अथवा प्रमादसे परको पीड़ा पहुंचे ऐसा उपदेश देना सो मिथ्योपदेश है—इसमें अपना कोई अर्थ नहीं है ।

२. 'स्त्री पुरुषाभ्यां रहीस एकान्ते यः क्रिया विशेषः अनुष्ठितः वास क्रिया विशेषः गुप्तवृत्त्या गृहीत्वा अन्येषां प्रकाश्यते ।'

अर्थात् स्त्री पुरुष जो एकान्तमें क्रिया कर रहे हों उसको छिप करके जान लेना और फिर दूसरोंको प्रगट कर देना हास्य व क्रीड़ाके अभिप्रायसे कहना, सो अतीचार है ।

३. झूठा लेख पत्रादि व बहीखाता लिखना व झूठी गवाही दे देना (व्यापारादि कार्य्यमें कभी ऐसा करना सो अतीचार है) सो कूटलेख क्रिया है ।

४. अपने पास कोई अमानत रुपया पैसा व चीज़ रख गया और पीछे उसने भूलकर कम मांगी तो आप यह कह देना कि इतनी ही आपकी थी सो ले जाइये—यह न्यासापहार अतीचार है । याने न्यास कहिये अमानतका हर लेना ।

५. कहीं दो आदमी व अधिक गुप्त रीतिसे कोई मंत्र याने सलाह कर रहे हों उसको इशारोंसे जानकर उनकी मरजी बिना दूसरोंको प्रगट कर देना, अभिप्राय प्रमादका

अवश्य है तो यह साकारमंत्रभेद नामका अतीचार है। इन पांच दोषोंको अवश्य बचाना चाहिये और व्यवहारमें सत्यताका झंडा गाड़ना चाहिये। जो जीव सत्यतासे व्यापारादि करते व जगत्के लोगोंसे व्यवहार करते हैं उनको कभी किसी झगड़ेमें नहीं फंसना पड़ता और न कचहरियोंमें जाने की नौबत आती है। सत्य वचनसे ही मनुष्यकी शोभा है। वचनको बोलनेकी शक्ति बड़ी कठिनतासे प्राप्त होती है। इसलिये सत्य वचन कहकर अपने परिणामोंको उज्ज्वल रखना चाहिये। प्रमाद व कषायके वशमें पड़ असत्यवादी नहीं होना चाहिये।

३. अचौर्य्य अणुव्रत।

निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम्।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृषचौर्यादुपा रमणम् ॥५७॥
(र० श्रा०)

अर्थ—रक्खा हुआ, गिरा हुआ, भूला हुआ व विना दिया हुआ दूसरेका धन जो नहीं लेता है न किसीको देता है, सो स्थूल अचौर्य्यव्रत है।

येऽप्यहिंसादयो धर्मास्तेऽपि नश्यन्ति चौर्यतः।
मत्वेति न त्रिधा ग्राह्यं परद्रव्यं विचक्षणैः ॥ ७७६ ॥
अर्थाः बहिश्चराः प्राणाः प्राणिनां येन सर्वथा।
परद्रव्यं ततः सन्तः पश्यन्ति सदृशं मृदा ॥ ७७८ ॥
(अमितिगति)

अर्थ—चोरी करनेसे अहिंसा आदिक धर्म भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसा जानकर मन, वचन, कायसे चतुर पुरुषों-को दूसरोंके द्रव्यको नहीं चुराना चाहिये। प्राणियोंके बाह्य प्राण धन है, इसलिये दूसरेका द्रव्य सर्वथा मिट्टीके समान है—ऐसा सन्त पुरुष देखते हैं।

यह अणुव्रती उन चीजोंको बिना दी भी ले सक्ता है जिन चीजोंकी राजा व पंचायत व किसी समाजकी तरफसे लिये जानेकी आम इजाज़त है। जैसे हाथ धोनेके लिये मिट्टी व नहाने व पीनेके लिये नदी, तालाव, कुएका जल व इसी किस्मकी और कोई छोटी चीज़ जैसे पत्ती, फूल, फल, तिनका, घास वगैरह। अगर इन चीजोंके लिये कहीं मनाई हो तो इन का लेना भी चोरी है। जिस चीज़को लेनेपर कोई पकड़ नहीं सक्ता, न मना कर सक्ता है ऐसी सर्व साधारणके लेने योग्य चीजको लेना सो स्थूल चोरी नहीं है।

इसके पांच अतीचार हैं:—

सूत्र— स्तेन प्रयोग तदाहृतादान विरुद्ध राज्यातिक्रम हीनाधिक मानोन्मान प्रतिरूपक व्यवहाराः॥ (उमास्वामी)

१. स्तेनप्रयोग—चोरीके लिये प्रेरणा करनी। जिसको मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे स्थूल चोरीका त्याग है, उसके लिये तो चोरसे चोरी कराना व्रतका भंग करना ही होगा, परन्तु यहां अतीचार इसलिये कहा है कि जैसे किसीके पास खानेको नहीं है व गरीब है और उससे कहना कि:जो वस्तु तुम

लाओगे हम ले लेंगे व बेंच देंगे—इसमें एकदेश भंग होनेसे अतीचार है। (सागारधर्मा०)

२. तदाहृतादान—चोरीका लाया हुआ पदार्थ लेना। चोरीका पदार्थ गुप्त रीतिसे ले लेना वह तो चोरी ही है, परन्तु व्यापारार्थ कुछ अल्प—मूल्यमें लेना सो तदाहृतादान अतीचार है।

३. विरुद्धराज्यातिक्रम—विरुद्धं विनष्टं विग्रहीतं वा राज्यं छत्र भंगः तत्र अतिक्रमः उचित न्यायात् अन्येन प्रकारेण अर्थस्य दानं ग्रहणम्। (सा०)

अर्थ—कहीं राज्य भ्रष्ट हो गया है व छत्र भंग हो गया है वहां जाय करके अमर्यादासे व्यापार करना याने उचित न्यायको छोड़कर द्रव्यादिका देना लेना सो विरुद्ध राज्यातिक्रम अतीचार है। कोई २ ऐसा अर्थ भी करते हैं कि राजाकी आज्ञाके विरुद्ध महसूल कमती देना।

४. हीनाधिक मानोन्मान—प्रमादसे व्यापारमें कमती बांटोंसे तौलकर देना व बढ़ती बांटोंसे लेना सो अतीचार है।

५. प्रतिरूपक व्यवहार—खरीमें खोटी चीज मिलाकर व्यापार बुद्धिसे खरी कहकर बेंचना सो चोरीका अतीचार है। जैसे दूधमें पानी, घीमें तेल, सोनेमें तांबा आदि मिलाकर दूध, घी, सोना कहकर बेंचना सो अतीचार है।

इसी कार्य्यमें यदि लोभकी अति आशक्तता होगी तो साक्षात् चोरी ही हो जायगी अथवा खोटे रुपये बनाकर उनसे लेन देन करना जैसा स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षाकी संस्कृत टीकामें कहा है:—

"ताम्रेण घटिता रूप्येण च सुवर्णेन न घटिता स्ताम्ररूप्याभाव घटिना द्रम्माः (greek) तत् हिरण्यम् उच्यते, तत्सदृशाः केनचिन् लोक वंचनार्थं घटिता द्रम्माः प्रतिरूपकाः उच्यंते तैः प्रतिरूपकैः असत्यनाणकैः (coins) व्यवहारः क्रयविक्रयः प्रतिरूपक व्यवहारः ॥"

तांबे चांदीके बने हुए दिरमको हिरण्य कहते हैं। किसीने लोगोंको ठगनेके लिये उसीके समान दूसरे रुपये बना लिये याने झूठे रुपये बनाकर लेन देन करना सो प्रतिरूपक व्यवहार है।

तीसरे अणुव्रतके धारीको उचित है कि ऊपर लिखे हुए पांचों अतीचार याने दोषोंसे बचे। क्योंकि निर्दोष व्रत पालनेसे इस लोकमें विश्वास व व्यापारको बढ़ायेगा, यशको पायेगा और ऐसा पाप नहीं बांधेगा जिससे अशुभगतिका बंध हो और परलोकमें दुःख उठावे।

४. ब्रह्मचर्य्य अणुव्रत।

नतु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदार निवृत्तिः स्वदार सन्तोष नामापि ॥ ५९ ॥
(रत्न०)

अर्थ-जो न तो पर स्त्रियोंसे काम भोग करता है और न दूसरोंको कराता है उसके परदारानिवृत्ति अथवा स्वस्त्रीसंतोषव्रत होता है।

मातृ स्वस्ट सुता तुल्या निरीक्ष्य परयोषितः।
स्वकलत्रेण यतस्तोषश्चतुर्थं तदणुव्रतम् ॥ ७७८ ॥

यार्गला स्वर्ग मार्गस्य सराणिः श्वभ्रसद्मनि।
कृष्णाहि दृष्टि वद्द्रोही दुःस्पर्शाग्नि शिखेव या ॥७७९॥

(अमितिगति)

अर्थ—पर स्त्रियोंको माता, बहन व पुत्रीके समान देखके अपनी स्त्रीसे ही संतोषित रहना सो चौथा ब्रह्मचर्य अणुव्रत है।

यह परस्त्री स्वर्गके मार्गमें आड़ है, नर्क महलमें लेजानेको सखी है, काले सांपकी दृष्टिके समान बुरा करने वाली है तथा नहीं छूने योग्य अग्निकी शिखा है। पुरुषको अपनी विवाहिता स्त्रीमें और स्त्रीको अपने विवाहित पतिमें ही सन्तोष रखना चाहिये।

गाथा—पव्वेसु इच्छिसेवा अणंग क्रीड़ा सदा विवज्जंतो।
थूलपड़ बह्मचारी जिणेहिं भणिदो पवयणम्हि ॥

(स्वा० टीका)

पर्वमें स्वस्त्रीकी सेवा तथा अनंगक्रीड़ा भूलकर भी ब्रह्मचारी नहीं करता है—ऐसा जिनेन्द्रने प्रवचनमें कहा है। १ मासमें २ अष्टमी और २ चौदस पर्वी हैं। इसके सिवाय तीन अष्टान्हिका और दशलक्षणीके १० दिन भी पर्वीमें गिनकर शीलव्रत पालना चाहिये। इस व्रतके भी पांच अतीचार बचाना चाहिये।

सूत्र-परविवाहकरणेत्त्वरिका परिग्रहीता परिग्रहीतागमना-नङ्ग क्रीड़ा कामतीव्राभिनिवेशाः ॥ (उमा०)

१. "पराविवाहकरणं स्वपुत्र पुत्र्यादीन् वर्जयित्वा अन्येषां गोत्रिणां मित्रस्व-जन परजनानां विवाह करणं ॥" (स्वा०)

अर्थ—अपने पुत्र पुत्री आदि (घरके भीतरके लड़के लड़की) के सिवाय अन्य गोत्रवाले मित्र रिश्तेदार आदिकोंके विवाहोंका करना।

२. इत्वरिकापरिग्रहीता गमन—अन्यकी परणी हुई स्त्री जो व्यभिचारिणी हो उससे सम्बन्ध रखना याने लेनदेन बोलने बैठने आदि व्यवहार करना।

३. इत्वरिका अपरिग्रहीता गमन—विना परणी हुई स्त्री जैसे कन्या, दासी, वेश्या आदिसे सम्बन्ध रखना।

गमनं—जघन्य स्तन व दंतादि निरीक्षणं संभाषण हस्तभ्रू कटाक्षादि संज्ञा-विधानं इत्येवमादिकं निखिलं रागित्वेन दुश्चेष्टितं गमनं इत्युच्यते (स्वा०टीका)

अर्थ—परस्त्री व वेश्यादिके जघन्य, स्तन व दांत आदि अंगोंका देखना, प्रेम पूर्वक बात चीत करना, हाथ, भौंके कटाक्ष वगैरहसे संज्ञा करना इत्यादि जो २ दुष्ट चेष्टा रागकी अधिकतासे करना उसको गमन कहते हैं।

४. अनङ्गक्रीड़ा—अपनी स्त्रीही के साथ व अन्य किसी पुरुष व नपुंसकको स्त्रीके समान मानके काम सेवनके अंगों-को छोड़कर अन्य अंगोंसे काम चेष्टा करनी।

५. कामतीव्राभिनिवेश—कामकी तीव्रता रखना अर्थात् अपनी स्त्रीके साथ भी अत्यन्त तृष्णामें होकर काम सेवन करना, तृप्तता न पानी।

नोट—वास्तवमें जब स्त्री रजस्वला हो उसके पीछे ही पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे गर्भाधानादि क्रिया करनी चाहिये। शेष दिनोंमें संतोषित रहना चाहिये।

ब्रह्मचर्य्यव्रत शरीरकी रक्षा व आत्मिक उन्नतिका साधक है, क्योंकि शरीरमें वीर्य अपूर्व रत्न है। इसकी यथासंभव रक्षा करनी अत्यंत आवश्यक है। स्त्री-सेवनके भाव करने ही से वीर्यरूपी रत्न मलीन हो जाता है।

५. परिग्रह प्रमाण।

धन धान्यादि ग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु नि·
स्पृहता। परिमित परिग्रहः स्यादिच्छा परिमाण
नामापि ॥ ६१ ॥ (रत्न०)

अर्थ—धन धान्यादि ग्रन्थोंका प्रमाण करके उससे अधिकमें अपनी इच्छाको रोकना उसको परिमित परिग्रह अथवा इच्छा परिमाण नाम पांचवां अणुव्रत कहते हैं।

परिग्रह १० प्रकारका होता है:—

१. क्षेत्र—धान्योत्पत्तिस्थानं—धान्यके पैदा होनेकी जगह।

२. वास्तु—गृहहट्टऽपवरादिकं—घर, दूकान, कोठी व धान्य भरनेकी जगह।

३. हिरण्यं—रूप्य ताम्रादि घटित द्रम्म व्यवहार प्रवर्तितं। चांदी, तांबे, सोने आदिके बने हुए सिक्के जिनका व्यवहार होता है।

४. सुवर्ण— कनकं—सोना।

५. धन—गोमहिषी गजवाजि बड़वोऽष्ट्राऽजादिकं—गाय, भैंस, हाथी, घोड़े, ऊंट, बकरे आदि।

६, धान्य—अष्टादस भेदं—अनाज १८ प्रकार हैं। १.गोधूम (गेहूं) २. शालि (चाँवल) ३. यव, ४. सर्षप (सरसों) ५. माष (उरद) ६. मुद्ग (मूंग) ७. श्यामाक, ८. कंगु, ९, तिल, १०. कोद्रव, ११. राजमाषा, १२. कीनाश, १३. ताल, १४. मथवैणव, १५. माढ़कीच, १६. सिंबा, १७. कुलथ, १८. चणकादि सुबीज धान।

७. दासी—स्त्री सेविकाएं।

८. दास—पुरुष सेवक।

९. भांड—गृहस्थीमें वर्तने योग्य वर्तन।

१०. कुप्य—वस्त्र नाना प्रकारके।

ग्रहस्थीको योग्य है कि इन १० प्रकारके परिग्रहोंका जन्म भरके लिये प्रमाण कर लेवे। छोटा व बड़ा, राजा व रंक अपनी २ हैसियत व आवश्यक्ताके अनुसार प्रमाण करे कि अपने पास किसी भी काल इतनी वस्तुओंसे अधिक न रक्खूंगा। जैसे प्रमाण करना कि ५ खेत इतने बीघेके व इतने मकान व इतना रुपया व इतना सोना रत्न व इतनी गाय, भैंसे, घोड़े आदि व इतना अनाज घरमें खाने योग्य (जैसे १ मासके खर्चसे अधिक नहीं) व इतनी दासी व दास व इतने गिन्तीके व इतने तौलके वर्तन व अपने पहननेके इतने कपड़े।

एक कुटुम्बी जब कई मनुष्योंके साथ रहता है और उसी-का पूरा अधिकार है तब वह कुटुम्ब भरकी वस्तुओंका आप प्रमाण करता है फिर उससे अधिक कुटुम्बमें नहीं आने देता। यदि कुटुम्बमें भाई व पुत्र ऐसे हैं कि जो अपनी इच्छाके अनुसार प्रवर्तने वाले नहीं हैं और शामिल रहते हैं तो उनसे सलाह करके प्रमाण करे। यदि परस्पर सम्मति न हो सके तब अपनी इच्छानुसार प्रमाण करे और यह विचार कर ले कि जब इतना धन आदि परिग्रह हो जायगा तब यह भाई पुत्र और अधिक बढ़ानेकी इच्छा करेंगे तो मैं अपने सम्बन्धी खास परिग्रहको जुदा कर लूंगा और शेषसे ममत्व त्याग दूंगा। उस समय पृथक की हुई परिग्रहको फिर वह बढ़ा नहीं सक्ता है। ऐसा विचार करके कि मैंने यहां तक रक्खी थी अब भागमें तो बहुत कम आई है, इसलिये जितनेका नियम है उतनी बढ़ा लें, तो वह व्रत खंडन होगया—ऐसा समझा जायगा। अथवा यों भी प्रमाण कर सक्ता है कि मैं अपने खास काममें इतनी २ परिग्रहको ही लेऊंगा ऐसा प्रमाण करनेसे शेषसे उसका ममत्व भी न रहेगा और न वह उनका प्रबन्ध कर अपने काममें ले सक्ता है। ऐसी हालतमें संतोष वृत्ति रखनेको अपने हक़की परिग्रहको जुदी ही कर लेनी मुनासिब है।

यह व्रत अधिक तृष्णा व लोभके त्यागके लिये किया जाता है, ताकि ऐसा न हो कि तृष्णाके पीछे धनके बढ़ाने में ही अपना जन्म बिता देवे और संतोष करके कभी पारमार्थिक

सुखके भोगका विशेष उद्यम न करे। इस व्रतका यह मतलब भी नहीं है कि किसी जीवको निरुद्यमी किया जावे। यहां यह प्रयोजन है कि जहां तक उसकी इच्छा रुके वहां तकका प्रमाण करले आगेकी तृष्णा न करे। विना संतोषके जीवको साता नहीं आती। जो केवल अप्रमाण धन बढ़ाते ही जाते हैं और कभी संतोष नहीं करते उनको जीवन भरमें सुख नहीं होता, वरन वे अन्तकाल मरणके समय अत्यन्त तृष्णासे मर पशु व नरक गतिके भागी होते हैं; उन्हें संकटकी मृत्यु मरना पड़ता है, न कि शांति की। क्योंकि यह हमारा जीवन इस मनुष्य पर्यायमें थोड़े कालके लिये है और धनादि परिग्रह केवल इस पर्याय ही को सहाई है। अतएव उनका प्रमाण कर लिया जावे तो तृष्णा अपने वशमें रहे और जब इच्छानुसार धन हो जावे फिर निश्चिन्त हो सन्तोष पूर्वक रहे, धर्म ध्यान ही में शेष जीवन वितावे। कोई २ ऐसा प्रमाण करते हैं कि अमुक धनसे अधिक जितना पैदा करेंगे सर्व धर्मकार्य्यमें लगावेंगे। जैसे किसीने ५ लाखका प्रमाण किया और जब अधिक पैदा होने लगा तो धर्मकार्यमें लगाने लगा—यह भी एक प्रकारसे कुछ तृष्णाका प्रमाण है, परन्तु यह व्रत इसको कमानेकी तृष्णासे कभी छुट्टी नहीं लेने देगा। इसलिये पंचमव्रतीको ऊपर लिखे अनुसार प्रमाण करना उचित है, क्योंकि प्रयोजन संतोष प्राप्त करनेका है।

संतोषाश्लिष्ट चित्तस्य यत्सुखं शाश्वतं शुभम्।

कुतस्तृष्णागृहीतस्य तस्य लेशोऽपिविद्यते ॥ ७८९ ॥
यावत्परिग्रहं लाति तावद्धिंसोपजायते ।
विज्ञायेति विधातव्यं सङ्गः परिमितो वुधैः ॥ ७९० ॥
(अमितिगति)

अर्थ–संतोषसे भीगे हुए चित्तको जो शुभ और अविनाशी सुख प्राप्त होता है उसका लेशमात्र भी सुख तृष्णासे जकड़े हुए जीवको कहांसे हो सक्ता है ? जबतक परिग्रहको रक्खेगा तबतक हिंसा उत्पन्न होगी ऐसा जानकर बुद्धिवानोंको परिग्रहका परिमाण करना योग्य है ।

इस व्रतके भी ५ अतीचार हैं:—

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः । (उ० स्वामी)

इन१०प्रकारकी परिग्रहमें दो दो का एक जोड़ करके परस्पर एकके प्रमाणको घटाकर दूसरा वढ़ा लेना सो अतीचार हैं। जैसे क्षेत्र था १० बीघा और मकान थे ४, अब जरूरत देखके १ बीघा क्षेत्र कम करके मकानको बढ़ा ले व क्षेत्रकी पैदावार ज्यादा जानके एक मकान तुड़वाके क्षेत्रमें जमीन मिला दे । अथवा रुपये१०००० रक्खा,सोना १०० तोला रक्खा और तब सोनेका भाव घटता देखकर रुपयोंसे सोना खरीदकर बढ़ा लेवे व सोनेका भाव बढ़ा जानकर सोना वेंचकर रुपये बढ़ा ले अथवा गाय भैंसादिमें कमीकर बदलेमें धान्य विशेष

जमा करले कि फिर मँहगा हो जायगा अथवा धान्यके स्थानमें एक व दो गाय भैंस बढ़ा ले व गायका बच्चा हुआ उसको न गिने व कुप्य भांड़में कपड़ोंको बेंचकर वर्तन बढ़ा लेना व वर्तनोंकी संख्या कमकर कपड़ोंकी संख्या बढ़ा लेना—इस तरह ये पांच अतीचार हैं।

देशव्रतीको उचित है कि अपने परिणामोंकी उज्ज्वलताके लिये इस व्रतको निर्दोष पालकर अपनी आत्मोन्नतिमें पद पद पर बढ़ता जावे।

व्रतप्रतिमावाला इन उपर्युक्त व्रतोंको अतीचाररहित पालता है। प्रयत्न अतीचाररहित ही का करता है। यदि कोई अतीचार लगे तो प्रतिक्रमण करता है व प्रायश्चित्त लेता है। इनके सिवाय नीचे लिखे सात शील भी पालता है। इनमें ३ गुणव्रत तो अणुव्रतोंके गुणोंको बढ़ाने वाले हैं और ४ शिक्षाव्रत शिक्षारूप अभ्यास करने योग्य हैं।

प्रथम गुणव्रत दिग्व्रत।

दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्नैया स्यामि।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमा मृत्यणु पापविनि वृत्त्यै ॥६८॥

(र० क०)

अर्थ—दशों दिशाओंमें प्रमाण करके यह प्रतिज्ञा करे कि इसके बाहर मैं नहीं जाऊंगा—इस प्रकारका संकल्प करना उसे दिग्व्रत कहते हैं। यह व्रत मरण पर्यंत उस क्षेत्रके बाहर पापोंको छोड़नेके अर्थ है।

सांसारिक, व्यापारिक व व्यवहारिक कार्य्यके लिये जन्म पर्यंत दशों दिशाओंमें जानेकी व ऐसे ही अन्य रीतिसे पत्रादिद्वारा व्यवहार करने की जो प्रतिज्ञा लेनी उसे दिग्व्रत कहते हैं। तीर्थयात्रा व धर्म सम्बन्धी कार्यके लिये मर्यादा नहीं होती है जैसा ज्ञानानंदश्रावकाचारमें कहा है " क्षेत्रका प्रमाण सावद्य योगके अर्थ करै धर्मके अर्थ नहीं करे। धर्मके अर्थ कोई प्रकार त्याग है ही नाहीं।" गृहस्थीको अपनी तृष्णाको रोकनेके लिये यह व्रत करना चाहिये जहांतक उसको व्यापारादि करना हो वहां तककी अपनी इच्छानुसार हद्द बांध ले। फिर उस हद्दके बाहरके लिये चाह न करें। जैसे किसीको भारतवर्षके सिवाय अन्य यूरोपीय आदि देशोंसे भी व्यवहार करना है तो जहां तक आवश्यक्ता हो वहां तक रख ले शेषका त्याग करे। चार दिशा चार विदिशामें व ऊपर व नीचे १० दिशाओंमें कोस व मीलोंके प्रमाणसे व प्रसिद्ध स्थान जैसे नदी पर्वत आदिको हद्द कायम करता हुआ प्रतिज्ञा लेले। जैसे यह प्रतिज्ञा लेवे कि ८ दिशाओं-में हरएकमें १००० कोसकी तथा ऊपर नीचे पांच पांच कोसकी हद्द रक्खी अथवा यों प्रमाण करे कि पूर्वमें अमुक नदी, पश्चिममें अमुक पहाड़, दक्षिणमें अमुक नगर, उत्तरमें अमुक पहाड़ी—ऐसे ही विदिशा व ऊपर नीचेका प्रमाण करे। जिस जगह जो जमीनकी सतह हो उससे यदि किसी पर्वत-पर चढ़े तो यदि पांच कोसकी मर्यादा है तो उतना ही जावे।

वैसे ही उससे नीचे किसी खान व खंदकमें जितनी मर्यादा हो उससे अधिक न जावे ।

इस दिग्व्रतसे बड़ाभारी लाभ यह होता है कि जहां तक हद्द रख ली है उसके आगे जाने आने लेनदेन करनेका त्याग होनेसे इच्छा रुक जाती है, लोभादि कषाय घटते हैं। कषाय घटानेसे ही इस जीवका भला है ।

इस व्रतके भी पांच अतीचार हैं:-

ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् व्यतिक्रम क्षेत्र वृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि॥

(उमास्वामी)

१. ऊर्धव्यतिक्रम-ऊपर जानेका जो प्रमाण किया होय उसको विना विचार भूलसे उल्लंघन कर जाय याने हद्दसे ज्यादा चला जाय ।

(अनाभोग व्यतिक्रमादिभिः अतीचाराः) (सा० धर्मा०)

२. अधः व्यतिक्रम-नीचे जानेका जो प्रमाण किया होय उसको विना विचारे भूलसे लांघकर ज्यादा चला जाय। (ऊपरके समान)

३. तिर्यक् व्यतिक्रम-८ दिशाओंमें जो प्रमाण किया होय उसको विना विचारे भूलसे लांघकर अधिक चला जाय। (ऊपरके समान)

४. क्षेत्र-वृद्धि "व्यासंग मोह प्रमादादि वसेन लोभा वेशात् योजनादि परिच्छिन्न दिक् संख्यायाः अधिकाक्षणं क्षेत्र वृद्धि रुच्यते यथा मान्याखेटाव-स्थितेन केनचित श्रावकेन क्षेत्र परिमाणं यत् धारापुरी लंघनं मया न कर्तव्यं

इति पश्चात् उज्जयिन्यां अनेन भांडेन महान लाभो भवति तत्र गमनाकांक्षा गमनं च क्षेत्र वृद्धिः । दक्षिणा पथा गतस्य धाराया उज्जयिनी पंच विंशति गव्यूतिभिः किंचिन्न्यूनाधिकाभिः परतो वर्तते ॥ (स्वा० सं० टीका)

भावार्थ–मोह प्रमादादिके वशसे व लोभके वशमें आकर जितने योजनका प्रमाण जिस दिशाका किया हो उसको बढ़ा लेना सो क्षेत्रवृद्धि है । जैसे मान्यखेट निवासी किसी श्रावकने यह परिमाण किया कि मैं धारापुरीको लांघ कर नहीं जाऊंगा, परन्तु पीछे उज्जैनीमें महान लाभ होता जान वहां जानेकी इच्छा करनी व चला जाना सो क्षेत्रवृद्धि है । दक्षिण मार्गसे जाने वालेके लिये धारापुरीसे उज्जैनी २५ कोससे कुछ कम व अधिक आगे है ।

नोट–ऐसे बढ़ाने वालेके यह अभिप्राय रहता है कि एक तरफ बढ़ा लो दूसरी तरफ घटा देंगे–सो यह अतीचार है ।

५. स्मृत्यन्तराधान–जो मर्यादा ली हो उसको स्मरण न रखना । इसका अतीचार इस तरह होगा कि जैसे किसीने १०० कोसकी मर्यादा ली थी अब वह उस ओर गया और जाते२ याद न रहनेसे शंका आ गई कि मर्यादा १०० कोसकी थी कि ५० की । ऐसी दशामें यदि ५० से आगे गया तो अतीचार हो जायगा ।

व्रतीश्रावकको उचित है कि इस व्रतको भली प्रकार पाले ।

दूसरा गुणव्रत अनर्थदण्ड–त्याग ।

अभ्यन्तरं दिगवधे रपार्थिकेभ्यः सपापयोगेभ्यः ।

विरमणमनर्थदण्डव्रतं च विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥७४॥
(र० क०)

अर्थ–जो दिशाओंकी मर्यादाकी होय उसके भीतर बेमतलब पापरूप मन, वचन, कायकी क्रियाओंसे विरक्त रहना सो अनर्थदंड त्यागव्रत है–ऐसा महामुनियोंने कहा है।

जिसमें अपना कोई भी कार्य्य न सधै ऐसे पापोंका करना सो अनर्थदंड है।

यह पांच प्रकारका होता है:–

पापोपदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीःपञ्च ।
प्राहुःप्रमादचर्य्यामनर्थदण्डानदण्डधराः॥ ७५ ॥
(र० क०)

अर्थ–पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति तथा प्रमादचर्य्या–ऐसे ये पांच भेद मुनियोंने कहे हैं।

१. पापोपदेश–दूसरोंको पापमें प्रवर्तनेका उपदेश देना। जैसे वनके दाह करनेका, पशुओंके वाणिज्यका, शस्त्रादिके व्यापारका इत्यादि अन्य जीवोंको कष्ट पहुंचे ऐसे कार्य्योंके करनेका अथवा हिंसामई व्यापारोंका उपदेश दूसरोंको देना। जैसे किसी शिकारीसे कहना कि "अरे तू क्यों सुस्त बैठा है, देख इधरसे हिरण भागते गये हैं अथवा अमुक देशसे घोड़े आदिकोंको पकड़कर अमुक देशमें बेचा जाय तो बहुत धनकी प्राप्ति हो इत्यादि।" यदि यह न कहता तो

यह हिंसामई कार्य्यमें न प्रवर्तता और कुछ भी काम करता, परन्तु इसके कहनेसे वह अधिक हिंसाके कार्मोमें प्रवर्तन करने लगा और इसका इस कार्यके करनेमें कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। जैसा कहा हैः—

तिर्यक्क्लेशवाणिज्याहिंसारम्भ प्रलम्भनादीनाम्।
कथा प्रसङ्ग प्रसवः स्मर्तव्यः पापउपदेशः॥ ७६॥

(र० क०)

२. हिंसादान।

परशुकृपाणखनित्र ज्वलनायुध शृङ्ग शृंखलादीनाम्।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः॥ ७७॥

(र० क०)

अर्थ—फरसी, तलवार, कुदाड़ी, अग्नि, हथियार, सांकल (जंजीर) शृङ्ग (सींग) आदि पदार्थ जिनसे दूसरे जीवोंका वध हो ऐसी चीजोंको दान करना उसे हिंसादान अनर्थदंड कहते हैं। जैसे अपना कोई मतलब नहीं है और किसीने हमसे हिंसाकारी चीजें मांगी तो दे देनेमें मालूम नहीं वह कितनी व कैसी हिंसा करे—इससे अनर्थ पापका बंध होता है। इस कारण हथियार, जाल आदि पदार्थोंके दान करनेमें अपनी महंतता समझना पाप है। पंडित आशाधरका कथन हैः—कि आग, मूसल आदि भोजन पकानेके पदार्थ "परस्परं व्यवहार विषयात् अन्यत्र नदद्यात्।" आपसमें व्यवहार हो

उसके सिवाय और किसीको न देवे। यहां प्रयोजन यह मालूम होता है कि जैसे ४ गृहस्थी श्रावक एक मकानमें व अड़ौस पड़ौसमें रहते हैं उनके आपसमें किसी कमती बढ़ती चीजके लेनदेनका व्यवहार है तो उस हालतमें जबकि यह जानता हो कि यह इन चीजोंसे यत्नपूर्वक काम लेगा तो आग व खरल मूसलादि भोजन पकानेकी चीजें परस्पर दी ली जांय तो हिंसादानअनर्थदंड नहीं है। प्रत्येक कार्य्यमें विचारकी जरूरत है।

३. अपध्यान।

बन्धबधच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।
आध्यानमपध्यानं शासितिजिनशासने विशदाः॥७८॥

(र० क०)

अर्थ—राग और द्वेषके वशमें होकर किसीके बंधनमें पड़नेका व मारे जानेका व छेदन किये जानेका तथा परस्त्री आदिके हरनेका जो वारंवार विचार करना व सोच करना सो अपध्यान है—ऐसा जिनशासनमें महान् पुरुषोंने कहा है। अर्थात् बैठे २ किसीकी बुराई विचारनी, जीत हार विचारनी इत्यादि विना मतलब खोटा ध्यान करना सो अपध्यान अनर्थदंड है।

४. दुःश्रुति।

आरम्भ सङ्ग साहस मिथ्यात्त्व द्वेष राग मद मदनैः।

चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥ ७९ ॥

(र० क०)

अर्थ—जिन कथाओंके पढ़ने सुननेसे मनमें कलुषता याने मलीनपना हो जाय जैसे आरंभपरिग्रह बढ़ानेवाली पाप-कर्मोंमें हिम्मत करनेवाली तथा मिथ्याभाव, राग, द्वेष, अभिमान अथवा कामदेवको प्रगट करनेवाली कथाओंका पढ़ना सुनना दुःश्रुति है। बहुधा लोक कहानी किस्से उपन्यास पढ़नेमें अपना समय लगाते हैं सो सब अनर्थदंड है।

नोट—कोई पुस्तक विचारवानोंके द्वारा गुण औगुणकी परीक्षाके अर्थ व कर्त्ताकी बुद्धिकी जांचके अर्थ पढ़े जाना व मिथ्यामार्गको दूर करनेके अर्थ पढ़े जाना सो दुःश्रुति नहीं होगी, क्योंकि वहां अभिप्राय एक खास उपकारी प्रयोजनका है।

५. प्रमादचर्य्या।

क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदम्।
सरणं सारणमपि च प्रमादचर्या प्रभाषन्ते ॥ ८० ॥

(र० क०

अर्थ—बेमतलब जमीन खोदना, पानी गिराना, आग जलाना, हवा करना व वृक्षादि छेदना व चलना, चलाना सो सब प्रमादचर्य्या है—ऐसा कहते हैं। विना किसी अर्थके प्रमादसे एकेन्द्री आदि जीवोंको तकलीफ देना सो प्रमाद-चर्य्या है। जैसे रास्तेमें चलते चलते झाड़के पत्ते नोच लेना, थोड़े पानीसे काम चले तौभी ज्यादा पानी मुंधाना आदि।

इस अनर्थदंडव्रतके पांच अतीचार हैं:—

सूत्र—कन्दर्पकौत्कुच्य मौखर्य्यासमीक्ष्याधि करणोपभोग-परिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥ (उमा सा०)

१. कंदर्प—नीच पुरुषोंके योग्य हंसी मशकरीके भांडरूप वचन बोलना ।

२. कौत्कुच्य—भांड वचनोंके साथ २ कायसे खोटी चेष्टा भी करनी, जैसे मुंह चिढ़ाना ।

३. मौखर्य्य—बहुत बकबाद करनी अर्थात् जो बात थोड़ेमें कही जाय उसके लिये बहुत बड़ी लम्बी चौड़ी बात बनाकर बेमतलब व्यवहार करना ।

४. असमीक्ष्याधिकरण—विना विचारे आरंभी वस्तुओंको इकट्ठा करना व अधिक मकानादि बनाकर जैसे सकट, ऊंट, घोड़े बहुतसे जमा करना इस अभिप्रायसे कि जो मुझे जरूरत न होगी तो दूसरे लोग मुझसे ले लेंगे अथवा प्रयोजन विना मन, वचन, कायको अधिकतासे प्रवर्तन करना ।

५. भोगोपभोगानर्थक्य—भोग जो एक दफे काममें आसके जैसे भोजन व फूल माला । उपभोग—जो बारंबार काममें आसके जैसे कपड़ा—इनका अनर्थ व्यवहार करना अर्थात् चाहिये थोड़ा और बहुत लेकर खराब करना । जैसे कोई आदमी नदी किनारे स्नानको गया और जितना चाहिये उससे अधिक तेल ले गया, वहां जो बचा

सो औरोंको दिया, सर्व जनोंने तेल लगा नदीमें स्नान किया जिससे अधिक हिंसा हुई । इसका दूसरा नाम सेव्यार्थाधिकता है यानें सेवने योग्य पदार्थ अधिक रखना । इसी प्रकार थालीमें ज्यादा भोजन पुरसा लेना जो आप खा न सके और वृथा फेकना पड़े । विवेकबुद्धि रखनेसे व समय और अपनी शक्तियोंकी कदर करनेसे ये सर्व दोष सहजमें टल सक्ते हैं ।

तीसरा गुणव्रत भोगोपभोगपरिमाण ।

अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥ ८२ ॥

[र० क०]

अर्थ—जो प्रयोजनभूत इन्द्रियोंके विषय हैं उनकी गिनती किसी काल तकके लिये राग, रति आदि कषायोंके कम करनेके लिये करना सो भोगोपभोगपरिमाण है ।

बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं जिनमें फल याने लाभ तो थोड़ा और पाप बहुत है । इनको जन्म भरके लिये छोड़ना चाहिये ।

अल्प फल बहुविघातान्मूलक मार्द्राणि शृङ्गवेराणि ।
नवनीत निम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥ ८५ ॥
यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानुपसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसन्धि कृताविरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥८६॥

[र० क]

नालिसूरण कालिंद द्रोणपुष्पादिवर्जयेत् ।
आजन्मतद्भुजां ह्यल्पफलं घातश्चभूयसाम् ॥ १६ ॥
अनन्तकायाः सर्वेऽपि सदाहेयादयापरैः ।
यदेकमपितं हन्तुं प्रवृत्तो हन्त्यनन्तकान् ॥ १७ ॥

[सा० ध०]

भावार्थ—थोड़ा लाभ और बहुत हिंसाको उत्पन्न करने वाली जो चीजें हैं उनको आजन्म छोड़ना चाहिये । जैसे आर्द्राणि कहिये सचित्त मूलक (याने जो तरकारी जड़रूप काममें आवे) जैसे मूली, अदरक, शृंगवेर, नवनीत याने मक्खन, नीमके फूल, केतकी, नालि सूरण कमलकी जड़ व डंडी, कालिंद (तरबूज) द्रोणफूल आदि । जैसे गोभी, कचनार अथवा सर्व अनन्त काय यानें जिस एकके नाश करनेसे बहुतोंकी हिंसा हो ऐसी साधारण बनस्पति। जैसे कन्दमूल, आलू, घुइयां यानें वे सब फल जो जमीनके नीचे फले तथा और अन्य भी अनन्त काय जैसा श्रीगोमट्टसार अभयचंद्र संस्कृत टीकामें कहा हैः—

यत् प्रत्येक शरीरं गूढसिरं अदृश्य बहिःस्नायुकं, गूढसंधि अदृश्यसंधिरेखा बंधं, गूढ पर्व अदृश्य गृन्थिकं, समभंगत्वक् रहितत्वेन सदृशछेदं, अहीरुहं अंतर्गतसूत्र राहितं, छिन्नं रोहतीति छिन्नरुहं, च तत्शरीरसाधारणं साधारण जीवाश्रितत्वेन साधारणम् इति उपचारेण प्रतिष्ठित शरीरं इत्यर्थः तद् विपरीतं

गूढ शिरत्वादि पूर्वोक्त लक्षण राहितं तालनालकेरादि शरीरं अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीरं ॥

भावार्थ–जिन वनस्पतियोंका सिर गूढ़ हो याने बाहेरका सिरा मालूम न पड़े, संधिगूढ़ हो याने संधिकी लकीरोंका बंधन न दीख पड़े (परमाणु मिलते हुए लकीरें बन जाती हैं) गूढ़ पर्व हों यानें उनकी गांठ न मालूम पड़े (जैसे गन्नेमें पर्व होती है) समभंग हों याने बराबर २ टुकड़े हो जांय, त्वचा छालका सम्बंध न रहे, अहीरुह हों यानें जिनके भीतर सूत्र याने तार न हों, छिन्नरुह यानें जिनको तोड़कर बोनेसे जम जावें–ये सर्व बनस्पति साधारण हैं याने उनमें साधारण जीव अनन्त हैं। इन्हींको प्रतिष्ठितप्रत्येक कहते हैं। इन लक्षणोंसे जो रहित हों जैसे नारियल, ताड़ आदि वे सब अप्रतिष्ठित प्रत्येक हैं याने अनन्त कायसे आश्रित नहीं हैं।

नोट–मालूम होता हैं इन ६ लक्षणोंमें कोई किसी कोई किसी वनस्पतिके पाया जायगा, सब एक के संभव नहीं होता मालूम होते हैं। यह विषय जांच करने योग्य है।

गाथा—मूले कंदे छेल्ली पवाल साल दल सुकुंम फल बीजे।
सम भंगे सदिणंता असमे सदि होंति पत्तेया।

याने–जड़, धड़, छाल (त्वचा,) नये पत्ते याने कोंपल, छोटी शाखा, पत्ते, फूल, फल, बीज धान्यादि–ये ९ चीजें यदि बराबर छालरहित भंग हो जांय तब तो साधारण है नहीं तो प्रत्येक है। इसके सिवाय जिन वस्तुओंके खानेसे रोग आदिकी संभावना मालूम पड़े व ध्यान स्वाध्यायमें विघ्न करता

हो वे सर्व अनिष्ट हैं, उनको भी त्यागना चाहिये। तथा जो उत्तम कुलके ग्रहण योग्य नहीं–ऐसी सर्व वस्तु अनुपसेव्य हैं उनको भी छोड़ना चाहिये। जैसे ऊंटका दूध, गायका मूत्र, संख, हाथीके दांत, हड्डीके बटन, झूठा भोजन आदि।

नीचे लिखे पदार्थ भी आजन्म त्यागने योग्य हैं:—

आम गोरस सम्पृक्तं द्विदलं प्राय सोऽनवम्।
वर्षास्वदलितं चात्र पत्र शाके च नाहरेत् ॥ १८ ॥ (सा० ध०)

अर्थ—मुद्ग माषादिधान्यं आमेन अनग्निपक्केन गोरसेन, क्षीरेण दध्ना अक्कथित क्षीरोद्भव संभूतेन तक्रेनच संपृक्तं मिलितं तत् हि सूक्ष्म बहु जन्तु आश्रितम् द्विदलं अन्नं अनवम् पुराणं–प्रायः (शब्द) ग्रहणात् पुराणस्यापि चिरकाल कृष्णीभूत कुलछादेः अदृष्ट जंतुसंमूर्छस्य।

अदलितं—प्रावृषि मुद्गादीनां अन्तः प्ररोहस्य आयुर्वेदे प्रसिद्धत्त्वात्।

भावार्थ–१. जिनकी दो दालें हो जाती हैं उन अन्नोंको द्विदल कहते हैं। जैसे मूंग, उरद, चने आदि। धान्यको विना अग्निमें पके हुए याने कच्चे दूध या कच्चे दहीसे मिलाकर या विना गर्म किये हुए दूधसे उत्पन्न छांचके साथमें मिलाकर जो चीज बनती है उसको द्विदल कहते हैं। ऐसी चीजोंको नहीं खानी चाहिये, क्योंकि उसमें मुखकी रालके सम्बन्धसे बहुतसे त्रस जीव पैदा हो जाते हैं।

२. पुराना द्विदल अनाज न खावे। खासकर वह जिनके ऊपर कालापन आ जावे, क्योंकि उसमें संमूर्छन जीव पैदा होते हैं।

३. वर्षाऋतुमें विना दले हुए मूंग, मटर, चने आदि अनाजको न खाएं, क्योंकि भीतर वर्षाके कारण ऊग आया करते हैं–ऐसा आयुर्वेदमें भी कहा है।

जो वस्तु खाने योग्य है व जो चीजें उपभोग करने योग्य हैं उनको २४ घंटेके लिये रोज सबेरे प्रमाण कर लेवे। ऐसी चीजें १७ हैं:—

भोजने षट्रसे पाने कुंकुमादि विलेपने, पुष्पं ताम्बूल गीतेषु नृत्यादौ ब्रह्मचर्य्यके। स्नानं भूषणं वस्त्रादौ वाहने शयनाशये, सचित्तवस्तु संख्यादौ प्रमाणतः प्रकीर्तिता।

अथवा।

भोजन वाहन शयन स्नान पवित्राङ्ग रागकुसुमेसु।
ताम्बूल वसन भूषण मन्मथ संगीत गीतेषु॥ ८८॥
अद्यदिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्त्तुरयणं वा।
इतिकाल परिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः॥८९॥

(र. क.)

नीचे लिखी १७ बातोंका प्रमाण करे:–

१. आज भोजन कै दफै करूंगा।

२. आज दूध, दही, घी, तेल, नमक, मीठा–इन छहमें से कौनसा रस छोड़ता हूं।

३. आज भोजनके सिवाय खाली पानी इतनी दफे पीऊंगा।

४. आज चंदन, उबटन, तेल लगाऊंगा या नहीं, यदि लगाऊंगा तो इतनी दफे ।

५. आज फूल सूंघूंगा कि नहीं, यदि सूंघूंगा तो इतनी दफे ।

६. आज ताम्बूल नहीं खाऊंगा, यदि खाऊंगा तो इतनी दफे ।

७. आज गीत बाजा नहीं सुनूंगा, यदि सुनूंगा तो इतनी दफे ।

८. आज नाच नाटकादि नहीं देखूंगा, यदि देखूंगा तो इतनी दफे ।

९. आज ब्रह्मचर्य पालूंगा, यदि न पालें तो इतनी बार स्वस्त्रीसे खंडित करूंगा ।

१०. आज स्नान नहीं करूंगा यदि, करूंगा तो इतनी दफे ।

११. आज आभूषण नहीं पहनूंगा, यदि पहनूंगा तो इतने ।

१२. आज वस्त्र इतने जोड़से अधिक न पहनूंगा ।

१३. आज बाहनपर न चढूंगा, यदि चढूंगा तो इतने बाहनोंपर इतनी दफे चढूंगा ।

१४. आज इतने प्रकारके शय्यादिकोंपर शयन करूंगा ।

१५–आज इतने प्रकारके आसनोंपर सोऊंगा ।

१६–आज हरी तरकारी इतनी खाऊं गा । आज कच्चा पानी नहीं पीऊंगा ।

१७–आज भोजनमें कुल इतनी वस्तुएं लूंगा ।

इस तरह १७ बातोंका नियम रोज करे । एक तख्तेपर व १ कापीमें १७ बातोंके खानें बना लेवे

उसीको रोज देख लेवे तथा पेन्सलसे संख्या लिख देवे। दूसरे दिन रबरसे बिगाड़ उस स्थानपर अन्य संख्या लिख देवे यदि बदलना होवे तो। इन नियमादिके करनेके लिये नियमपोथी नामकी पुस्तक संकलित की गई है जिससे नियम करनेका वहुत सुभीता है। इस व्रतके ५ अतीचारोंको बचावें।

सूत्र—सचित्त साचित्तसंबंध सन्मिश्राभिषव दुःपक्वाहाराः
(उमास्वा०)

१. सचित्त—जो हरी तरकारी त्यागकर चुका है उसको भूलसे खाजाना अथवा कच्चा पानी त्यागा होय और भूलसे कच्चा पानी पी लेना।

२. सचित्तसंबंध —सचित्तसंबंध मात्रेण दूषित आहारः जैसे त्यागे हुए हरे पत्तेपर रक्खा हुआ भोजन अथवा सचित्त संबंधं गोंदादिकं पक्व फलादिकं वा सचित्त अंतर्बीजं खर्जूराम्रादिच, तद् भक्षणं हि सचित्त वर्जकस्य प्रमादादिना सावद्याहार प्रवृत्ति रूपत्वात् अतीचारः अथवा बीजं त्यक्ष्यामि तस्यैव सचेतनत्वात्। कटाअहंतु भक्षयिष्यामि तस्य अचेतनत्वात् इति बुद्ध्या पक्व खर्जूरादि फलं मुखे प्रक्षिपतः सचित्त वर्जकस्य सचित्त प्रतिबद्धा हारो॥
(सा० ध०)

अर्थात्—गोंदादिक पक्के फल व आम खजूर आदि फल जिनके अन्दर बीज हो उनको खा लेना सो सचित्त त्यागीके अतीचार हैं, क्योंकि प्रमाद करके सचित्त बीजको उसने अलग नहीं किया है। अथवा यह विचार करके पक्का आम खजूर आदि फल मुंहमें डाल दे

कि मैं इनके बीजोंको तो थूंक दूंगा, क्योंकि वह सचित्त हैं और उसके गूदेको खा जाऊंगा, क्योंकि वह अचित्त है— ऐसा करना सचित्तत्यागीके लिये सचित्तसम्बन्ध अतीचार है।

३—**सचित्तसन्मिश्र**—सचित्त द्रव्य सूक्ष्म प्राण्यातिमिश्रः । **अशक्य-भेदकरणः** अर्थात् सचित्त द्रव्य आहारसे इस कदर मिल गया हो कि उस सचित्तको अलग न किया जा सके उसे खाना अथवा आर्द्रक दाडिम चिर्भटादि मिश्रं पूरणादिकं तिलमिश्रं च यवदानादिकं ।

अर्थात् अदरक, अनार, खीरा ककड़ी आदि द्रव्योंसे मिला हुआ पूरण यानें लप्सी आदिकी बनी रोटी व तिलसे मिला हुए जवके दाने आदि।

४. अभिषव—अत्यन्त पुष्ट व कठिनतासे हजम होने लायक आहार ।

रात्रिचतुः महरैः क्लिन्न उदनोद्रवः इन्द्रियबलवर्द्धनो माषादि विकारादिः वृष्यः द्रव्यवृष्यस्य आहारः ।

अर्थात् चार पहर रातका वासी उदनोद्रव या इन्द्रिय बलको बढ़ानेवाले उरदसे बने हुए पदार्थ वृष्य हैं, ऐसा भोजन सो द्रव्यवृष्यका आहार है।

दुष्पक—जो खराब व कम पका हुआ हो व अधपका हो

सांत स्तंदूल भावेन अति क्लेदनेन वा दुष्टपक्वं मंद पक्वं । तच्चार्द्धपक्वं पृथुक तैदुल यव गोधूम स्थूल मंडक (मांड) फलादिकं आमदोषवहत्त्वेन ऐहिक प्रत्यवाय कारणं तथा यावतांशेन ततसचेतनं तावतापरलोकमपि उपहंति ॥ (**सा० ध०**)

अर्थात् भीतर चांवल अत्यंत ही पक गया हो या खराब पका

जैसे जल गया हो या कम पका हो तथा अधपका हो जैसे साली जौं, गेहूं, मंडक व अन्य फल आदि। कच्चे रहनेसे शरीरको हानि कारक है तथा जितने अंशमें वह सचेतन हैं याने कच्चे हैं उतने अंशमें परलोकका भी बिगाड़ करते हैं।

वृष्यदुःपक्कयोः सेवनेसति इन्द्रिय मद् वृद्धिः सचित्तोपयोगः वातादि प्रकोपोदर पीड़ादि प्रतीकारे अग्न्यादि प्रज्वालने महान् असंयमः ॥

(स्वा० स० टीक)

अर्थात्–पुष्ट और खराब पके भोजनके खानेसे इन्द्रिय मदकी वृद्धि होती है, सचित्तका उपयोग होता है तथा वात आदिका प्रकोप हो जाता है, पेटमें दर्द उठ आता है, अग्नि आदि जल उठती है जिससे बहुत असंयम हो जाता है।

नोट—व्रतीप्रतिमावालेको बहुधा सचित्त भोजन त्यागका नियम रहता है इसीसे ऊपरके अतीचार इसी खयालसे लिखे गये हैं। यद्यपि इसके लिये यह जरूरी ही नहीं है कि यह सचित्तको त्यागे ही, परन्तु नियम करना जरूर है।

तथापि खास २ तिथियोंपर खास २ पर्वयोंपर जैसे अष्टमी, चौदस, अष्टान्हिका आदिमें अवश्य सचित्तको त्यागता है तब कच्चा पानी व कोई सचित्त फल आदि नहीं खाता है, परन्तु अचित्त कहिये प्राशुक जल व अचित्त अन्नादि व्यवहार करता है।

प्रश्न–अन्न व फल अचित्त कैसे हो जाता है?

उत्तर—तत्तं पक्कं सुक्कं अंवलि लवणेहिं मिस्सियं दव्यं जंजंतेणयछिन्नंतंसव्वं पासुकं भणियं। (स्वा० कीसं० टीका०)

जो वस्तु अग्निसे तप्त याने खूब गरम करली जाय व पक जाय, धूपमें या अग्निमें पक जावे, सूख जावे या आवंला कहिये कषायला पदार्थ और लोण अदिको मिला दिया जावे व जो वस्तु यंत्रसे छिन्न भिन्न कर दी जाय वह वस्तु प्राशुक हो जाती है। जैसे पानी गर्म किया हुआ व लौंग आदि द्रव्योंसे स्पर्श, रस गंध, वर्ण बदला हुआ, अन्न पकाया हुआ, फल सूखा हुआ या छिन्नभिन्न कर दिया गया।

पंडित आशाधरके ऊपरके अतीचारोंके लेखसे ऐसा मालूम होता है कि जो आम्र या खजूर पका हुआ हो उसका ऊपरका गूदा अचित्त है, परन्तु उसके भीतरकी गुठली सचित्त है। इस अपेक्षासे जैसे हम सचित्त अन्नको पीस करके व भूज करके व अग्निमें पका करके अचित्त करते हैं-ऐसे ही सचित्त फलको पीस करके व आगमें पका करके व सुखा करके व उसको किसी यंत्रसे छिन्नभिन्न कर देने से या नोन मिर्च खटाई व दूसरी कषायली चीजको मिला देनेसे अचित्त कर सक्ते हैं अथवा पके फलकी गुठली निकाल गूदा खा सक्ते हैं। परन्तु यदि उसके गूदेके पके होनेमें सन्देह हो तो कषायला द्रव्यादि मिला लेवे। सचित्तका त्यागी अचित्तका व्यवहारकर सक्ता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रश्न—जब ऐसा है तब अष्टमी चतुर्दशीको हरी तरकारीको अग्निसे पकाने पर क्या दोष होगा?

उत्तर–यद्यपि सचित्तका त्यागी अचित्त व्यवहारके हेतु ऐसा करे तो उसकी प्रतिज्ञा मात्रकी अपेक्षासे उसको कोई दोष न होगा। तथापि आजकल व्यवहारमें जो यह रीति है कि जिस हरी तरकारीका त्याग होता है उसको उस दिन नहीं पकाते हैं। यह इस कारण कि यदि रोजके समान ही वह तरकारी लाकर पकाता है तो उसके परिणामोंसे राग भावकी बहुत तुच्छ कमी होती है। इसके विरुद्ध यदि वह रोजके समान तरकारी न मंगावे तो उसको अपने परिणामोंमें यह विदित होता है कि मैंने कुछ त्याग किया है अर्थात संयम धारण किया है। इसमे परिणामोंमें रागकी विशेष कमी रहती है। अतएव यह प्रवृत्ति कषाय मंदताके कारणसे बुरी नहीं है। मात्र सचित्त अवस्थाके त्यागकी अपेक्षा यदि कोई उस सचित्त वस्तुको ग्रहण करके अचित्त करनेका भी त्याग करे तो उसके रागकी अत्यन्त मन्दता है। इस कारण इस प्रवृत्तिको उठाना योग्य नहीं है, क्योंकि इस आरंभके त्यागसे एकेन्द्री जीवोंके घातसे भी वह बच गया। तथापि जो केवल सचित्त मात्र वस्तुका त्यागी है उसके लिये अचित्त वस्तु लेना सर्वथा निषेध नहीं है तथा वह सचित्तको अचित्त कर भी सक्ता है। परंतु ऐसा करने से वह एकेन्द्री जीवोंकी हिंसा नहीं बचा सक्ता।

प्रश्न–२. यदि कोई उस दिन तरकारीको न पकावे, परन्तु कई दिन पहलेसे ही हरी तरकारीको मंगाकर सुखा लेवै

तो इसमें क्या दोष है ?

उत्तर–इसका भी उत्तर पहलेके समान है अर्थात् जो मात्र सचित्त अवस्थाका त्यागी है वह अचित्त कर सक्ता है। परन्तु यदि वह उस दिन हरीको पकाना नहीं चाहता तो भीतर परिणामोंमें राग भावकी जांच करके देखा जाय तो उसको सुखाना भी नहीं चाहिये, क्योंकि राग भावकी कमी नहीं भई। परन्तु जो चीज आमतौरसे स्वयं हाटमें सूखी हुई मिलती है उसको लेकर व्यवहार कर सक्ता है। इसलिये अपने आप न सुखाकर आमतौरसे मिलने वाली सूखी वस्तु लेने की जो पद्दत्ति वर्तमानमें है उसको भी उठाना योग्य नहीं है। यद्यपि यह समाधान ऊपर दिया गया है तथापि भोगोपभोग परिमाणव्रतका करनेवाला यदि किसी दिन सर्व सचित्तको त्यागे तो उसको अचित्त गृहण करनेका त्याग नहीं है। जिनमतमें मूल अभिप्राय कषायोंके मंद करने का है। अतएव जिस तरह अपना रागभाव घटे उस तरह चलना चाहिये।

आगे चार शिक्षाव्रतोंको कहते हैं:–

१–प्रथम शिक्षाव्रत–देशावकाशिक शिक्षाव्रत है।

देशावकाशिकं स्यात्काल परिच्छेदनेनदेशस्य।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥ ९५ ॥

(र० क०)

भावार्थ—जो परिमाण दशों दिशाओंका दिग्व्रतमें किया जा चुका हो उसमेंसे प्रतिदिन किसी नियमित कालके लिये थोड़ा परिमाण रखकर बाकीका त्याग करना सो देशाव-काशिक या देशव्रत है ।

दिग्व्रतमें जन्म पर्यंतके लिये दशों दिशाओंमें बहुत बड़ा क्षेत्र रखना होता है, परन्तु रोज इतने क्षेत्रसे किसीका प्रयो-जन नहीं रहता । इसलिये अपने संतोषको व पापोंकी प्रवृत्तिके रोकनेको स्थिर करनेके लिये जितने क्षेत्रमें जाने आने, व्यापार लेनदेन, चिट्ठी पत्रीका सम्बन्ध जाने उतने क्षेत्रकी मर्यादा एक दिन, दो दिन, चार दिन, पक्ष, मास, चार मास, छह मास तथा एक वर्ष तकके लिये जैसा अपना निर्वाह समझे कर लेवे ! जैसे किसीको ८ दिशाओंमें एक २ हजार कोसका व ऊपर नीचे २५ कोसका प्रमाण है, परन्तु आज उसकी इच्छा है कि मैं अपने नगरसे बाहर न जाऊं और न किसीको भेजूं तो वह अपने नगरकी आठों दिशा-ओंकी हद्दबन्दीके अन्दरका प्रमाण कर ले तथा ऊपर नीचे ५० गज व जितनी इच्छा हो रख ले । दूसरा दिन लग-नेपर दूसरा प्रमाण करे ।

देशव्रती ऐसा भी प्रमाण कर सक्ता है कि आज १२ घंटे तक मैं इस घरसे बाहर कोई लौकिक सम्बन्ध नहीं रक्खुंगा, यहीं बैठा २ क्रिया करूंगा अथवा किसीको रोज़ अपने नगरसे बाहर जानेका तो काम नहीं पड़ता, परन्तु

आदमी व पत्र व बस्तु भेजने व पत्रादि मंगानेका काम पड़ता है तौ वह यह विचारे कि मैं कहां तक ऐसा सम्बन्ध आज करूंगा। ऐसा समझकर यह प्रमाण कर सक्ता है कि मैं अपने नगरसे बाहर नहीं जाऊंगा तथा भेजना व मंगाना आठों दिशाओंमें सौ सौ कोस व ऊपर नीचे२०गज तक करूंगा अथवा १ बाजार व रास्ते व अमुक सड़क तक आज मेरे व्यवहार है शेषका त्याग है। इस तरह प्रमाण किया जा सक्ता है।

इस व्रतके धारीको ५ अतीचार बचाने चाहिये:-

आनयन प्रेष्यप्रयोग शब्दरूपानुपात पुद्गलक्षेपाः॥३१॥

(त० सू०)

भावार्थ-१. दशों दिशाओंमें जितने स्थानकी हद्द जितने काल तक बांध ली हो उतने काल तक उतने स्थानसे बाहरकी जगहसे किसीको बुलावे व कोई चीज मंगा लेवे सो आनयन नाम पहला अतीचार है। जैसे किसीने आठों दिशाओंमें पचास २ कोसकी मर्यादा की, लेकिन कोई माल बहुत बड़े लाभका पूर्व दिशाकी ओर अपनी मर्यादासे १ हाथ दूरपर आया हुआ है-ऐसा सुनकर यह विचार किया कि हम पश्चिमकी ओर २५ कोससे आगेकी कोई चीज न मंगावेंगे इसके बदलेमें इस मालको मंगा लेवें तौ बड़ा लाभ हो-ऐसा सोचकर उसको मंगा लेना सो आनयन नामा अतीचार है। इसमें व्रत सर्वथा तो नहीं तोड़ा गया, किन्तु एक

देश खंड किया गया, इससे यह अतीचार भया।

२. मर्यादा की हुई जगहसे बाहर वस्तुओंको भेजना सो प्रेष्यप्रयोग नामा अतीचार है। इसका स्वरूप भी ऊपरके समान जानना।

३. मर्यादाके बाहर कोई काम आ पड़ने पर आप तो न जाना, किन्तु अपना शब्द ऐसा बोल देना जिससे मर्यादाके बाहरका आदमी सुन ले और कामका परस्पर भुगतान हो जावे,—सो शब्दानुपात नामा तीसरा अतीचार है।

४. मर्यादाके बाहर कोई काम आ पड़ने पर आप तो न जाना और न शब्द बोलना, परन्तु दूसरेको अपने रूपका इशारा बताकर समस्या कर देना—सो रूपानुपात नामा अतीचार है।

५. मर्यादाके बाहर कोई कार्य्य होने पर आप तो न जाना, न बोलना, न इशारा दिखाना, परन्तु कंकड़ पत्थर व पत्र आदि पुद्गलोंको भेजकर अपना काम जंचा देना व कोई भी लौकिक प्रयोजन सिद्ध कर लेना सो पुद्गलक्षेप नामा पंचम अतीचार है।

मर्यादा रखते समय यदि व्रतीका भाव न्यायरूप, सत्य श्रृद्धा रूप दृढ़ होगा तो विना यत्न ही कोई दोष नहीं लगने पावेगा।

२. दूसरा शिक्षाव्रत सामायिक है।

आसमय मुक्ति मुक्तं पंचाघानामशेष भावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥
(र० क०)

भावार्थ-मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना करके सर्व स्थानोंमें यहां व बाहर किसी नियत काल तक पांचों पापोंका त्याग करना अर्थात् धर्मकी भावनामें र शुभ व अशुभ लौकिक पदार्थोंपर समभाव रखना सो सामायिक है-ऐसा गणधरादिकोंने कहा है।

सामायिककी व्याख्या इस प्रकार हैः-

सम् एकत्वेन आत्मनि आयः आगमनं परद्रव्येभ्यो निवृत्त्य उपयोगस्य आत्मनि प्रवृत्तिः समायः, अयम् अहं ज्ञाता दृष्टा च इति आत्मविषयोपयोगः, आत्मनः एकस्यैव ज्ञेयज्ञायकस्य संभवात्। अथवा समे रागद्वेषाभ्यां अनुपहते मध्यस्थे आत्मनि आयः उपयोगस्य प्रवृत्तिः समायः, स प्रयोजनं अस्य इति सामायिकं ॥ (श्री गोमट्टसार सं० टीका श्रुत ज्ञान प्र० अभयचंद्र।)

भावार्थ-अपने आत्माके विना सर्व पर द्रव्योंसे अपने उपयोगको हटाकर अपने आत्मस्वरूपमें ही एक रूप होकर उपयोगको प्रवर्त करना अर्थात् यह अनुभव करना कि मैं ज्ञाता दृष्टा हूं (क्योंकि एक ही आत्मा जाननेवाला ज्ञायक भी है और जानने योग्य ज्ञेय भी है) सो समाय है। अथवा राग द्वेषोंको हटाकर माध्यस्थ भावरूप समतामें लीन ऐसा जो आत्मस्वरूप उसमें अपने उपयोगको चलाना सो समाय है। जिस क्रियाका समाय करना प्रयोजन हो उसको सामायिक कहते हैं।

सामायिकके छह भेद हैंः-

१. नामसामायिक-सामायिकमें लवलीन आत्माके ध्यानमें अच्छे या बुरे नाम आजांय तो उनसे राग द्वेष नहीं

करके समभाव रखना, सर्व नामोंको व्यवहार मात्र जानना, निश्चय अपेक्षा हेय जानना, शुभ नामोंसे अनुराग अशुभ नामोंसे द्वेष न करना सो नामसामायिक है।

२. स्थापनासामायिक–सुहावने व असुहावने स्त्री पुरुषादिकोंकी मूर्ति व चित्र खयालमें आनेपर उनसे रागद्वेष न करके सर्वको पुद्गलमई एक रूप समझना सो स्थापनासामायिक है ।

३. द्रव्यसामायिक–इष्ट व अनिष्ट, चेतन व अचेतन द्रव्योंमें रागद्वेष न करके अपने स्वरूपमें उपयोगको रखना सो द्रव्यसामायिक है।

४. क्षेत्रसामायिक–सुहावने व असुहावने ग्राम, नगर, वन, मकान व और किसी भी स्थानका खयाल होनेपर उसमें रागद्वेष न करके सर्व आकाशको एक रूप क्षेत्र जान स्वक्षेत्रमें तन्मय होना सो क्षेत्रसामायिक है।

५. कालसामायिक–अच्छी व बुरी ऋतु शुक्ल, कृष्णपक्ष, शुभ व अशुभ दिन, वार, नक्षत्र आदिका खयाल आनेपर किसीमें राग व द्वेष न करके सर्व कालको एक व्यवहार कालरूप मानकर अपने स्वरूपमें स्थिर रहना सो कालसामायिक है ।

६. भावसामायिक–विषय कषयादि विभाव भावोंको पुद्गलकर्म जनित विकार समझ उनमें रागद्वेष न करना और अपने भावको निजानंदीसमतामें उपयुक्त रखना सो भावसामायिक है ।

सामायिक करनेवालेको ७ बातोंकी शुद्धि व योग्यता रखनी उचित है।

१. क्षेत्रशुद्धि—सामायिक करनेके लिये उपद्रवरहित स्थानमें बैठे जहां एकान्त हो जैसे कोई वन, चैत्यालय, धर्मशाला व अपने घरका ही कोई अलग स्थान हो। वह जगह अशुद्ध व अपवित्र न हो तथा जगह समतल हो ऊंची नीची बिढंगी न हो कि जहां आसन न जम सके।

२. कालशुद्धि—सामायिक करनेका योग्य काल अत्यन्त प्रातःकाल याने पौ फटनेका समय, सायंकाल याने संध्या समय व दोपहर ऐसे ३ समय हैं। इन वक्तोंमें और कालोंकी अपेक्षा अधिक परिणाम लगते हैं। किसी २ विद्वान्का मत है कि तीनों समयोंमें छह छह घड़ी काल सामायिकका है अर्थात् ३ घड़ी रात शेषसे ले ३ घड़ी दिन चढ़े तक व ३ घड़ी १२ बजे दिनके पूर्वसे ले दोपहर बाद ३ घड़ी तक व ३ घड़ी सायंकालके पहलेसे ले ३ घड़ी रात तक है। १ घड़ी २४ मिनटकी होती है। २ घड़ीके १ घंटा १२ मिनट हुए। इन ६ घड़ीके बीचमें सामायिक अवश्य कर लेनी उचित है। *

३. आसनशुद्धि—सामायिक करनेके लिये जहां बैठे व खड़ा हो वहां कोई दर्भासन व चटाई, पीला व सफेद व लाल कपड़ेका आसन बिछा लेवे। उसपर

---

* सम्मति स्या० वा० वादिगजके शरी पंडित गोपालदासजी बरैया।

आप कायोत्सर्ग व पद्मासन व अर्द्ध पद्मासन रूप हो सामायिक करे। हाथोंको लटकाकर पैरोंको ४ अंगुलके अन्तरसे रखके सीधे खड़े हो कर आखोंको नाककी तरफ रखके विचार करनेको कायोत्सर्ग कहते हैं। दाहनी जांघपर वांयां पैर रखना, फिर दाहने पैरको वांई जांघपर चढ़ाना, गोदपर बांई हथेली खुली रख ऊपर दाहनी हथेली रखना और सीधा श्रीपद्मासन प्रतिमाकी तरह बैठना सो पद्मासन है। वांयां पैर जांघके नीचे तथा दाहना वांई जांघपर रखना तथा हाथोंको पद्मासनकी तरह रख सीधा वैठना सो अर्धपाद्मासन है।

४. मनशुद्धि—मनमें आर्तध्यान, रौद्रध्यान न करके मुक्तिकी रुचिसे धर्मध्यानमें आशक्त रखना सो मनशुद्धि है।

५. वचनशुद्धि–सामायिक करते समय चाहे कितना भी काम हो किसी से बात नहीं करना तथा केवल पाठ पढ़ने व णमोकार मंत्र वोलने में ही वचनोंको चलाना और शुद्ध अर्थको विचारते हुए पढ़ना सो वचनशुद्धि है।

६. कायशुद्धि–शरीरमें मल मूत्रकी बाधा न रखना व स्त्री संसर्ग किया हुआ शरीर न होना, हाथ पग धो वस्त्र वैराग्यमई एक दो पहनकर सामायिक करना सो कायशुद्धि है।

७. विनयशुद्धि–सामायिक करते समय देव, गुरु, धर्मकी विनय रखके उनके गुणोंमें भक्ति करना, अपनेमें ध्यान व तप आदिका अहंकार न आने देना सो विनयशुद्धि है।

सामायिक करनेकी विधि ।

सामायिक करनेवाला श्रावक ऊपर कही हुई सातों शुद्धियोंका विचार करके सामायिक शुरू करनेके पहले कालका प्रमाण करले और समयका नियम करके जो की जाय सो सामायिक है । जैसा कहा हैः—

" केशबंधादि नियमितः कालः तत्र भवं सामायिकं । " (आशाधर)

कितने कालकी मर्यादा करना चाहिये इस विषयमें पण्डित अशाधर सागारधर्मामृतमें इस तरह कहते हैंः—

एकान्ते केश वन्धादि मोक्षं यावन् मुनेरिव ।
स्वध्यातुः सर्व हिंसादि त्यागः सामायिक व्रतम्॥२८॥

व्याख्या-अंतर्महूर्त्त मात्रं धर्मध्यान निष्ठस्य । कियत्का लंकेशवन्धादि मोक्षं यावत् केशबंध आदिर्येषां मुष्टिबंध वस्त्रगृन्थ्यादीनां गृहीत नियतकालावछेद हेतूनांते केशबंधादयस्तेषां मोक्षो मोचनं तम् अवधीकृत्य स्थितस्य । सामायिकंहि चिकीर्षुः यावत् अयं केशबंधोवस्त्र गृंथ्यादेर्च्चे मयान मुच्यते तावत्साम्यात् न चलिष्यामि इति प्रतिज्ञांकरोति ।

भावार्थ—अंतर्महूर्त काल तक धर्मध्यान करनेकी प्रतिज्ञा इस भांति करना कि अपने केशोंको व चोटीको बांध लेना या वस्त्रके गांठ लगा लेना और ऐसी प्रतिज्ञा करनी कि जब तक इसको न खोलूं तब तक मुझे सामायिक करनेका नियम है, मैं सामायिकको न छोडूं गा अथवा मुट्ठी बांधके उसके न खोलने तक सामायिक करे । सामायिकके कालकी मर्यादा करके फिर यह भी प्रमाण कर ले कि

इतने काल तक जहां मैं हूं इसके चहुंओर १ एक गज क्षेत्र रक्खा तथा इस क्षेत्रके अन्दर मेरे पास जो परिग्रह है उसके सिवाय अन्य परिग्रह इतने काल तकके लिये छोड़ दी। फिर पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके आसनके ऊपर कायोत्सर्ग खड़ा हो ९ दफे णमोकार मंत्र धीरेसे पढ़ भूमिमें मस्तक नमा नमस्कार याने दंडवत करे फिर उसी तरह कायोत्सर्ग खड़ा हो ९ या ३ दफे णमोकार मंत्र पढ़ हाथ जोड़ तीन आवर्त और १ शिरोनति करे। दोनों हाथ जोड़े हुए खड़े २ बाईं ओरसे दाहनीको ३ दफे फिरावे—यह आवर्त है। फिर मस्तक दोनों जोड़े हुए हाथोंपर रक्खे—यह शिरोनति है। फिर अपने दक्षिणकी ओर खड़े २ मुड़ जावे और पहलेकी भांति कायोत्सर्गसे णमोकार पढ़ आवर्त और शिरोनति करे। इसी तरह घूमते हुए और दोनों दिशाओंमें ऐसा ही करे। फिर पहली दिशामें आकर आसनसे बैठ जावे और संस्कृत व भाषा किसी समायिकपाठको धीरे २ उसके अर्थोंको विचारता हुआ पढ़े। फिर णमोकार मंत्र व अन्य छोटे मंत्रकी माला फेरे। सूतकी मालाद्वारा या अपने हाथोंपर से या हृदयमें कमलके विचारद्वारा थिरतासे जाप जपे फिर पिंडस्थध्यान आदिका अभ्यास करे जैसा कि तत्त्वमाला पुस्तकके अंतमें कहा गया है। कायोत्सर्ग खड़ा हो ९ वार णमोकार मंत्र पढ़ नमस्कार याने दंडवत करे। यह गृहस्थी श्रावक श्राविकाओंके लिये सामान्यविधि है।

व्रती दो समय सामायिक कर सक्ता है। जैसा कहा है:-

परं तदेव मुक्त्यंग मिति नित्य मतंद्रितः।
नक्तं दिनान्तेऽवश्यं तद् भावयेत शक्तितोऽन्यदा ॥२९॥

(आशाधर)

अर्थात्-नित्य निरालसी होकर अवश्य ही सामायिक प्रातः काल और सायंकाल करनी योग्य है, शक्ति हो तो और समय भी कर सक्ता है।

सामायिकशिक्षाव्रतकी शुद्धताके लिये पांच अतीचार बचाने चाहिये:-

योगदुःप्रणिधानानादर स्मृत्यनुपस्थानानि ॥

(उ० स्वा०)

भावार्थ-१.मनःदुःप्रणिधान-मनको विषय कषायादि पाप बंधके कार्योंमें चलाना अर्थात् मनमें आर्त्तरौद्रध्यान करना, अपनी बुद्धि पूर्वक याने जानबूझकर ऐसे अशुभ भाव न होने दे जो कदाचित कर्मके उदयकी वरजोरीसे सांसारिक विचार उठ आवे तो भेदविज्ञान रूपी शस्त्रसे उसको काट देवे। जैसे किसीको अपने पुत्रके वियोगकी चिन्ताका खयाल आया तो उसी वक्त यह विचार ले कि जगत्में कोई किसीके आधीन नहीं है, सब जीव अपने २ बद्ध कर्मके अनुसार सुख दुख आदि अवस्थाओंको भोगते हैं तथा प्रत्येक संयोग वियोगके आधीन है, जिसको कोई मेट नहीं सक्ता। यदि

स्त्रीकी चिन्ता हो आवे तो स्त्रीके शरीरकी अपवित्रता विचारे व कामकी वेदना मोक्षमार्गकी घातक है–ऐसा अनुभव करके रागको वैराग्यमें परिणमन कर दे।

२. वचनदुःप्रणिधान–सामायिक करते समय अपने वचनोंको सांसारिक कार्योंमें चलायमान करना अथवा किसीसे बातें करना व किसीको उत्तर देना सो वचनदुःप्रणिधान है, सो नहीं करना। केवल पाठ पढ़नेमें व णमोकार मंत्रादिके लिये तो वचनोंको उचित रीतिसे चलावे जिससे दूसरोंका हर्ज न हो और अपना उपयोग लग जावे। इसके सिवाय मौनरूप रहे।

३. कायदुःप्रणिधान–शरीरसे सामायिक सम्बन्धी चेष्टाके सिवाय अन्य काम करने लगना। जैसे किसीको कोई चीज उठाके देना, इशारेसे कोई काम बता देना आदि कायचेष्टा सो कायदुःप्रणिधान है। सामायिकमें आसनरूप रहे। यदि एक आसनमें शरीरको कष्ट मालूम पड़े और सह न सके तो दूसरा आसन बदल लेवे। यदि शरीर बिलकुल अशक्त हो याने बैठ न सक्ता हो तो लेटे हुए आसनसे भी सामायिक की जा सक्ती है। हाथमें माला या पुस्तक लेना व धरना सामायिक सम्बन्धी क्रिया है, इसलिये सर्वथा निषेध नहीं है। यथा संभव शरीरको निश्चल रखनेका अभ्यास रक्खे।

४. अनादर–" प्रतिनियतवेलायां सामायिकस्य अकरणं, यथा कथंचित् वा करणं॥ " (आशाधर)

भावार्थ—ठीक सामायिकके कालमें तो सामायिक न करना चाहे जब कर लेना, भीतरसे यह भाव शिथिल होना कि सामायिक करना अपना मुख्य कर्तव्य है अतएव अन्य कार्य्य छोड़ इसमें प्रवर्तना योग्य है । प्रमाद और आलस्यसे सामायिक करनेमें उत्साहका कम होना अनादर है ।

५. स्मृत्यनुपस्थान या अस्मरण—"सामायिकं मया कृतं न कृतं इति प्रबलप्रमादात् अस्मरणं अतीचारः" (आशाधर)

भावार्थ—तीव्र प्रमादके वश हो इस बातको भूल जाना कि सामायिक मैंने की है व नहीं । जैसे सामायिकके समयमें व्यापारादिमें ऐसे युक्त हो जाना कि सामायिक करनेकी सुध न करना तथा जब अन्य वेला आवे तब शंकित होना कि गत वेलामें सामायिक की थी व नहीं अथवा सामायिक करते समय सामायिक सम्बन्धी क्रिया व पाठादि पढ़ना भूल जाना सो अस्मरण है ।

इस प्रकार यह सामायिकशिक्षाव्रत मोक्षमार्गी आत्माका परम कल्याण करनेवाला है । इसीके अभ्याससे ध्यानकी सिद्धि होती है । ध्यान ही मुख्य तप है—इसी ही तपसे कर्मोंकी निर्जरा होती है । यही ध्यान मुक्ति रूप ललनाके मिलानेको परम सखाके समान है । सामायिकके प्रतापसे ही उपयोगकी परिणति जगत्के आंगणमें नाचनेसे अटककर निज आत्मीक गुणोंके बागमें रमण करने लग जाती है, जिससे अपूर्व अनुभवानंदकी प्राप्ति होती है । सच्चे सुखको देनेवाली, मनके

क्लेशोंको मिटाकर शांतता प्रदान करनेवाली तथा अपने सर्व क्रियाकांडको सफल करनेवाली ज्ञान पूर्वक करी हुई यह सामायिककी क्रिया है। हितार्थीको इसके अभ्यासमें चूकना न चाहिये।

३. तीसरा शिक्षाव्रत—प्रोषधोपवास।

पर्वण्यष्टम्यांच ज्ञातव्यः प्रोषधापवासस्तु।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः॥ १०६॥

(र० क०)

भावार्थ—अष्टमी और चौदस इन दो पर्वियोंमें धर्मध्यानकी इच्छासे चार प्रकारके आहारका त्यागना सो प्रोषधोपवास है। तथा

सः प्रोषधोपवासोयश्चतुःपर्व्यां यथागमं।
साम्यसंस्कार दीर्घाय चतुर्भुक्त्यु ज्झनं सदा॥

(आशाधर)

अर्थात्—समताके संस्कारको बढ़ानेके लिये एक मासकी चारों पर्वियोंमें आगमके अनुसार चार भुक्तिको त्यागना सो प्रोषधोपवास है।

"एकांहि भुक्ति क्रिया धारणा दिने द्वे उपवास दिने, चतुर्थींच पारणा दिने" (आशाधर) याने दिनमें दो दफे भोजन सामान्य तौरसे लिया जाता है सो पहले दिन एक दफे का भोजन, उपवासके दिन दोनों दफेका भोजन तथा पारणाके दिन एक दफेका भोजन ऐसे चार भुक्तिको त्यागना सो उत्कृष्ट प्रोषधोपवास है। तथा

उपवासा क्षमैः कार्योऽनुपवासस्तदक्षमैः । आचाम्ल निर्विकृत्यादि शक्त्याहि श्रेयसेतपः ॥ (आशाधर)

भावार्थ—उपवास करनेकी शक्ति न हो तो अनुपवास करे।

जलवर्जन चतुर्विधाहारत्या·अनुपवास, (आशाधर) जलके सिवाय और चार प्रकारके आहारका त्यागना सो अनुपवास है । यदि यह भी न कर सक्ता हो तो आचाम्लकाजिका आहार करे । शक्ति करके किया हुआ तप कल्याणकारी है ।

"स्पर्श, रस, गंध वर्ण शब्द लक्षणेसु पंचसु विषयेसु परिहृतों पंचापि इन्द्रियाणि उपेत्य आगत्य तस्मिन् उपवासे वसंति इति उपवासः । अशन; पान, खाद्य, लेह्य चतुर्विधाहारः उपवास शक्ति अभावे एकवार भोजनं करोति तथा निर्विकृतिं शुद्ध तक्रैः शुद्धिकाऽन्न भोजनं करोति वादुग्धादि पंच रसादि रहितं आहारं भुंक्ते आचाम्लकांजिकाहारःक्षाहारः । अत्रसः शुद्धादनं जलेन सह भोजनं कांजिकाहारं । (स्वामीकार्तिकेय० सं० टीका)

भावार्थ—पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको त्यागकर सर्व इन्द्रियोंको उपवासमें ही स्थिर करे सो उपवास है। उपवासके दिन निम्न चार प्रकारका भोजन न करे।

१. असन-भात दालादिक।

२. पान—पीने योग्य दूध, छांछादि ।

३. खाद्य—मोदकादि (लड्डू वगैरह मिठाई)

४. लेह्य—चाटने योग्य, (रबड़ी, लपसी, दवाई आदि) तथा अन्य ग्रंथमें ऐसे भी चार प्रकार भोजन कहा है " खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय ।"

इसमें खाद्यसे मतलब उन सर्व चीजोंसे है जोकि साधारण रीतिसे क्षुधा मेटनेके काममें लाई जाती हैं जैसे रोटी, पूरी, मिठाई। स्वाद्यसे प्रयोजन इलायची लौंग सुपारी आदिसे है। शेष दो का स्वरूप ऊपरके समान है। तथा जो उपवास याने चार प्रकारके आहार त्यागने की शक्ति न हो तो एकबार भोजन करै अथवा विकाररहित शुद्ध छांछके साथ शुद्ध एक किसी अन्नको खावे (द्विदलके दोषको बचावे) व दूध, मीठा, नोन, तेल व घी ऐसे पांच रसरहित भोजन करे या छांछ मात्र लेवे सो आचाम्ल आहार है। त्रसरहित शुद्ध भातको जलके साथ खाना सो कांजिकाहार है।

प्रोषधोपवास प्रतिमा याने चौथी प्रतिमाके स्वरूपको कहते हुए श्रीवसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्तीने इसका स्वरूप नीचे लिखे भांति किया है

(वसुनंदिश्रावकाचार लिखित संवत् १५९५ प्रति ठोलियों-का मंदिर जयपुरमें)

उत्तम मज्झ जहण्णं, तिविहं पोसह विहाण उद्दिट्ठम्।
सगसत्तिय मासम्मि, चउसु पव्वेसु कायव्वम्॥ ७८॥
सत्तमितेरसिदिवसम्मि, अतिहजण भोयणावसाणम्मि।
भोत्तूण भुंजणिज्जं, तच्छविकाऊण मुहसुद्धिं॥ ७९॥
परकालिऊण वयणं, कर चरणे णियमिऊण तच्छेव।
पच्छा जिणिंदभवणं, गत्तूण जिणं णमंसित्ता॥ ८०॥
गुरुपुरऊ किरियम्मं, वंदण पुव्वंकमेण काऊण।

गुरुसारिकय मुववासं गहिऊण चउव्विहं विहिणा ॥ ८१ ॥
वायणकहाऽणुपेहण, सिरकावय चिंतणो वऊ गेहं ।
णेऊण दिवससेसं, अवरण्हिय वंदणं किच्चा ॥ ८२ ॥
रयण समयम्मि ठिच्चा, काऊसग्गेण णियसत्तीए ।
पडिलेहिऊण भूमिं, अप्प पमाणेण संचारं ॥ ८३ ॥
गाऊण किंचिरत्तं–सइऊण जिणालये णियघरे वा ।
अहवा सयलं रत्तिं, काऊसग्गेण णेऊणा ॥ ८४ ॥
पच्चूसे उट्ठित्ता, वंदण विहिणा जिणं णमंसित्ता ।
तहं दव्वभाव पुज्जं, जिण सुय साहूण काऊण ॥ ८५ ॥
उत्तविहाणेण तहा, दियहं रत्तिं पुणोविगमिऊण ।
पारण दिवसम्मि पुणो पूयं काऊण पुव्वंच ॥ ८६ ॥
गंतूण णियय गेहं, अतिह विभागं चतच्छ काऊण ।
जो भुंजइ तस्स फुडं पोसह विहि उत्तमं होइ ॥ ८७ ॥
जहंउकस्सं तहं मज्झिमंपि, पोसह विहाण मुद्दिट्ठं ।
णवर विसेसो सलिलं । छड्डित्तावज्जए सेसं ॥ ८८ ॥
मुणिऊण गुरुवकज्जं, सावज्ज विवज्जियानियारंभं ।
जइ कुणइ तंपिकुज्जा, सेसं पुव्वं वणायव्वं ॥ ८९ ॥
आयं विल निव्वियडी पयट्ठाणं च एयभक्तं वा ।
जं कीरइतं णेयं; जहण्णयं पोसह विहाणं ॥ ९० ॥
सिर राहालुवट्टणं, गंधमल्लकेसाइंदेह संकप्पं ।
अण्णंपि रागहेउं, विवज्जिए पोसह दिणम्मि ॥ ९१ ॥

संक्षेप भावार्थ इस भांति जानना:—

प्रोषधका विधान तीन प्रकारसे कहा गया है अर्थात् उत्तम, मध्यम तथा जघन्य। जैसी अपनी शक्ति हो उसके अनुसार चारों पर्वियोंमें करे।

उत्तमकी विधि यह है—सप्तमी या तेरसके दिन अतिथियोंको भोजन कराके आप भोजन करे, मुख शुद्धकर हाथ पैर धो श्रीजिनेन्द्रके मंदिरमें जावे, जिनेन्द्रको नमस्कार कर श्रीगुरुको बंदन करके उपवासको ग्रहण करे, तबसे विकथादि त्याग शास्त्र स्वाध्याय व तत्त्वविचारमें शेष दिनको बितावे। शामको वंदना व सामायिक करे। रात्रिको अपनी शक्ति हो तो सर्व रात्रि कायोत्सर्गसे पूर्ण करे अथवा अपनी देहके समान संथारे, पर कुछ रात्रि शयन करे, जिनालयमें वा घरमें रहे। सबेरे उठकर बंदनादि करके देव, शास्त्र, गुरुकी द्रव्य और भावसे पूजा करे। फिर स्वाध्याय सामायिकादि धर्म कार्य्योंमें सर्व दिवस व पहली रात्रिकी तरह यह रात्रि भी पूर्ण करे। सबेरे उठ वंदनादि करके पूजन करे और फिर अपने घर जाय, अतिथियोंको दान करके फिर आप भोजन करे—यह उत्तमप्रोषधकी विधि है।

मध्यम विधि—इसमें और उत्तम विधिमें केवल इतना ही फर्क है कि मध्यममें जलके सिवाय और सर्व पदार्थोंके भोजनका त्याग है याने जब प्यास लगे तब शुद्ध (प्राशुक) जल तो ले सक्ता है और कुछ नहीं ले सक्ता; किन्तु धर्म

ध्यानादिक सर्व क्रियाएं उत्तमके समान करनी योग्य हैं ।

जघन्य विधि–इसमें प्रोषधके दिन याने अष्टमी व चौदसको अंबिल कहिये इमली, भात अथवा नयड़ि कहिये लूण विना केवल जलके साथ भात लेवे अथवा एक स्थानमें एकवार खाय सो एक स्थान करे या एक भुक्त करे अर्थात् थालमें एक दफे लेकर खाए वा एक ही वस्तु लेवे ।

नोट–इस जघन्य विधिमें यह वाक्य गाथामें नहीं है कि शेष क्रिया पूर्ववत करनी तौभी अर्थसे यही लेना योग्य है कि धर्मध्यान पहले ही के समान करे ।

उपवासके दिन सिर मलके नहाना, उबटन लगाना, गंध सूंघना, माला पहनना तथा अन्य भी रागके बढ़ाने वाले कार्य्य करना मना हैं । केवल पूजाके निमित्त शुद्ध जलसे स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन सक्ता है ।

उपवासके दिन अष्ट द्रव्यसे सर्वथा निषेध नहीं है । जो अपना मन सामायिक स्वाध्यायमें विशेष न लगे तौ द्रव्य पूजा भी करे । पुरुषार्थसिध्युपायमें अमृतचंद्र स्मामीने कहा है:–

प्रात:प्रोत्थाय ततःकृत्वा तात्कालिकं क्रिया कल्पम् ।
निर्वर्त्तये द्यथोक्तं जिन पूजां प्राशुकैर्द्रव्यैः ॥ १५५ ॥

भावार्थ–प्रातःकाल उठकर तथा नित्यक्रिया कर यथा विधि श्रीजिनेद्रकी पूजा प्राशुक द्रव्योंसे करे ।

उपवासके दिन और क्या क्या कार्य्य न करे ?

उपवास कर्त्ता निषेधयतिः–

शीतोष्णजलेनमज्जनं, तैलादि मर्दनं, विलेपनं, भूषणंहारमुकुटकेयूरादि, स्त्रीसंसर्ग, युवतीनांमैथुनस्पर्शनपादसंवाहननिरीक्षण शयनोपवेशनवार्तादिभिःसंसर्गः, गंधसुगंधप्रमुखधूपशरीरधूपनं, केशवस्त्रादि धूपनंचदीपस्यज्वलनंज्वालनं करणं, सचित्तजलकणलवणभूम्यग्नि बात करण वनस्पति तत्फल पुष्क कुंपल छेदादि व्यापारान्परिहरति ”

(स्वामिकार्तिकेयानुपेक्षा सं० टीका)

भावार्थ—उपवास करनेवाला इन बातोंको न करे “ शीत व उष्ण जलसे मंजन करना, तेल आदि लगाना, विलेपन करना, हार मुकुट कड़े आदि गहने पिहनना, स्त्रियोंसे मैथुन व स्पर्श करना, पाद दबवाना व उनको देखना, उनकी शय्यापर बैठना व उनसे वार्तालाप आदि करना, सुगंधित धूपसे शरीर केश कपड़े आदिको धूआं करना, दीपकका जलाना व जलवाना, सचित्त जलकण, लवण, भूमि, अग्नि, पवनसेवन, वनस्पति व उसके फल फूल कोपल छेदन आदि व्यापारोंको करना। ”

यद्यपि ऊपर रात्रिको दीपक जलाना मना है, परन्तु स्वाध्यायके अर्थ दीपकसे काम लेना पड़े तो उस दीपकसे त्रस हिंसा न हो इस प्रकार रखकर काम लेना। क्योंकि श्रीपुरुषार्थसिध्युपायमें यह कथन है कि “रात्रिको स्वाध्यायसे निद्राको जीते।

“शुचिसंस्तरे त्रियामां गमयेत्स्वाध्याय जितनिद्रः ॥ १९४ ॥

प्रश्न—प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत जो व्रतप्रतिमावाला करता

है तथा प्रोषधोपवास चौथी प्रतिमावाला करता है—इन दोनोंमें क्या अन्तर है ?

इस विषयमें स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा संस्कृत टीकामें इस प्रकार चतुर्थ प्रतिमाके प्रकरणमें कथन है:—

"सप्तमी त्रेयोदश्यांच दिवसे मध्यान्हे भुक्त्वा उत्कृष्ट प्रोषधव्रती चैत्यालये गत्त्वा प्रोषधं गृह्णाति, मध्यम प्रोषधव्रती तत् संध्यायां प्रोषधं गृह्णाति जघन्य प्रोषधव्रती अष्टमी चर्तुदशी प्रभाते प्रोषधं गृह्णाति प्रोषधे— आरंभं गृह हट्ट व्यापार क्रय, विक्रय, कृषि, मसि, वाणिज्यादि उत्थं आरंभं न करोति । प्रोषधप्रतिमाधारी अष्टम्यां चतुर्दश्यांच प्रोषधोपवासम् अंगीकरोतिव्रेततु प्रोषधोपवासस्य नियमो नास्ति ।"

भावार्थ—प्रोषधव्रती ३ प्रकारसे प्रोषधोपवास करे। उत्कृष्ट तो सप्तमी या त्रयोदशीको मध्यान्हमें भोजन करके चैत्यालयमें जाय प्रोषध धारण करे। मध्यम प्रोषधव्रती सप्तमी या तेरसकी संध्याको गृहण करे तथा जघन्य अष्टमी व चौदसके प्रभातकाल प्रोषध लेवे अर्थात् इस मतसे १६ पहर, १२ पहर, ८ पहर ऐसे ३ प्रकारका प्रोषध व्रत हुआ। ८ पहरका प्रोषधवाला भी पिछली रात्रिको जलादि ग्रहण नहीं करता है, शामसे ही कुल्ला करता है; परन्तु आरंभादिको रात्रिको नहीं त्यागता है। इससे प्रोषध नहीं कहा जा सक्ता, क्योंकि प्रोषधमें आरंभ: घरका व बाजारका, लेना देना, किसानी, लेखन, वाणिज्य आदि सब आरंभ नहीं करना होता है, केवल धर्म कार्योंमें ही प्रवर्तन करना होता है।

प्रोषधप्रतिमाधारी तो अष्टमी व चौदसको प्रोषधोपवास अवश्य करे, परन्तु व्रतप्रतिमाके लिये प्रोषधोपवासका नियम नहीं है-यही फर्क है। अर्थात् व्रतप्रतिमाके यह व्रत शिक्षा रूप है। जैसे कोई उम्मेदवार किसी दफ्तरमें रोज जाता है, काम करता है, परन्तु अबतक वह वेतनवाला चाकर नहीं भया है तो उसके लिये यह खास पावन्दी नहीं है कि वह जावे ही जावे। किसी दिन कारण पड़े तो नहीं जावे व देर हो जावे तथा जाकर काम करे सो मनकी इच्छाके अनुसार करे। उसके लिये यह पावन्दी नहीं है कि इतना काम करना ही पड़ेगा। इसी तरह व्रतप्रतिमावाला हर अष्टमी व चौदसको अपनी शक्तिके अनुसार तीन प्रकारमें से किसी भेद रूप उपवास करे, परंतु यदि कोई विशेष कारण आ जाय तो कभी नहीं भी करे तथा जिस विधि व जितने समयके लिये कहा है उस विधि व समयमें कमी करे। जैसे व्रती संध्याको कुल्ला करके अष्टमीके दिन एक वार लघुभोजन तक करे तो कोई हर्ज न होगा तथा अष्टमीका दिन धर्म ध्यानमें बितावे; परन्तु कोई विशेष घरका व व्यापारका अत्यन्त जरूरी आरंभ आ जावे तो कर भी लेवे। इसके पूरा २ नियम नहीं है, परन्तु जहांतक बने आप परिणामोंको चढ़ाने का ही उद्यम राखे ढीला न होनें दे।

प्रोषधोपवास शब्दकी व्याख्या श्रीपूज्यपाद स्वामीकृत श्रीसर्वार्थसिद्धि ग्रन्थमें इस प्रकार है:-

प्रोषध शब्दः पर्व पर्यायवाची, शब्दादि ग्रहणं प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पञ्चापीन्द्रियाणयुपेत्य तस्मिन् वसन्तीत्युपवासः । चतुर्विधाऽहार परित्यागः इत्यर्थः । प्रोषधे उपवासः प्रोषधोपवासः । स्वशरीर संस्कार कारण स्नान गन्ध माल्याभरणादि विरहितः शुभावकाशे साधुनिवासे चैत्यालये स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धर्मकथा चिन्तावहितान्तः करणः सन्नुपवसेत् निरारम्भश्रावकः ॥

भावार्थ–प्रोषधके अर्थ पर्वके है। शब्द आदि विषयोंके लेने में इन्द्रियोंका रुचिरहित होकर जिसमें आकर वस जांय याने ठहर जांय सो उपवास है अर्थात् पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको त्यागकर निर्विषय अतीन्द्रिय आनन्दकी रुचिमें प्रयत्नशील हो जितेन्द्रिय रहना सो उपवास है अर्थात् खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चारों प्रकारके आहारका त्याग करना। प्रोषध याने पर्वमें उपवास याने अष्टमी व चौदसको उपवास करना सो प्रोषधोपवास है। अपने शरीरको सिंगारनेके लिये स्नान, गंध, माला आभरणादि धारण न करे। शुभ स्थान जैसे साधुओंके निवास, चैत्यालय या अपने घरमें नियत प्रोषधोपवासवाले कमरेमें धर्मकथाके विचारमें अपने मनको लगाये हुए बैठे तथा आरम्भ व्यापारादि न करे। (स० अध्याय ७ वां)

इस शिक्षाव्रतको भले प्रकार पालनेके लिये इसके पांच अतीचार बचाने चाहिये।

सूत्र–अप्रत्यवेक्षिताऽप्रमार्ज्जितोत्सर्गोदान संस्तरोपक्रमणा नादर स्मृत्यनुपस्थानानि" ॥ ३४ ॥ (त० सू०)

१. अप्रत्यवेक्षितअप्रमार्ज्जित उत्सर्ग—विना देखे और विना कोमल वस्त्र व पीछीसे झाड़े, पुस्तक, चौकी, उपकरण व अपने शरीर व वस्त्रको भूमि आदिपर धरना, व्रती कोमल रूमाल व सूतके कोमल धागोंकी बनी पिच्छिकासे स्थानको देखते हुए झाड़ लेवे फिर कोई चेतन व अचेतन पदार्थको वहां रक्खे।

२. अप्रत्यवक्षिताऽप्रमार्ज्जितआदान—विना देखे और विना झाड़े पदार्थोंको उठाना।

३. अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित संस्तरोपक्रमण—विना देखे और विना झाड़ें संथारा चटाई आदि बिछाना।

४. अनादर—उपवासमें आदरभाव याने उत्साहका न होना, बड़ी कठिनतासे समयको पूरा करना।

५. स्मृत्यनुपस्थान—प्रोषधोपवासमें करने योग्य क्रियाओंको भूल जाना। जैसे जो नित्य स्वाध्याय जाप पाठ आदि करता था उसको करनेकी याद न रहना, प्रमाद व आलस्यमें ऐसे बेखबर हो जाना कि करने योग्य धर्म कार्यकी सम्हाल न रखनी तथा अष्टमी व चौदस तिथिका खयाल न रखना।

प्रोषधव्रती व्रतप्रतिमामें शिक्षारूप तथा प्रोषधोपवास प्रतिमामें नियमरूप इन अतीचारोंको बचावे। व्रतप्रतिमावालेके यदि अतीचार लगें तो उस श्रेणीकी अपेक्षा अयोग्य न होगा, किन्तु प्रतिमारूप पालनेवाला अतीचारोंको अवश्य

बचावे। यदि कदाचित् कोई लग जावे तो उसका प्रायश्चित्त लेवे—प्रतिक्रमण करे।

प्रश्न—यदि कोई ऐसी चाकरी करता है कि जिससे कि उसको अष्टमी व चौदसके दिन छुट्टी नहीं मिल सक्ती और यह भी उससे संभव नहीं है कि आजीविकाको छोड़ दे तो इस व्रतको कैसे पाले ?

उत्तर—जहां तक बने वह अपने स्वामीसे प्रार्थना करके महीनेमें इन चार दिनोंकी छुट्टी ले लेवे और इसके बदलेमें दूसरे दिनोंमें काम अधिक कर देवे याने उसके दिलमें तसल्ली कर देवे कि आपके काममें कोई हर्ज न पड़ेगा। जैसे कोई सर्कारी दफ्तरमें नौकर है वहां प्रति रविवारको छुट्टी होती है तो उसको चाहिये कि इस बातकी कोशिस करके अफसरसे कह दे कि मैं रविवारको दफ्तरमें हाजिर हो काम करूंगा मुझे अष्टमी व चौदसकी छुट्टी दी जाय। यदि किसी प्रकारसे भी इस कोशिसमें सफलता न हो तो उपवास तो वह करे ही, परन्तु दफ्तरके कामके सिवाय अन्य समय धर्म कार्योंमें ही बितावे तथा दफ्तरके काममें भी न्याय व सत्यतासे उस कार्य्यको धर्मका साधक जान लाचारीसे करे तथा जब रविवार आवे तब उसके बदलेमें उससे अधिक समय धर्म कार्य्यमें खर्च करे। परन्तु यदि किसीकी क्षत्रीकर्मकी चाकरीसे आजीविका हो तो वह कदापि उस दिन हिंसाका काम युद्ध आदि न करे।

यदि छुट्टी न मिले तो जो जो हाजरीका समय है उसमें हाजिर हो ले। स्वतंत्र आजीविका करनेवाले सुगमतासे अष्टमी व चौदसको धर्मध्यान कर सक्ते हैं। पराधीन व्यक्तियोंको यथाशक्ति समय धर्म कार्य्यमें ही लगाना योग्य है। यदि समय आजीविकाका कर्तव्य बजानेमें लगाना पड़े तो निंद्रा गर्हा करते ऐसा करना, परन्तु इसके बदलेमें दूसरे किसी दिन इससे अधिक समय तत्त्व विचार, जाप, पाठ स्वाध्यायादिमें विताना योग्य है। केवल आजीविकाके बहानेसे व्रत पालनेके उत्साहको भंग नहीं करना चाहिये। और यह भले प्रकार ध्यानमें रखना चाहिये कि केवल भूखा रह लंघन करनेका नाम उपवास नहीं है। जब विषय कषायोंको रोका जावे तब ही संयम होता है और तब ही उपवास करनेसे लाभ है। जिनमतमें ऐसे भूखे रहनेको व कायक्लेश करनेको तप नहीं कहा है, जिससे परिणामोंमें आर्त्तध्यानकी वेदना पैदा हो जावै। समतारूपी रसायणका लाभ जिस उपायसे हो उस उपायको हर्ष पूर्वक करना तथा उस उपायके लिये खानेपीनेका त्याग कर कुछ कालके लिये निश्चिन्त रहना सो ही उपाय व साधन इस साधकके लिये कार्य्यकारी है। अपनी शक्ति न होनेपर कई दिनोंका उपवास करके बीमारकी तरह पड़े रहना और धर्म साधनमें अन्तराय डालना कदापि उचित नहीं है। इसके विरुद्ध यह भी सोचना प्रमादयुक्त तथा अनुचित है कि उपवाससे हम कमजोर हो

जावेंगे, इसलिये हमको कभी उपवास करना ही नहीं चाहिये। यदि धर्म साधन और आत्म-विचारमें अपने उपयोगको विशेष लगानेका अभिप्राय है तो ऐसा सोचना सर्वथा विरुद्ध हैं, क्योंकि आरंभ छोड़कर धर्मध्यानमें लय रहना हमारे चित्तको शांति व आनन्द प्रदान करता है तथा शरीर-को भी प्रसन्न रखता है। आहार न करनेसे भीतरका शरीर सब दुरुस्त हो जाता है, जो मैला आदि इधर उधर जमा रहता है सो सूख जाता है। आठवें दिन उपवास करना शरीरकी निरोग्यताके लिये बड़ा भारी उपाय है। जैसे किसी कल व मशीनको रोज चलाते हैं और उसको ८वें दिन साफ करनेसे उसके भीतरका मैल सब निकल जाने से वह फिर नये रूपसे व्यवहारके लायक हो जाता है। उसी तरह शरीर रूपी मशीनको ८ वें रोज आराम देना चाहिये अर्थात् उसके अन्दर नया मसाला रूपी भोजन न डालकर उसको साफ होने देना चाहिये तथा उससे रोजके समान संसारिक कार्य्य न लेना चाहिये, किन्तु धार्मिक कार्योंमें ही उसको चलाना चाहिये। इससे मन भी प्रौढ़ होता है। जो मन ८ दिन जगत्‌के जंजालोंसे खेद खिन्न है वह मन यदि उन विचा-रोंको हटाकर एक दिन केवल शांति और धर्मके ही विचा-रोंको करे तो उसका बड़ा भारी विश्राम हो और फिर अधिक वलिष्ठ हो जावे। आराम देना सुस्त पड़े रहनेका नाम नहीं है, परन्तु अपने उपयोगको एक जातिके कार्य्यसे

फेर दूसरी जातिके कार्य्यमें लगाना ही आराम लेना है।

उपवास अनेक रोगोंकी औषधि है। बहुतसे रोग नियमित कई कई दिनके उपवाससे दूर हो जाया करते हैं। प्रसिद्ध जर्मनीके डाक्टर लुई कोहेनका कहना है कि उपवास करना प्रकृतिके सुधारनेके लिये बहुत जरूरी है तथा पशुओंमें तो स्वभावसे ही यह आदत प्रगट होती है। जैसे सांप एक दफे पूरी खुराक लेनेके बाद कई सप्ताह तक खाना नहीं खाते, हिरण और खरगोश कई सप्ताह व महिनोंतक बहुत ही कम भोजनपर बसर करते हैं।

उपवास करनेके समयकी मर्यादा अभ्याससे बढ़ जाती है। अभ्यासके बलसे एक मनुष्य आठ आठ दस दस उपवास बड़े आरामसे कर सक्ता है। जो मोक्ष-मार्गमें उत्सुक हैं और आत्म-ध्यानके विशेष रुचिकर हैं वे कई उपवास विना किसी कष्टके करके आत्माके भेदविज्ञानमें अपनी परणतिको रमाते हैं।

४. चौथा शिक्षाव्रत—अतिथिसंविभाग व वैयावृत्य।

दानं वैयावृत्त्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधेय।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन॥ १११॥

अन्वय—गुणनिधये अगृहाय तपोधनाय विभवेन धर्माय अनपेक्षितोपचारोपक्रियं दानं वैयावृत्यं॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन—ज्ञान—चारित्रके धारी घररहित तपस्वीको विधि करके धर्मके अर्थ प्रत्युपकार कहिये किसी बदलेकी

इच्छा न करके जो दान देना सो वैयावृत्य है । इसका दूसरा नाम अतिथि संविभाग है। इसकी व्याख्या इस प्रकार है:-

"संयमं अविनाशयन् अतति इति अतिथिः । अथवा न अस्य तिथिः अस्ति इति अतिथिः अनियतकालागमनः इत्यर्थः ।
तिथिपर्वोत्सवाः सर्वेत्यक्तायेन महात्मना। अतिथिं तं विजानीयात् शेषमभ्यागतं विदुः । " (सर्वार्थसिद्धि)

भावार्थ-संयमको नहीं विराधना करता हुआ जो विहार करे सो अतिथि है अथवा जिसके तिथि नहीं है याने किसी नियत कालमें जिसका आगमन नहीं है । जिस महात्माने सर्व तिथि और पर्वके उत्सवोंको त्याग दिया है उसे अतिथि जानो। इनके सिवाय अन्यको अभ्यागत कहते हैं । प्रयोजन यह है कि जो गृहस्थीके समान अष्टान्हिका आदि पर्वोंमें विशेष धर्म करनेवाले और अन्य दिनोंमें कम धर्म पालनेवाले नहीं हैं, किन्तु सदा ही सामायिक व छेदोपस्थापना संयममें लीन हैं। ऐसे जो सर्व परिग्रहत्यागी दिगम्बर मुनि हैं उनको अतिथि कहते हैं ।

अतिथये संविभागः कहिये अतिथिको अपने ही उद्देशित आहारमें से विभाग करके देना सो अतिथिसंविभाग है। इसीको दान भी कहिये ।

" अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गोदानं " (उमा स्वा०)

अपने और परके उपकारके अर्थ अपने द्रव्यका जो त्याग

करना सो दान है। दान देनेसे अपना भला तो यह होता है कि लोभादि कषायोंकी मंदतासे पुण्यबंध होता है तथा परोपकार इस अपेक्षा होता है कि साधुगण अपने शरीरकी रक्षाकर मोक्षमार्गमें सुखसे गमन कर सक्ते हैं अथवा क्लेशित जीवोंका दुःख दूर होकर उनके द्रव्य प्राणोंकी रक्षा होती है। इस दानके लिये (विधि द्रव्य दातृ पात्र विशेषात्तद्विशेषः)

(उ० स्वा०)

विधि, द्रव्य, दातार और पात्र इन चार बातोंको समझना चाहिये। इन चारोंकी जिस कदर उत्तमता होगी उसी कदर फल अधिक होगा। दान देनेके लिये९प्रकारकी विधि है जोकि देनेवालेके आधीन है।

संग्रह मुच्चस्थानं पादोदक मर्चनं प्रणामंच ।
वाक्कायमनःशुद्धि रेषण शुद्धिश्च विधि माहुः ॥ १६८ ॥

(पु० सि०)

भावार्थ १–प्रथम श्रीमुनिराजको पड़गाहना याने शुद्ध वस्त्र पहने हुए और प्राशुक शुद्ध जलका कलश लिये हुए अपने द्वारपर णामोकार मंत्र जपता पात्रकी राहमें खड़ा रहे। उस समय घरमें अपनी रसोई तय्यार हो गई हो याने रसोई किये जानेका कोई आरम्भ घरमें न होता हो जैसे चक्कीसे पीसा जाना, उखलीमें कूटा जाना, बुहारीका दिया जाना, सचित्त पानीका भरा जाना व फेका जाना, आगका जलना व जलाया जाना व आगपर किसी चीजका पकाया जाना।

क्योंकि सचित्तका आरम्भ होते देखकर मुनि लौट जाएंगे। रसोई तयार करके चूल्हा ठंडा कर दिया जावे और सर्व सामान शुद्ध स्थानमें बना रक्खा रहे। राह देखते हुए जब मुनि नजर पड़ें और उस घरके पास आवें तब वह नमोस्तु कहते झुकता हुआ कहे "आहार पानी शुद्ध अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ" इसका प्रयोजन इस बातके दिखलानेका है कि हमारे यहां आहार व पानी सब शुद्ध दोषरहित है आप कृपा करके यहां पधारें पधारें पधारें। तीन बार करनेका प्रयोजन यह है कि हमारी अत्यन्त भक्ति है आप अवश्य कृपा करें—इसका नाम संग्रह है।

२. उच्चस्थान—घरके भीतर ले जाकर किसी ऊंचे स्थानपर (जैसे ऊंचा पटरा व काष्ठकी चौकी आदि) विराजमान करे और विनयसहित खड़ा करे।

३. पादोदक—शुद्ध अचित जलसे पादोंको धोवे।

४. अर्चनं—अष्ट द्रव्योंसे भावसहित पूजन करे, अर्घ्य चढ़ावे, पूजनमें बहुत समय न लगावे, नहीं तो आहारका समय निकल जावेगा। ५ व ७ मिनटमें पूजन कर ले और मुनिका दर्शन कर अपनेको कृतार्थ माने।

५. प्रणामं—भावसहित नमस्कार करे।

६. वाक्शुद्धि—जिस समयसे मुनिको पड़गाहा जाय उस समयसे लेकर जब तक श्रीमुनि घरसे बिदा न हों तब तक आप भी वचन धर्म व न्याय युक्त मतलबके बहुत मिष्टता व

शांततासे कहे और घरके अन्य जन भी जो वचन अति जरूरी हों सो कहें, नहीं तो मौन रक्खें । उस समय घरमें कोलाहल, दौड़धूप व घबड़ाहट किसी प्रकारकी न हो। ऐसी शांतता हो कि मानो यह एक जनरहित स्थान है ।

७. कायशुद्धि–दान देनेवालेका शरीर शुद्ध होना चाहिये याने मलमूत्र आदिकी बाधासहित व रुधिर, पीप बहनेवाले घावसहित व अन्य किसी तीव्र रोगसहित न हो; किन्तु वह स्नानादि किये हुए धोये और उजले वस्त्र पहने हो तथा अपने हाथोंसे कमरके नीचेका अंग व कपड़ा न छुए–अपने हाथ ऊपर ही रक्खे । यदि हाथ छुए जांयगे तो मुनि भोजन न करके लौट जांयगे । इसलिये घरमें जो पुरुष, स्त्री, बालक मुनिके सन्मुख आवें उनके शरीर अपवित्र न हों ।

८. मनःशुद्धि–दातारका मन धर्म–प्रेमसे वासित हो, मनमें क्रोध, कपट, लोभ, ईर्षा, आकुलता व शीघ्रता न हो । बहुत शांत मन रक्खे, मनमें आचार्य्य, उपाध्याय और साधुके गुणोंको विचारता हुआ ऐसे साधुकी भक्तिमें अपने जन्मको धन्य माने–अशुभ विचारोंको न आने देवे ।

९. एषणाशुद्धि–भोजनकी शुद्धता हो जिसमें चार बातों-की शुद्धतापर ध्यान दिया जावे ।

१. द्रव्यशुद्धि–जो अन्न, दूध, मीठा आदि रस व पानी रसोईके काममें लिया जाय वह शुद्ध मर्यादाका हो और लकड़ी घुनरहित देखके काममें ली जाय तथा जो रसोई

बनानेमें प्रवर्ते उसका शरीर भी शुद्ध होना चाहिये । वह स्नान करके धोये हुए साफ उजले कपड़े पहने हो तथा अपने शरीरपर कोई हड्डी चमड़े आदिकी अशुद्ध चीज न हो जैसे हाथीदातके व सरेसके बने विलायती चूड़े, सीपके बटन, झूठे मोती, ऊन व बालके कपड़े आदि । कपड़े जहांतक हो बहुत अधिक न हों ।

२. क्षेत्रशुद्धि—रसोई बनानेकी जगह शुद्ध हो याने उसमें रसोईका ही काम किया जाय । जितना रसोई घर रसोई बनाने व जीमनेका हो वह रोज कोमल बुहारीसे साफ किया जाय तथा पानीसे धोया जाय या मिट्टीसे लीपा जाय । गोबर पशुका मल है उससे नहीं लीपना चाहिये; क्योंकि उसमें महीन जीवोंकी उत्पत्ति होसक्ती है तथा उस चौके भरके ऊपर चंदोवा चाहिये, ताकि रसोईमें कोई जीव जंतु व जाला आदि न गिर पड़े । इस क्षेत्रकी हद्द बंधी हो ताकि अशुद्ध स्त्री, बालक व पुरुष उस चौकेमें घुस न जावे । यदि शुद्ध वस्त्र-धारी स्त्री व पुरुष चौकेमें जावे तो प्राशुक जलसे पग धोके जावे और जितनी दफे बाहर आवे पग धोए विना भीतर न जावे । श्रावकको घरमें अचित्त पानीसे ही व्यवहार करना चाहिये; क्योंकि सचित्तका व्यवहार देखकर मुनि भोजन न करें गे ।

३. कालशुद्धि—ठीक समयपर रसोईको तय्यार करके रखना व ठीक समयपर ही मुनिको दान देना । सामायिकके समय-

के पहले २ ही सर्व निबटा देना याने ११ बजेके पहले ही।

४. भावशुद्धि–दातारको यह कभी भाव न करने चाहिये कि आज मुनि महाराजको पड़गाहना है इस कारण ऐसी २ रसोई बनाऊं, क्योंकि मुनिके लिये मैं कुछ बनाऊं ऐसे संकल्पसे बनी हुई रसोईके आरंभका दोष दातारको लगता है। तथा यदि ऐसा मुनिको भ्रम हो जाय कि मेरे लिये यह रसोई खास तौरसे की गई है तो वे कभी भोजन न करेंगे। दातार अपने रोजके अनुसार ही खास अपने व अपने कुटुम्बके लिये जितनी रसोई रोज बनती थी उतनी ही बनवावे, आज मुनिको दान करना है इससे ज्यादा रसोई बनवाऊं ऐसा संकल्प न करे। अपने भाव ऐसे रक्खे कि जो मैं खाता हूं उसमें से विभाग करना मेरा कर्तव्य है। ऐसा जान हर्ष पूर्वक शुद्ध भावसे दान दे–सो भावशुद्धि है।

द्रव्यविशेष।

जो कोई श्रावक मुनिको दान करनेकी इच्छा करके नाना प्रकारके व्यंजन मुनिको प्रसन्न करनेकी कामनासे बनवाता है वह उद्देशिकभोजनका दान कर पापका बंध करता है। जो भोजन रसोईमें अपने यहां तय्यार हो उसमें से भी वह भोजन मुनिको दो जो उनके शरीरको हानिकारक न हो, किन्तु उनके संयमको वढ़ानेवाला हो जैसा कि कहा है:–

" रागद्वेषासंयम मद दुःख भयादिकं न यत्कुरुते।

द्रव्यं तदेवदेयं सुतपः स्वाध्याय वृद्धिकरम् ॥१७०॥ (पु०सि०)

अर्थात् ऐसा द्रव्य भोजनमें देना चाहिये जो मुनिके राग, द्वेष, असंयम, मद, दुःख, भय, रोग आदिको पैदा न करे, किन्तु जो सम्यक्, तप और स्वाध्यायको बढ़ानेवाला हो याने गरिष्ट भोजन, आलस्य लानेवाला भोजन कभी न दो जैसे तुम्हारे यहां मूंगकी उड़दकी दाल, भात, रोटी गेहूंकी व बाजरेकी व लड्डू चनेके तय्यार हैं तो तुम मुनि महाराजके शरीर व ऋतुको देखकर ऐसा भोजन दो जो शीघ्र पचे और हलका हो याने तुम मूंगकी दाल, गेहूंकी रोटी व भात अधिक दो, लड्डू व बाजरेकी रोटी व उड़दकी दाल बहुत कम दो या न दो।

दातृविशेष।

दानका देनेवाला बहुत विचारवान होना चाहिये। छोटे बालक व नादान स्त्री व असमर्थ निर्वल रोगी मनुष्यको दानके लिये नहीं उठना चाहिये, क्योंकि ऐसे जीव केवल दानको देते हुए देखकर उसकी अनुमोदना कर सक्ते हैं।

दातारमें मुख्यतासे ७ गुण होने चाहिये।

" ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निष्कपटतानसूयत्वम्।
अविषादित्त्व मुदित्वे निरहङ्कारि त्वमिति हि दातृगुणाः ॥ १६९ ॥
(पु० सि०)

भावार्थ–१. ऐहिकफलानपेक्षा–दानका देनेवाला लौकिक फलकी इच्छा न करे कि मुझे धन व पुत्र व यशका लाभ हो।

२. क्षान्तिः—क्षमाभाव रक्खे, यदि दानके समय कोई क्रोध आनेका कारण भी बने तो क्षमा भावसे उसे रोके।

३. निष्कपटता—कपट व छल भावको न करे, शुद्ध पदार्थ देवे, छलसे अशुद्ध वस्तुका दान न करे व अन्य किसी प्रकारका कपट मनमें न रक्खे।

४. अनसूयत्त्व—दान देते हुए अन्य दातारोंसे ईर्षाभाव न रक्खे कि मैं अन्योंसे वढ़ चढ़ कर औरोंको लजाकर दान करूं।

५. अविषादित्व—दानके समय किसी प्रकारका रंज, शोक न करे।

६. मुदित्व—दान देते समय हर्षित भाव रक्खे।

७. निरहङ्कारित्व—दातार इस बातका अहंकार न करे कि मैं वड़ा दानी हूं, मेरे तो पात्रका लाभ सुगमतासे हो जाता है, मैं पुण्यात्मा हूं, अन्य तो पापी हैं।

शास्त्रके भावको जाननेवाला दातार हो। जो केवल इसी भावसे दान करे कि मेरे: निमित्तसे इनके रत्नत्रय पालनमें सहायता होगी सो मेरा द्रव्य आज सफल हुआ—मोक्ष साधनमें परिणत हुआ। धन्य हैं मुनि! मैं कब ऐसे रत्नत्रयको पालने योग्य हूंगा—ऐसा हर्षायमान हुआ: अपनेको कृतार्थ और धन्य माने।

पात्रविशेष।

जो दान लेने योग्य हो उसको पात्र कहते हैं। पात्र तीन प्रकारके होते हैं:—

पात्रं त्रिभेद मुक्तं संयोगो मोक्षकारण गुणानाम् ।
अविरतसम्यग्दृष्टिर्विरताविरतश्च सकल विरतश्च ॥ १७१ ॥
(पु० सि०)

भावार्थ–जिनमें मोक्ष प्राप्तिके साधन जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान–चारित्र आदि गुणोंका संयोग हो अर्थात् जिनमें यह गुण पाए जावें वे पात्र हैं । ऐसे पात्र उत्तम, मध्यम, जघन्यके भेदसे तीन प्रकार हैं:–

सर्व परिग्रहके त्यागी महाव्रतधारी मुनि तो उत्तम पात्र हैं। व्रतरहित, परन्तु सम्यक्त कहिये जिन धर्मकी सच्ची श्रद्धासहित जो गृहस्थी श्रावक हैं वे जघन्य पात्र हैं तथा इनके मध्यमें जितने भेद हैं वे सब मध्यमपात्र हैं याने व्रतके धारी सर्व भेदरूप श्रावक मध्यमपात्र हैं । इनमें भी उत्कृष्ट क्षुल्लक ऐलक हैं व अनुमति त्यागी श्रावक हैं । मध्यम ब्रह्मचारीसे लेकर परिग्रहत्यागी तक हैं और जघन्य दर्शनिक-श्रावकसे ले रात्रिभोजन–त्यागी श्रावक तक हैं । ये सर्व ही दान देनेके योग्य धर्मके स्थान हैं ।

दान करनेकी रीति ।

गृहस्थी श्रावक रसोई तयार होनेपर रोज़ घरके द्वारपर खड़ा रहता है और यदि मुनि आ जाएं तो उन्हें आहार दे । यदि मुनिका लाभ न हो और उत्कृष्टश्रावकका लाभ हो तो उनको दान दे, यदि उत्कृष्टका लाभ न हो तो मध्यमका सम्बन्ध मिला दान देवे।

यदि मध्यमका लाभ न हो तो जघन्यव्रतीको दान देवे। यदि जघन्यव्रतीका भी लाभ न हो तो जघन्य पात्र अव्रती जैन धर्मके श्रद्धालुको दान देवे। क्षुल्लक व ऐलक तो अकस्मात् आजाते हैं तब ही उनको भक्ति पूर्वक आहार दे सक्ता है। अनुमतिश्रावक भोजनके समय बुलाये जाने पर आहारके लिये चले आते हैं। शेष नीचेके सर्व जैनी पहले निमंत्रण देने पर व भोजनके समय बुलाने पर भी आहारार्थ आ सक्ते हैं। सर्वको दान विनय पूर्वक ही देना योग्य है। यदि किसी भी पात्रका लाभ न हो तो अपनेको निन्दता हुआ कोई रस व कोई वस्तुको त्यागता तथा दुःखित भुखितके दान करनेको भोजन अलग रख व उसको जिमा आप भोजन करता है।

इस चौथे शिक्षाव्रतीश्रावकको नित्य शुद्ध रसोई बनानी चाहिये और अपनी शक्तिके अनुसार कमसे कम रोटी व आधी रोटी भी दानकर फिर भोजन करना चाहिये। आजकल बहुधा जैनी जैनीद्वारा निमंत्रणको स्वीकार करनेमें अपनी लज्जा समझते हैं सो नहीं चाहिये। परस्पर एक दूसरेको दानकर धर्मकी भावनाको बढ़ाना चाहिये। धर्म साधनकी इच्छासे भक्ति पूर्वक कोई अपनेको निमंत्रण दे तो उसको कभी इनकार न करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे उस दातारके परिणामोंको आनन्द न होकर खेद होगा।

इस चौथे शिक्षाव्रतके विशेष कर मुनियोंको व उत्कृष्ट-श्रावकको दान करनेकी अपेक्षा पांच अतीचार हैं उनको बचाने चाहिये।

सचित्त निक्षेपापिधानपरव्यपदेश मात्सर्य्यकाला-
तिक्रमाः ॥ ३६ ॥ (उमा० स्वा०)

१. सचित्तनिक्षेप—जीवसहित जो वनस्पति जैसे हरे पत्ते आदिक उसपर दान योग्य भोजनका रखना।

२. सचित्तपिधान—सचित्त वनस्पति हरे पत्ते आदिक व पुष्प आदिसे किसी भोजनपानको ढकना।

३. परव्यपदेश—आप पात्रको पड़गाहकर भी स्वयं दान न दे कर दूसरेको दान देनेको कह कर आप अपने कामपर चले जाना।

४. मात्सर्य्य—दूसरे दातारोंसे ईर्षाभाव रखते हुए दान देना।

५. कालातिक्रम—दानके समयको उल्लंघन कर देना पात्रको पड़घायकर भोजनदानमें अधिक बिलंम्ब लगाना जिससे पात्रको सामायिक करनेकी चिन्तासे भोजन लेनेमें आकुलता व शीघ्रता करनी पड़े।

दातार इन पांच दोषोंको बचाता है जिससे पात्रको शुद्ध दान समतासे कर सके।

दानके चार भेद हैं:—आहार, औषधि, अभय और विद्या (ज्ञान)। गृहस्थी श्रावक इन चारों ही प्रकारका दान पात्रोंको करे याने भोजन देवे, औषधि बांटे, रहनेको स्थान दे व विद्या पढ़ानेमें मदद देवे। ये चारों प्रकारके दान

करुणादानकी अपेक्षासे सर्वको करे (जिनको इनकी आवश्यक्ता हो) ।

इस ही वैय्यावृत शिक्षाव्रतमें श्रीअर्हंतकी पूजा भी गर्भित है। जैसा कि श्रीस्वामी समन्तभद्राचार्य्यजी कहते हैंः—

देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्व दुःख निर्हरणं ।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यं॥११९॥

अन्वय—कामदुहि कामदाहिनि देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्व दुःख निर्हरणं आदृतः नित्यं परिचिनुयात् ।

अर्थ–भव्यकी इच्छाके पूर्ण करनेमें निमित्त तथा कामवाणके भस्म करनेवाले देवोंके अधिपति श्रीअरहंतदेवके चरणोंमें पूजन करना सर्व दुःखोंको हरनेवाला है, इसलिये आदरपूर्वक नित्त्य पूजन करनी योग्य है । श्रावकको योग्य है कि अष्ट द्रव्योंसे अपने भावोंको लगाकर श्रीअरहंतकी पूजा करे । यह पूजा महान पुण्य बंध करनेके सिवाय आत्माको वैराग्य भावनामें तथा मुक्तिके प्रयत्नमें दृढ़ करनेवाली है ।

इस प्रकार ये १२ व्रत व्रतप्रतिमा याने श्रेणीमें पालने योग्य हैं। इसके सिवाय इस श्रेणी वालेको और भी कई बातोंके विचार करनेकी आवश्यक्ता है। यह व्रती १२ व्रतोंमें ५ अणुव्रतोंके अतीचारोंको अवश्य बचानेकी पूरी सम्भाल रखता है तथा ७ शीलके दोषोंको यथाशक्ति बचाता है अर्थात् जैसे परिणाम चढ़ते जांय उनको बचाता जाता है–नियम

रूप नहीं है । यदि ५ व्रतोंके पालनेमें कोई दोष लग जाय तो उसका दंड याने प्रायश्चित्त लेता है जिससे आगामी वह दोष न लगे।

रात्रि भोजन त्याग ।

पंडित आशाधरजीके मतसे इस व्रतीको चारों प्रकारका भोजन रात्रिको नहीं करना चाहिये । जैसा कहा है:—

अहिंसाव्रत रक्षार्थं मूलव्रत विशुद्धये ।
नक्तं भुक्तिं चतुर्धाऽपि सदा धीरस्त्रिधात्यजेत् ॥ २४ ॥
योऽत्तित्यजन् दिनाद्यन्तमुहूर्तौ रात्रिवत्सदा ।
स वर्ण्येतोपवासेन स्वजन्मार्द्धं नयन् कियत् ॥ २९ ॥

अर्थ–अहिंसा व्रतकी रक्षा और मूलव्रतकी उज्जलताके लिये धीरपुरुष रात्रिको चारों ही प्रकारका भोजन सदा मन, वचन, कायसे त्यागे । जो १ महूर्त याने २ घड़ी याने ४८ मिनट दिन बाकी रहे तबसे भोजन छोड़े और जब इतना ही दिन चढ़ जाय तब तक भोजन न करे सो अपना आधा जन्म उपवासमें वितावे ।

इस विषयका विशेष खुलासा रात्रिभोजनत्याग प्रतिमाके स्वरूपसे विदित करना योग्य है ।

मौनसे अंतराय टाल भोजन ।

चूंकि यह व्रती मोक्ष–मार्गमें लवलीन है, अध्यात्मिक उन्नतिको बढ़ाना चाहता है, इसलिये अपने शरीर और मनका व्यापार इस प्रकारसे करता है जिससे शरीरमें कभी

कोई रोग न हो तथा मनमें अपवित्रता, लोभ, इन्द्रिय लम्पटता न आवे। अपने आत्मकल्याणमें इस प्रकार वर्तते हुए कुटुम्बादिके पोषणके निमित्त यथा संभव आजीविका करता है। परन्तु अपना जीवन समय और नियमकी पाबन्दीसे बिताता हुआ व्यर्थ अपने अमूल्य समय और शक्तिके उपयोगसे अपनेको रक्षित करता है और यथार्थ उपयोगमें लगा प्रमाद आलस्यको जीतता हुआ एक बड़ा विचारशील व्यक्ति हो जाता है।

गृहस्थी श्रावकव्रती भोजन करते हुए मौन रखता है।

प्रश्न—मौन रखने से क्या लाभ है ?

भ्रूनेत्र हुंकार करांगुलाभिर्गृद्धि प्रवृत्त्यैःपरिवर्ज्य संज्ञाम्।
करोति भुक्तिं विजिताक्षवृत्तिः सशुद्ध मौन व्रत वृद्धकारी॥
संतोषं भाव्यते तेन वैराग्यं तेन दर्श्यते।
संयमः पोष्यते तेन मौनं येन विधीयते॥
लौल्यत्यागात्तपोवृद्धि रभिमानस्य रक्षणम्।
ततश्च समवाप्नोतिमनःसिद्धिं जगत्रये॥
वाणी मनोरमातस्य शास्त्रसन्दर्भगर्भिता।
आदेया जायते येन क्रियते मौन मुज्वलम्॥
परानि यानि विद्यन्ते वन्दनीयानि कोविदैः।
सर्वाणि तानि लभ्यन्ते प्राणिना मौनकारिणा॥ (आशाधर)

भावार्थ—भोजन करते समय मुखसे कुछ न कह मौन रक्खे तथा अपनी भौंहोंसे, आंखोंसे, हुंकारसे, हाथकी अंगु-

लीसे इशारा भी न करे; क्योंकि कोई इष्ट भोग्य चीज मांगनेसे अपनी भोजनमें गृद्धता होती है । मौन रखनेसे अपनी जिन्हा इंद्रियपर विजय प्राप्त होती है । परन्तु जो कोई पात्रमें कुछ देता हो और अपनी इच्छा लेनेकी न हो तो उसके निषेधके लिये इशारा करना मना नहीं है । जैसा कहा है:-

"तन्निषेधार्थेतुहुंकारादिना संज्ञा करणेऽपि न दोषः" (आशाधर)

अर्थात् भोजनके मना करनेके लिये हुंकार व कोई चिन्ह आदिसे इशारा करनेमें भी दोष नहीं है। मौनसे भोजन करनेवाला संतोषकी भावना करता है, वैराग्यको पालता है, संयमकी पुष्टि करता है । भोजनकी लोलुपताके छोड़नेसे तपको बढ़ाता है, अपने अभिमानकी रक्षा करता है तथा तीन जगत्में मनकी सिद्धि प्राप्त करता है। जो उज्ज्वल मौन धारण करता है उसकी वाणी याने भाषा मन-मोहनी, शास्त्रके विचारमें भीगी हुई तथा प्रभावशाली होती है । जो बुद्धिमानोंके द्वारा बन्दनीक पद हैं वे सर्व मौनव्रतीको प्राप्त हो सक्ते हैं ।

जिस कार्य्यको करें उसीमें हमको एक ध्यान होना चाहिये इसीलिये भोजनके समय किसी और बातमें मनको न रखकर भोजन व पात्रमें ही ध्यान रखना चाहिये जिससे कोई जीव जंतु न गिरने पावे व भोजनमें साथ न चला जाय। जितनी मनकी शांति, संतोष और संक्लेश रहितताके साथमें आहार

किया जायगा उतनी ही अधिक आहारद्वारा शरीरको पुष्टता प्राप्त होगी तथा मौन रखनेसे मुख भोजन चबाने में ही प्रवृत्त होगा—एक ही समयमें बोलनेका काम भी नहीं करेगा। दोनों काम एक समयमें लेना मुखपर प्रबल चाकरी बजाना है। खाते समय बोलनेसे मुखके छींटे चारों ओर जावेंगे और वृथा अधिक समय भी जायगा।

भोजन यदि आप ही बनावे और आप ही करे तौ भी मौनसे अपने योग्य जो हो उसे अलग कर ले, यदि थालीमें फिर भी लेना पड़े तो ले सक्ता है—दूसरेसे याचना करना ठीक नहीं है। यहांतक कि अपने ही घरमें अपनी स्त्रीसे भी मांगना उचित नहीं है। भोजनके पहले जो इच्छा हो उसे थालीमें ले लेवे फिर भोजन करते समय नहीं मांगे, वह देवे तो लेवे, न लेना हो तो इनकार कर देवे।

बालक और बालिकाओंको जन्मसे ही मौनके साथमें भोजन करना सिखाना चाहिये। मौनकी आदत न होनेके कारण बहुधा लोग भोजन करते हुए कुछ भी मनकी इच्छा विरुद्ध चीज होनेपर महाक्रोध करते हैं, कुबचन बकते हैं और सारे कुटुम्बको क्लेशित बना देते हैं। मौनव्रत मनुष्यको कषाय जीतनेके लिये अच्छा अस्त्र है। मौनसहित भोजन करते हुए अंतराय बचाने चाहिये। यदि नीचे लिखे कारण बन जाय तो उसी समय भोजन करता २ रुक जावे और फिर वह भोजन उस समय

न करे। अंतर्मूहूर्त्तके पीछे दूसरा शुद्ध भोजन कर सक्ता है।

अंतराय।

दृष्ट्वार्द्रचर्मास्थि सुरा मांसास्टक् पूय पूर्वकम्।
स्पृष्ट्वा रजस्वला शुष्क चर्मास्थि शुनकादिकम्॥ ३१॥
श्रुत्वाऽतिकर्कशा क्रन्द विड्वर प्राय निस्वनम्।
भुक्त्वा नियमितं वस्तु भोज्येऽशक्य विवेचनैः॥ ३२॥
सस्पृष्टे सति जीवद्भिर्जीवैर्वा बहुभिर्मृतैः।
इदं मांस मितीदृश संकल्पे चाशनं त्यजेत्॥ ३३॥

सं०टीका—दृष्ट्वा स्पृष्ट्वाच अशुष्कं चर्म्म अस्थि मद्यं, मांसं, अस्टक् पूयं व्रणादिगतं पक्व अस्टक् पूर्वं शब्दात् बशांऽत्रादि तथा स्पृष्ट्वा न दृष्ट्वा रजस्वलां शुष्क चर्म्म अस्थि शुनकं श्वानं आदि शब्देन मार्जार स्वपचादि, तथा श्रुत्वा अस्य मस्तकं क्रन्द इत्यादि रूपं अतिकर्कश निःशनं, आक्रंद निस्वनम् हाहा इत्त्यादि आर्त्त स्वरस्वभावं विड्वरप्राय निस्वनं परचक्र आगमनं आतंकप्रदीपनादि विषयं तथा मुक्त्वा नियमितं प्रत्याख्यातं वस्तु, भोज्ये भोक्तव्ये द्रव्ये सति किं विशिष्टे संस्पृष्टे मिलिते कै जीवैर्द्विचतुरिन्द्रिय प्राणिभिः किं कुर्वद्भिः जीवद्भिः किं विशिष्टैः अशक्य विवेचनैः भोज्यद्रव्यात् पृथक् कर्त्तु अशक्यैः अथवा संस्पृष्टे कैर्मृतैर्जीवैः कतिभिः बहुभिःत्रिचतुरादिभिः तथाइदं भुज्यमानं वस्तु मांसं सादृश्यात् इदं रुधिरं इदं आख्यायं सर्प इत्यादि रूपेण मनसानविकल्पमाने॥

भावार्थ—देखने और छूने दोनोंके अंतराय इस भांति हैं:—

(१) गीला चमड़ा (२) गीली हड्डी (३) मदिरा

(४) मांस (५) लोहू (६) घावसे निकली हुई पीप (७) नसें आंतें वगैरह ।

जो केवले छूनेके अंतराय देखनेके नहीं:–

(१) रजस्वला स्त्री (२) सूखा चमड़ा (३) सूखी हड्डी (४) कुत्ता, बिल्ली, चांडालादि हिंसक जानवर ।

केवल सुनने मात्रके अंतरायः–

(१) इसका मस्तक काट डालो इत्यादि अति कठोर शब्द (२) हाय हाय करके आर्त्त बढ़ानेवाला रोना (३) आपत्तियोंका सुनना जैसे शत्रुकी सेनाका आना, रोगका फैलना, अग्निका लगना मंदिरादिपर उपसर्ग आदि । केवल भोजन करने के:–

(१) छोड़ा हुआ पदार्थ (नियम किया हुआ पदार्थ) खानेमें आ जावे (२) भोजन करने योग्य जो भोज्य पदार्थ उसमें दो इंद्री, तेंद्री, चौंद्री कई ज़ीव जीते पड़ जाय और उनको निकाला न जा सके तो अंतराय । (३) भोज्य पदार्थमें कई याने तीन चार मरे जीव मिलें तो अंतराय। (४) यह भोजन मांसके रुधिरके व सांप इत्यादिके समान हैं–ऐसा मनमें संकल्प होनेपर जिससे चित्तमें घृणा हो जावे । इस प्रकार सब मिलके १८ अंतराय हैं ।

नोट–जब भोज्य पदार्थमें तीन चार मरे जीव मिलें तो अंतराय माना जाय ऐसा कथन है । तब यह सिद्ध होता है कि एक या दो मरे जीव हों तो अंतराय नहीं होगा; किन्तु जिसमें मिले हों उस

भोजनको अलग कर देगा। जब यहां यह अभिप्राय निकलता है तब ऊपर जो गीले व सूखे चर्म, मांस, रुधिर आदिके अंतराय हैं वे सर्व पंचेद्रिय पशुकी अपेक्षासे हैं—ऐसा विदित होता है। किसी किसी का कहना है कि लोहूकी धार अपने या दूसरेके शरीरसे ४ अंगुल बहती देखे तो अंतराय होवे।

ज्ञानानदंनिजरसनिर्भर श्रावकाचारमें अंतराय इस भांति कहे हैं:—

१. मदिरा, २. मांस, ३. हाड़, ४. काचाचर्म, ५. चार अंगुल लोहूकी धारा, ६. बड़ा पंचेन्द्री मूवा जानवर, ७. भिष्टामूत्र, ८. चूहड़ा—इन आठनिको प्रत्यक्ष नेत्रानि करि देखने ही का भोजनमें अंतराय है।

१. सूखा चर्म, २. नख, ३. केश, ४. ऊन, ५. पांख, ६. असंयमी स्त्री वा पुरुष, ७. बड़ा पंचेन्द्री तिर्यंच, ८. रितुवंती स्त्री, ९. आखड़ीका भंग, १०. मलमूत्रकी शंका, ११. मुरदाका स्पर्शन, १२. कांसा विषै कोई त्रस मृतग जीव निकसे, १३. वाल कांसा विषै निकसै, १४. हस्तादिक निज अंग सो बेंद्री आदि छोटा बड़ा त्रस जीवका घात इत्यादि। भोजन समय स्पर्श होय तो भोजन विषै अंतराय। बहुरि मरण आदिकका दुःख ताका विरह करि रोवता ताका सुनना, लाय लागी होय ताका सुनवाका नगरादिकका मारवाका, धर्मात्मा पुरुषको उपसर्ग हुएका, मृतक मनुष्यका, कोईके नाक कान छेदनेका, कोई चोरादिक

ने मारवा ले गया होय ताका, चंडालके बोलनेका, जिनबिंब जिनधर्मकी अविनयका, धर्मात्मा पुरुषके अविनयका इत्यादि महापापके वचन सत्यरूप आपनें भासें तो ऐसे वचन सुनने विषैं भोजनका अंतराय है। बहुरि भोजन करती बार ऐसी शंका उपजे कि या तरकारी तो मांस सारिखी है व लोहू सारिखी है व हाड़ सारिखी है व चर्म सारिखी है व विष्टा व सहत् इत्यादि निंदक वस्तु सारिखा भोजन समय कल्पना उपजे अर मनमें ग्लानि होइ आवे, अर मन वाक चाखने विषैं औहटा होय तो भोजन विषैं मनका अंतराय है अर भोजन विषैं निंदक वस्तुकी कल्पना ही उपजे और मन विषैं वाका जानपना होय तो अंतराय नाहीं। ऐसे देखवाका ८, स्पर्शका २०, सुननेका १०, मनका ६ सर्व चारों प्रकारके ४४ अंतराय जानना। " करीब २ इसी जातिका संस्कृत पाठ सोमसेनकृत त्रिवरणाचारमें प्राप्त होता है जो इस भांति है:– (अध्याय छठा)

प्राणघातेऽन्न वाष्पेण, वन्हौझंपत्पतंगजे ।
दर्शने प्राणघातस्य, शरीराणां परस्परं ॥ १८५ ॥
कपर्द (कौड़ी) केशचर्मास्थिमृत प्राणि कलेवरैः ।
नख गोमय भस्मादि मिश्रितान्ने च दर्शिते ॥ १८६ ॥
उपद्रुते विडालाद्यैः प्राणिनां दुर्वचः श्रुतौ ।
शुनां श्रुतेकलिध्वानै ग्रामघृष्टि (शूकर) ध्वनौश्रुते ॥१८७॥

पीड़ारोदनतः श्वान ग्रामदाह शिरच्छिदः ।
धाट्चाग मरणप्राणि क्षयशब्दे श्रुते तथा ॥ १८८ ॥
नियमितान्नसंभुक्ते प्राग्दुःखाद्रोदने स्वयम् ।
विट्शंकायां क्षुते वान्तौ मूत्रोत्सर्गेऽन्यताड़िते ॥ १८९ ॥
आर्द्रचर्मास्थिमांसासृक् पूयरक्तसुरा मधौ ।
दर्शने स्पर्शने शुष्कास्थि रोमविट्जचर्मणि ॥ १९० ॥
ऋतुमतीप्रसूतास्त्री मिथ्यात्वमलिनाम्बरे ।
मार्जार मूषकश्वान गोऽश्वाद्यव्रति वालके ॥ १९१ ॥
पिपीलिकादि जीवैर्वावेष्टितान्नं मृतैश्चवा ।
इदं मांस मिदं चेदृक् संकल्पे वाशनं त्यजेत् ॥ १९२ ॥

भावार्थ—१. अन्नकी भाफसे किसी प्राणीका मरण, २. आगमें किसी पतंगका जलना, ३. परस्पर कई शरीरोंका प्राणघात ४. कौड़ी, ५. वाल, ६. चमड़ा, ७. हड्डी, ८. मरे हुए प्राणी, ९. नाखून, १०. गोबर और ११. भस्मादिसे मिला हुआ अन्न देखनेपर, १२. बिल्ली आदिका उपद्रव होनेके कारण प्राणियोंके दुर्वचन, १३. कुत्तोंकी कलकलाहट, १४. गांवके शूकरोंकी कलकलाहट, १५. कुत्तेका पीड़ाके कारण रोना, १६. ग्रामका दाह. १७. किसीके सिरका छेद, १८. और चांडालद्वारा किसी प्राणीका मरण सुने जानेपर, १९. छोड़ा हुआ अन्न खा जानेपर, २०. स्वयं कोई पूर्व दुखकी यादसे रुलाई आ जानेपर, २१. पाखानेकी शंका होने

पर, २२. छीक आ जानेपर, २३. वमन हो जानेपर, २४ मूत्र निकल जानेपर, २५. दूसरेसे पीटे जानेपर, २६. गीला चमड़ा, २७. हाड़, २८. मांस, २९. अस्टक, ३०. पीप, ३१. रक्त, ३२. मदिरा, ३३. तथा मधु देखनेपर, ३४. सूखा चमड़ा, ३५. हड्डी, ३६. रोमसहित चर्म, ३७. रजस्वला व प्रसूती स्त्री, ३८. मिथ्यात्वी, ३९. मलीन कपड़े पहने हुए, ४०. बिल्ली, ४१. चूहा, ४२. कुत्ता, ४३. गौ, ४४. घोड़ा, ४५. अव्रती, ४६. वालक इन सबसे भोजन स्पर्शित हो जानेपर तथा ४७. कई चींटी आदि जीती या मरी हुई से वेष्टित अन्न होनेपर, ४८. यह मांस है या कोई निषिद्ध चीज है—ऐसा संकल्प होनेपर भोजन करते अंतराय करे याने फिर भोजन मुखमें न देवे। यदि किसीको दो वार भोजनका नियम है तो एक वार अंतराय हो जानेपर कमसे कम अंतर्मुहूर्त पीछे दुबारा भोजन कर सक्ता है। ज्ञानानंदश्रावकाचारके अनुसार श्रावकको ७ जगह मौन रखनी चाहिये अर्थात् देवपूजा, २. सामायिक, ३. स्नान, ४. भोजन, ५. स्त्री मैथुन, ६. लघुशंका, ७. दीर्घशंका। तथा ऊपरसे कोई जीव जंतु न पड़े इसलिये इतनी जगह चंदोवा भी चाहिये। १. पूजाका स्थान, २. सामायिकका स्थान, ३. चूल्हा, ४. पन्हेड़ा (पानीका स्थान) ५. उखली, ६. चक्की, ७. भोजन स्थान, ८. सय्यास्थान, ९. आटा चालनेका स्थान, १०. व्यापारका स्थान, ११. धर्मचर्चाका स्थान।

अध्याय नववा।



सामायिकप्रतिमा।

व्रतप्रतिमाके नियमोंका अभ्यास करके अधिक ध्यान करनेकी अभिलाषासे तीसरी श्रेणीमें आकर सामायिककी क्रियाको नियम पूर्वक दिनमें ३ वार जो विधि पहले कह चुके हैं उस प्रमाणसे करना योग्य है। इस अभ्यासमें सामायिकका काल यद्यपि अंतर्मुहूर्त है तथापि ध्यानकी वृद्धिके वास्ते दो घड़ी या ४ घड़ी या ६ घड़ी भी लगा देवे जैसी अपनी थिरता और परिणामोंकी योग्यता देखे। नियम तो अंतर्मुहूर्त ही का है, जोकि जघन्य १ समय और १ आंवली, उत्कृष्ट ४८ मिनटसे एक समय कम, मध्यम अनेक भेदरूप होता है। जहां तक बने २ घड़ी याने ४८ मिनटसे कम सामायिक प्रति संध्यामें न करे।

चतुरावर्त्त त्रितयश्चतुः प्रणामःस्थितोयथाजातः।
सामयिकोद्विनिषिद्यस्त्रियोग शुद्धस्त्रि सन्ध्यमभिवन्दी।
॥ १३९ ॥ (र० क०)

भावार्थ–जो चार आवर्त्तके हैं त्रितय जिसके अर्थात् एक२ दिशामें तीन २ आवर्त्तका करनेवाला इस प्रकार १२ हैं आवर्त्त जिसके, चार हैं प्रणाम जिसके, कायोत्सर्गसहित

बाह्याभ्यंतर परिग्रहकी चिन्तासे रहित, दो हैं आसन जिसके (खड्गासन व पद्मासन), तीनों योग हैं शुद्ध जिसके अर्थात् मन, वचन, कायके व्यापार जिसके शुद्ध हैं और तीनों संध्याओंमें अभिवन्दन करनेवाला अर्थात् प्रातःकाल मध्यान्हकाल और सायंकाल—इन तीनों कालोंमें सामायिक करनेवाला-ऐसा व्रती सामायिकप्रतिमाका धारी श्रावक है।

आर्त्त रौद्र परित्यक्तास्त्रिकालं विदधातियः।
सामायिकं विशुद्धात्मा स सामायिक वान्मतः ॥८३५॥
(सु० र० सन्दोह)

अर्थ—जो धर्मात्मा आर्त्त और रौद्र ध्यानोंको छोड़कर तीनों काल सामायिक करता है उसे सामायिक प्रतिमावान कहते हैं।

जिणवयण धम्मचेईय परमेट्ठि जिणालयाण णि-
च्चंपि। जं वंदणं तियालं कीरइ सामाइयं तंखु ॥३७२॥
(स्वा० अ०)

सामायिक प्रतिमावाला नित्य ही तीनों कालोंमें जिनवाणी जिनधर्म, जिनप्रतिमा, पंचपरमेष्ठी और जिनमंदिर इन ९ देवताओंको बन्दना करता है और साम्यभावसे सामायिक करता है। यहां परोक्ष बंदनासे अभिप्राय है जो सामायिकके समय की जाती है।

सामायिकके समय १२ भावनाओंको विचारता हुआ अत्य-

न्त उदासीन रहे। यदि उपसर्ग भी पड़े तो सामायिक छोड़कर भागे नहीं। आत्माको भिन्न अनुभव करता हुआ शरीरकी अवस्थाके पलटनका केवल ज्ञाता ही रहे—आप अपने आत्माको सदा भिन्न ही विचारे। इस प्रकार सामायिक करनेवाला इसके पांचों दोषोंको भले प्रकार टालें और यदि कोई कारण वश कोई अतीचार लग जावे तो प्रायश्चित्त लेवे।

सामायिकका विशेष विवरण व्रतप्रतिमाके अध्यायमें कहा जा चुका है। सामायिक प्रतिमावालेके ३ काल सामायिक करनेका नियम है, जब कि व्रतप्रतिमावालेके रोज सामायिकका दृढ़ नियम नहीं है—अभ्यास है।

प्रश्न—इन दोनोंमें क्या अन्तर है?

इस विषयमें ज्ञानानंदश्रावकाचारमें इस भांति कहा है "दूसरी प्रतिमाके विषैं आठैं चौदस वा और परव्यां विषैं तो सामायिक अवश्य करे ही करे। अपि सर्व प्रकार नियम नाहीं है करै वा नाहीं करैं अर तीसरी प्रतिमाके धारीके सर्व प्रकार नियम हैं।" इससे भी यही अभिप्राय निकलता है कि व्रतप्रतिमावाला पर्वियोंमें तो अवश्य करे नित्यका दृढ़ नियम व्रतीके नहीं, जबकि सामायिक प्रतिमावालेके है तथा सामायिक प्रतिमावाला कितनी देर तक सामायिक करे इस विषयमें आत्मानुभवी पंडित बनारसीदासजी अपने नाटक समयसारमें इस प्रकार कहते हैं:—

तृतीय प्रतिमा–दरब भाव विधि संजुगत, हिये प्रतिज्ञा टेक।
तजि ममता समता गहे, अन्त महूरत एक ॥

अध्याय दशवां ।



प्रोषधोपवासप्रतिमा

पर्वदिनेसु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनि गुह्य ।
प्रोषध नियमविधायीप्रणाधि परः प्रोषधानशनः ॥१४०॥

(र० क०)

भावार्थ–जो हर महीनेकी चारों ही पर्वियोंमें अर्थात् २ अष्टमी व २ चौदसको अपनी शक्तिको न छिपाकर शुभ ध्यानमें तत्पर होता हुआ प्रोषधके नियमको रखता है सो प्रोषधोपवास प्रतिमावाला है ।

मासे चत्वारि पर्वाणि तेपु यः कुरुते सदा ।
उपवासं निरारम्भः प्रोषधीः समतो जिनैः॥ ८३६ ॥

(सु० र० स०)

अर्थ–एक मासमें चार पर्वियें होती हैं, उनमें जो श्रावक सदा ही आरम्भ त्यागके उपवास करता है वह प्रोषधप्रतिमाधारी है–ऐसा श्रीजिनेन्द्रोंने कहा है । जिसका विशेष वर्णन व्रतप्रतिमामें किया जा चुका है । यदि अपनी

हो तो सप्तमी व तैरसको एक भुक्तकर ९ वीं व १५ को भी एक भुक्त करे और १६ पहर धर्म ध्यानमें बितावे। यदि ऐसा न बने तो जलके सिवाय इन १६ प्रहरोंमें और कुछ ग्रहण न करे। यदि यह भी न बने तो १६ प्रहर धर्मध्यान करे बीचके दिन नीरस भोजन आदि जैसा पहले कहा है ग्रहण करे।

दूसरी रीति यह है कि–१६ प्रहर उत्कृष्ट, १२ प्रहर मध्यम और ८ प्रहर जघन्य प्रोषध करे अर्थात् इतने काल तक धर्मध्यान व धर्मकी भावना व धर्मके कार्य्योंमें लगा रहे। आरम्भ व्यापार व घरके कार्य्य न करे। प्रतिमावालेको अवश्य ही अष्टमी व चौदसको धर्मध्यानसहित उपवासके साथ रहना होगा–यह नियम है।

यहां वैराग्य विशेष बढ़ जाता है। जैसी थिरता परिणामोंकी देखे वैसा उपवास करे। केवल १६ प्रहर भूखा रहनेसे और आर्त्त परिणाम बढ़ानेसे प्रोषध नहीं होता। प्रयोजन यह है कि वह श्रावक इतने काल निवृत्त रहकर वीतराग परिणतिको बढ़ावे और निज आत्मानंदको प्राप्तकर परम सुखी होवे। इस व्रतके पांचों अतीचारोंको टाले। यदि प्रमाद वश कोई लग जावे तो प्रायश्चित्त लेवे।

प्रोषधप्रतिमा और व्रतप्रतिमामें क्या अन्तर ? है इस विषयमें ज्ञानानंदश्रावकाचारमें यह लेख है " दूजी तीजा प्रतिमाके धारीके प्रोषध उपवासका संयम नाहीं है,

मुख्यपने तो करे है गौनपने नाहीं भी करे । अर चौथी प्रतिमा धारीके नियम है कि यावज्जीव करे ही करे । ” आत्मानुभवी पंडित वनारसीदासजी नाटक समयसारमें इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति कहते हैं:—

सामायिक कीसी दशा । चारि महर लों होय ।
अथवा आठ महर रहे । मोसह प्रतिमा सोय ॥

अध्याय ग्यारहवां ।

सचित्तत्यागप्रतिमा ।

मूल फल शाक शाखा करीरकन्द प्रसून वीजानि ।
नामानियोऽत्तिसोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥१४१॥
(र० क०)

जो आमानि कहिये कच्चे व अप्राशुक व अपक्क, मूल, फल, शाक, शाखा, गांठ व केर, कंद, फूल और बीज नहीं खाता है सो दयावान सचित्तत्यागप्रतिमाधारी है ।

इस श्रेणीमें यह श्रावक कोई भी चीज जो सचित्त हो याने जीवसहित हो मुखमें नहीं देता है । कच्चा पानी नहीं पीता, फल आदि एकाएक मुंहमें दे तोड़ता नहीं । प्राशुक करनेकी जो विधि है उस प्रमाणे अचित्त की हुई चीजोंको ही खाता है । जो अनाज बोने योग्य हो चाहे सूखा भी है योनिभूत होनेके कारण सचित्त है ।

सच्चित्तं पत्त फलं छल्ली मूल च किसलयं बीजं ।
जोणय भक्खदि णार्णा सचित्त विरओ हवे सोवि॥२७८॥

(स्वा॰ अ॰)

अर्थ—पत्त–नागवल्ली, दल लिम्ब पत्र सर्षप चणकादि पत्र धतूरादि दल पत्र शाकादिकं न अश्नाति याने नागवेल, नीम, सरसों, चने, धतूरेके पत्र व शाकादि न खावे ।

फल–चिर्भट कर्कटिका कूष्मांड निंबुफल दाडिम बीजपुर अपक्कआम्रफल कदलीफलादिकं अर्थात् खीरा, ककड़ी, कूष्मांड, नींबू, अनार, बिजोरा, कच्चा आम व कच्चा केला आदि ।

छल्ली–वृक्षवल्ल्यादि सचित्तत्वक् न अत्ति अर्थात् वृक्षकी छाल आदिको सचित्त न खावे ।

मूलं–आर्द्रकादि लिंवादि वृक्ष वल्ली बनस्पतीनां मूलं न खादति। अदरक आदि नीमादि वृक्षोंकी व वेलादि बनस्पतिकी जड़को न खावे।

किशलय–पल्लवं लघु पल्लवं कुपलं अर्थात् छोटे पत्ते कोपल ।

बीज–सचित्त चणक मुद्ग तिल वर्जरिका माषाढकी जीरक कुबेर राजी गोधूम व्राह्मयादिकं । अर्थात् साबुत चने, मूंग, तिल, बाजरा, मसूर, जीरा, गेहूं, जौ, धान्य आदि इन सर्वको सचित्त न खावे। बहुधा लोग खेतोंमें इन

चीजोंको एकाएक उखाड़ कर व तोड़कर खाने लग जाते हैं। जैसे चनेका साग खाना, ककड़ी तोड़-कर मुंहमें रख लेना, छाल चबा डालना, किसी वृक्षकी जड़ उखाड़ मुखमें धर लेनी व बाजारमें सूखे गेहूं व तिल बाजरा लेकर मुंहमें धर लेना इत्यादि सचित्त भोजनकी प्रवृत्तिको यहांपर बन्द कराया है। जो वस्तु शरीरके ला-भार्थ जरूरत हो उसको वह लेकर देख शोध अचित्त करके फिर खावे जिससे कुछ भी रागका विजय हो।

प्राशुक किस प्रकार होता है इसका वर्णन भोगोपयोग व्रतमें किया जा चुका है तथापि यहां श्रीगोमट्टसारकी श्रीअभय-चंद सिद्धान्त चक्रवर्तीकृत संस्कृतटीकाके वाक्य लिखे जाते हैं। प्रकरण सत्यवचनयोग। (पत्रे ९७ ग्रंथ चौपाटी बम्बई)

अतीन्द्रियार्थेषु प्रवचनोक्त विधि निषेध संकल्प परिणामो भावस्त-दाश्रितं बचो भावसत्यं यथा शुष्क पक्व ध्वस्ताम्ललवणसंमिश्रित दग्धा-दि द्रव्यं प्राशुकम् अतः तत्सेवने पापबंधो नास्ति इतिपाप वर्जन वचनं तत्र सूक्ष्म जंतूनामिंद्रियागोचरत्वेऽपि प्रवचन प्रामाण्यात् प्रासु-काप्रासुक संकल्परूप भावाश्रित वचनस्य सत्त्यत्त्वात् सकलातींद्रियार्थ ज्ञानि प्रोक्तप्रवचन सत्त्यत्वात् ॥

इसीका अर्थ भाषा गोमट्टसारटीका पं० टोडरमलकृतमें इस प्रकार है " बहुरि अतीन्द्रिय जे पदार्थ तिन विषें सिद्धा-न्तके अनुसार विधि निषेधका संकल्परूप परिणाम सो भाव कहिये तिंहने लिये जो वचन सो भाव सत्य कहिये।

जैसे सूख गया होय व अग्नि करि पचा होय व घरड़ी कोल्हू आदि यंत्र करि छिन्न किया होय व भस्मीभूत हुआ होय वस्तु ताको प्राशुक कहिये या सेवनतें पाप बंध नाहीं इत्यादि पाप वर्जनरूप वचन सो भावसत्य कहिये । यद्यपि इन वस्तूनि विषें इंद्रिय अगोचर सूक्ष्म पाइये है तथापि आगम प्रमाण ते प्राशुक अप्राशुकका संकल्परूप भावके आश्रित ऐसा वचन सो सत्य है । जातें समस्त अतीन्द्रिय पदार्थके ज्ञानीनि करि कह्या वचन सत्य है । ”

नोट–संस्कृतमें “ कषायला द्रव्य व लवणके मिलानेसे भी प्राशुक होता है ’ ऐसा पाठ है ।

पांचवीं प्रतिमावाला प्राशुक चीजोंको खा सक्ता है इसमें कोई निषेध नहीं है । ऐसा ही सुभाषितरत्नसन्दोहमें कहा है:–

न भक्षयति योऽपक्वं कन्दमूल फलादिकम् ।
संयमासक्तचेतस्कः सचित्तात्स पराङ्मुखः ॥ ८३७ ॥

अर्थ–जो अपक्व कहिये कच्चे कन्दमूल फलादिको नहीं खाता है सो संयममें आशक्त चित्त सचित्त त्यागी कहलाता है, परन्तु अप्राशुक नहीं खा सक्ता ।

प्रश्न–भोगोपभोगमें जिन सचित्तोंका त्याग कर चुका हो उनको भी अचित्त लेवे वा नहीं ?

उत्तर–इसका समाधान यह है कि यदि भोगोपभोगमें उसने मात्र सचित्त पदार्थोंके खानेका त्याग किया है अचित्तके खानेका त्याग नहीं किया, तौ वह यहां भी उन सबको अचित्त रूपमें खा सक्ता है तथा यदि उसने यह त्यागा हो कि इतनी बस्तुओंको मैं सचित्तको अचित्त करके भी नहीं

खाऊं गा तौ वह इस पंचम प्रतिमामें भी उनको किसी हाल-तमें नहीं खावे, शेषको अचित्त रूपमें खावे; क्योंकि इसके पहली प्रतिज्ञा छूटती नहीं है ।

सचित्तप्रतिमावालेके आरंभका त्याग नहीं है । इससे यह सचित्त जल, फल, साग आदिको स्वयं या दूसरेसे अचित्त कराके खा पी सक्ता है। इसके केवल सचित्त खानेका त्याग हैं। व्यवहार करनेका त्याग नहीं है । सचित्त जलादिसे स्नानादि कर सक्ता हैं, हाथ पैर कपड़ा आदि धो सक्ता है। तौभी यदि बन सके तौ अचित पानीका ही व्यवहार करे, परन्तु इसके अचित्त व्यवहारका नियम नहीं है।

प्रश्न—कंदमूलादि अनंत कायका त्याग तो भोगोपभोगव्रतमें आजन्म होगया है। अब यहां कन्दको अचित करके खावे यह विधि क्यों की गई ?

उत्तर—वास्तवमें अनन्त कायोंका आजन्म त्याग होगया है तथापि उस त्यागमें मुख्यता सचित्तत्याग की है, तौभी जिह्वा इन्द्रीकी लोलुपता वश उन अनन्त कायोंको अचित्त न करे, क्योंकि एकके घातसे अनंतका घात करे गा । यहां फिर जो इनकी विधिकी गई है, इससे यह प्रगट होता है कि जब तक आरम्भ परिग्रहका त्यागी नहीं है तब तक इसके विशेष मुख्यता इन्द्री संयमकी है और थावर प्राणोंकी रक्षाकी गौणता है। प्रयोजनसे अधिक इनकी हिंसा नहीं करता है। जैसा कहा है:—

स्तोकैकेन्द्रिय घाताद् गृहिणां संपन्न योग्य विषयाणां ।
शेषस्थावर मारण विरमणमपि भवति करणीयं ॥ ७६ ॥
(पु० सि०)

अर्थात् योग्य विषयों करके सहित गृहस्थी प्रयोजनरूप थोड़े एकेन्द्री जीवोंके घातके सिवाय शेष स्थावरोंका भी घात न करे। इस अपेक्षासे जिव्हाके स्वादके वश तो कंद-मूलादिको विराधना करके अचित्त न करे, परन्तु औषधि आदि किसी ऐसे आवश्यकीय काममें जिसमें लोलुपता जवानकी नहीं है यह ग्रहस्थी इन अनंतकाय वनस्पतियोंको भी अचित्त करके काममें ले सक्ता है। जैसे बालक बीमार है और उसे अदरकका रस चाहिये तो रस निकाल करके दे सक्ता है व आपको आवश्यक हो तो ले सक्ता है। इसी कारण प्राशुकरूपसे इन पदार्थोंकी मनाई पंचम प्रतिमा वालेके नहीं की गई है। भोगोपभोगमें जिह्वा इन्द्रीकी मुख्यता थी। अतएव वृथा थावरोंकी हिंसासे वचनेका गृहस्थीको उपदेश दिया गया है। इसका समाधान इसी प्रकार समझमें आता है। विशेष बहु ज्ञानी विचारें सो ठीक है।

यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा कि यह पंचम प्रतिमा भी जिव्हा इन्द्रीके रोकनेके लिये मुख्यता करके है। यद्यपि गौणतासे प्राणोंकी रक्षाका भी अभिप्राय है जैसा कहा है:—

जो वज्जेदि सचित्तं दुज्जय जीहा विणिज्जयातेण।

दयभावो होदि किउ जिणवयणं पालियंतेण ॥ ३८० ॥

(स्वा० का०)

भावार्थ–जो सचित्त नहीं खाता है उसने अपनी दुर्जय जीभको जीत लिया है तथा दयाभाव कर जिन आज्ञाको पालन किया। जिसको आप सचित्त खानेका त्याग है वह दूसरोंको खिलावे भी नहीं।

जो णय भरकेदि सयं। तस्सण अण्णस्स जुज्जतेदाउ।
भुत्तस्स भोजिदस्सहिणछि विसेसो तदोकोवि ॥३७९॥

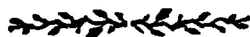
(स्वा० का०)

भावार्थ–जो स्वयं सचित्त नहीं खाता है वह दूसरेको भी सचित्त न देवे, क्योंकि खाने और खिलाने वालेमें कोई अन्तर नहीं है।

सचित्त प्रतिमाधारीके मुख्यपने सचित्त मुखमें देनेका त्याग है। इसी विषयमें ज्ञानानंदश्रावकाचारमें यह वाक्य है– "मुखका त्याग पांचवीं प्रतिमाधारीके है और शरीरादिकका त्याग मुनि करें" भाव यही निकलता है कि सचित्तको अचित्त करके खा सक्ता है व सचित्तसे खानेके सिवाय अन्य काम कर सक्ता है। आत्मानुभवी पं० बनारसीदासजी इस प्रतिमाके स्वरूपमें सचित्त खानेका ही निषेध बतलाते हैः–

"जो सचित्त भोजन तजै, पीवे प्राशुक नीर।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंचप्रतिज्ञा गीर॥

अध्याय बारहवां ।



रात्रिभोजन–त्यागप्रतिमा ।

अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नातियो विभावर्याम् ।
स च रात्रि भुक्तिविरतः सत्त्वेष्वनुकम्पमानमना॥ १४२॥
(र० क०)

भावार्थ–जो रात्रिको दयावान चित्त हो अन्न कहिये चाँवल, गेहूं आदि; पानं कहिये दूध, जल आदि; खाद्यं काहिये बरफी, पेड़ा, लड्डु आदि; लेह्यं काहिये रबड़ी, चटनी आदि इन चारों प्रकारके पदार्थोंको नहीं खाता है वह रात्रि-भुक्तित्याग नाम प्रतिमाका धारी है । ऐसा ही श्रीकार्तिकेय स्वामीने कहा है:–

जो चउविहंपि भोज्जं रयणीए णेव भुंजदे णाणी ।
णय भुंजावइ अण्णं णिंसिविरऊ सो हवे भोज्जो॥ ३८१॥
जो णिसि भुत्तिं बज्जदि सोउववासं करेदिछम्मासं ।
संव च्छरस्स मज्झे आरंभं मुयदि रयणीए॥ ३८२ ॥

इस प्रतिमामें दूसरोंको भी रात्रिमें चार प्रकारका आहार खानेको न दे । जो रात्रिको न खाए उसको १ वर्षमें छह मासका उपवास हो जाता है । इस प्रतिमाका पालनेवाला रात्रिको भोजन सम्बन्धी आरंभ भी न करे–ऐसे स्वामीकार्तिकेय-जीका मत है । जैसे संस्कृतटीकामें कहा है:–

रात्रि भोजन विरक्तः पुमान् आरंभं गृह व्यापारं क्रयविक्रय–वाणिज्यादिकं, खंडनी पीसनी चुल्ही, उद–कुंभप्रमार्जनी, पंच सूना-दिकं त्यजति–रात्रि भोजन विरतः रात्रौ सावद्य पाप व्यापारं त्यजति।

भावार्थ–रात्रिभोजनसे विरक्त पुमान रात्रिको घरका व्यापार लेना देना वाणिज्य व चक्की, चूल्हा, उखली, बुहारी, पानी भरना आदि आरंभ न करे और पापके व्यापारोंको छोड़े।

प्रश्न–जब यहां चार प्रकारके भोजनके त्यागका उपदेश है तब क्या इससे पहलेकी श्रेणियोंमें इनका त्याग नहीं है? यदि है तो फिर यहां क्यों कहा?

समाधान–इस विषयमें ज्ञानानंदश्रावकाचारमें यह कथन है–"रात्रि भोजनका त्याग तो पहली दूसरी प्रतिमा ही सूं मुख्यपणे होय आया है, परन्तु ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र आदि जीव नाना प्रकारके हैं। स्पर्श शूद्र पर्यंत श्रावकव्रत होय है जो जाके कुल कर्म विषें ही रात्रिभोजनका त्याग चला आया है ताके तो रात्रि भोजनका त्याग सुगम है; परन्तु अन्यमती शूद्र जैनी होय अर श्रावकव्रत धारे ताकूं कठिन है। तातें सर्व प्रकार छठी प्रतिमा विषें ही याका त्याग संभवे है अथवा आपने खावाका त्याग तो पूर्वे ही किया था यहां औरांकूं भोजन करावने आदिका त्याग किया।"

इस ऊपरके कथनसे तथा श्लोकोंके ऊपरसे यह साफ २ प्रगट होता है कि नियम पूर्वक रात्रिको चारों

प्रकारके भोजन स्वयं करने व करावनेका त्याग इस छठी श्रेणीमें है। इसके नीचे नियम नहीं है, किन्तु अभ्यासरूप है। जैसे सामायिक और प्रोषधोपवासका अभ्यास व्रतप्रतिमामें है; परन्तु नियमरूप तीसरी और चौथी श्रेणीमें है। ऐसे ही रात्रिभोजनके त्यागका अभ्यास छठी प्रतिमासे नीचे है, परन्तु नियमरूप इस प्रतिमामें है। यदि व्रतप्रतिमा वाला ३ काल सामायिक और १६ पहरका धर्मध्यानसहित प्रोषध करे तो कुछ निषेध नहीं है, किन्तु उपदेश ही है। तैसे यदि छठीसे नीचे रात्रिभोजन चारों ही प्रकारका न करे तो कुछ निषेध नहीं है, किन्तु उपदेश ही है। जैसा कि पहले दर्शन और व्रतप्रतिमामें पं० आशाधरके मतके अनुसार कहा जा चुका है।

यह जैनधर्म सर्व ही प्रकारकी स्थितिके जीवोंके पालनेके हेतुसे है, इसलिये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके अनुसार जिस प्रकार निराकुलतासे धर्मका साधन हो सके उस प्रकार वर्तना चाहिये। श्रावक दयावान हैं, इसलिये यथाशक्ति यही उद्यम करना चाहिये कि रात्रिको खान पान न करे। जिस समाजमें बाल्यावस्थासे ही रात्रिको न खानेका अभ्यास है वह समाज सुगमतासे त्याग कर सक्ता है। परन्तु जिस समाज, देश व कुलमें रात्रिभोजनका अभ्यास नहीं है वहां अपने परिणामोंको देखकर त्याग किया जाय तौ भी छठी श्रेणीमें आकर सर्वथा नियमसे त्याग करना होगा—ऐसा अभिप्राय मालूम होता है। ऐसे कहनेका यह अभिप्राय नहीं है

कि नीचे की श्रेणी वाले यदि लाचारी वश रात्रिभोजन करे तो पाप बंध न होगा–हिंसाद्वारा पापका बंध अवश्य होगा। अतएव उत्तम यही है कि पूर्व ही से २ घड़ी दिन पहले ही से पानी पी आहार पानका त्याग कर दे। साधारण श्रावक भी यदि ऐसा करे तो उसको विशेष लाभ है। क्योंकि डाक्टरोंके मतके अनुसार जबतक सूर्य्यकी किरणें फैली हैं तबतक ही भोजन करना शरीरको विशेष लाभकारी है और भले प्रकार पच जाता है। यदि लाचारी वश याने किसीसे किसी भी अनिवार्य्य कारण वश सर्वथा त्याग न बन सके तो वह और व्रतोंको पालने योग्य नहीं है–ऐसा प्रयोजन नहीं निकलता है। यदि कोई श्रावक रात्रिको जल आदि किसी चीजका किसी कारणसे त्याग नहीं कर सक्ता तौभी उसे छठी प्रतिमामें अवश्य त्याग करना होगा–ऐसा अभिप्राय समझमें आता है। इसके सिवाय यह भी यहां अभिप्राय है कि जो रात्रिको आप तो नहीं खाता पीता था, परन्तु बाल बच्चे, नौकर चाकर व किसी पाहुनेको जिमा देता था। अब इस छठी प्रतिमामें किसीको भी रात्रिको पानी या भोजन या दवाई नहीं देगा। यह कथन अपनी समझसे लिखा गया है विशेष ज्ञानी विचार करें।

इस प्रतिमाका नाम दिवामैथुनत्याग भी है अर्थात् दिवसमें अपनी स्त्रीसे काम सेवन न करे। यद्यपि पहले भी ऐसा नहीं करता था, परन्तु यहां नियम हो गया, जिससे

वह कभी भी ऐसा नहीं करेगा—सन्तोष पूर्वक दिवसको बितायगा । ऐसा ही श्रीअमितिगति आचार्य्यने सुभाषित-रत्नसन्दोहमें कहा हैः—

मैथुनं भजते मर्त्यो न दिवा यः कदाचन ।

दिवा मैथुननिर्मुक्तः स बुधैः परिकीर्तितः ॥८३८॥

अर्थ—जो श्रावक दिनमें कभी भी मैथुन सेवन नहीं करता है वह दिवामैथुनसे विरक्त श्रावक है—ऐसा कहा गया है ।

अध्याय तेरहवां ।

ब्रह्मचर्य्यप्रतिमा ।

इसके पहले छठी प्रतिमा तक तो रात्रिको स्वस्त्रीका सेवन सन्तानकी इच्छासे करता था । अब इसका परिणाम अति विरक्त भावको प्राप्त हुआ है । स्त्री संमोहको स्वानुभूतिके रमन और अपनी ब्रह्मचर्यामें व यों कहिये कि आत्मीक आनन्दके विलासमें विरोधी जान त्यागता है और निज अनुभूति—नारीके मननमें उद्योगी हो ब्रह्मचर्य्यप्रतिमामें अपना पद रखता है ।

मलवीजं मल योनिं गलन्मलं पूतगान्धिवीभत्सं ।

पश्यन्नङ्ग मनङ्गाद्विरमतियो ब्रह्मचारी सः ॥ १४३ ॥

(र० क०)

अर्थ—जो मलका बीजभूत, मलको उत्पन्न करनेवाले

मल प्रवाही दुर्गन्धयुक्त लज्जाजनक अंग (स्त्रीके देह) को देखता हुआ काम सेवनसे विरक्त होता है वह ब्रह्मचारी है।

सव्वेसिं इच्छीणं जो अहिलासं णकुव्वए णाणी ।
मण वयण काएणय वंभवई सो हवे सदउ ॥ ३८३ ॥
जो कय कारिय मोयण मणवय कायेण मेहुणं चयदि।
वंभ पवज्जारूढो वंभवई सो हवे सदउ ॥ ३८४ ॥

(स्वा० अ०)

भावार्थ–जो ज्ञानी मन, वचन, कायसे सर्व ही स्त्रियोंकी अभिलाषा नहीं करता है सो दयावान ब्रह्मव्रती है। जो कृत, कारित अनुमोदना तथा मन, वचन, कायसे नव प्रकार मैथुनको त्यागता है और ब्रह्मचर्यकी दीक्षामें आरूढ़ होता है सो ही ब्रह्मव्रती होता है।

संसार भय मापन्नो मैथुनं भजते न यः ।
सदा वैराग्य मारूढो ब्रह्मचारी स भण्यते ॥ ८३९ ॥

(अमितिगति)

अर्थ–जो श्रावक संसारसे भयभीत हो सदा वैराग्यमें चढ़ा हुआ रह कर मैथुनसेवन नहीं करता है उसे ब्रह्मचारी कहते हैं।

स्वामीकार्तिकेयकी संस्कृतटीकामें इस भांति वर्णन है:– अष्टादश शील सहस्रप्रकारेण शीलं पालयति–अर्थात् १८०००

भेदोंसे शीलव्रतको पालता है।

१८००० भेद वर्णन।

स्त्री ४ प्रकार—देवी, मानुषी, तिरश्ची, अचेतना (काष्ठाचित्रामादिकी) ४ स्त्री जातयःमनोवचन कायैः ताड़िताः कृत कारित अनुमत त्रिभिः करणैः गुणिताः ते पंचेन्द्रियैः हताः ते दशसंस्कारैः गुणिताः ते दशकामचेष्टाभिः गुणिताः १८०००० भेदाःभवंति—अर्थात् ४ प्रकारकी स्त्रियां होती हैं जिनके निमित्तसे मैथुन कर्म्मकी अभिलाषा हो सक्ती है। याने देवी, मनुष्यणी, पशुनी और अचेतन याने काठ, पत्थर, तसवीरकी मूर्ति आदि- इनको मन, बचन, कायसे गुणो तो १२ भेद हुए, इनको करना, कराना, अनुमोदना इन तीनसे गुणो तो ३६ भेद हुए, इनको पांचों इन्द्रियोंसे गुणो तो१८० भेद हुए, इनको१० प्रकारके संस्कार याने सिंगारोंसे गुणो तो १८०० भेद हुए, इनको १० प्रकारके काम चेष्टाओंसे गुणो तो १८००० भेद हुए।

मैथुनके कारण पांचों इन्द्रियोंमें चंचलता होती है, इससे पांचोंको शामिल किया तथा कामके उपजनेके १० संस्कार हैं। जैसे १. शरीरसंस्कार (शरीरकी शोभा करनी) २. श्रृंगार- सरागसेवा (रागसहित श्रृंगार रसकी सेवा करनी) ३. हास्यक्रीड़ा (हंसी ठट्टा करना) ४. संसर्गवांछा (संगतिकी इच्छा) ५. विषय संकल्प (विषय सेवनेका इरादा करना) ६. शरीरनिरीक्षण (स्त्रीकी देहको देखना)

७. शरीरमंडन (देहको आभूषण आदिकोंसे सजाना) ८. दान (स्नेह बढ़ानेको परको जो प्रिय वस्तु हो सो देना) ९. पूर्वरत–स्मरण (पहले जो काम सेवन किया हो उसको याद करना) १०. मनश्चिंता (मनमें मैथुनकी चिंता करनी) इन सबके वश हो कामी की १० तरहकी चेष्टाएं हो जाती हैं:–

१. चिंता (स्त्रीकी फिकर) २. दर्शनेच्छा (स्त्रीके देखनेकी चाहना) ३. दीर्घोच्छ्वास (बड़े २ श्वास आना जिनको आह कहते हैं) ४. शरीरेआर्ति (शरीरमें पीड़ा मालूम करनी) ५. शरीरदाह (शरीरमें जलन पैदा होनी) ६. मंदाग्नि (अग्नि मंद पड़ जानी जिससे भोजन न पचे न रुचे) ७. मूर्च्छा (बेहोशी हो जानी) ८. मदोन्मत्त (बावला होना) ९. प्राणसंदेह (अपने प्राण निकलनेका संदेह करना) १०. शुक्रमोचन (वीर्य्यका छूट जाना)

शीलव्रतकी रक्षाके वास्ते ९ बाड़ोंको बचाना चाहियेः–

१. स्त्रियोंके स्थानोंमें रहना, २. रुचि और प्रेमसे स्त्रियों का देखना, ३. मीठे वचनोंसे परस्पर भाषण करना, ४. पूर्व भोगोंको चिन्तवन करना, ५. गरिष्ठ भोजन मन भरके खाना, ६. शरीरको साफ करके सिंगार करना, ७. स्त्रीकी खाट व आसनपर सुखसे सोना, ८. कामवासनाकी कथाएं करना, ९. पेट भरके भोजन करना ।

इसीलिये श्रावकको योग्य है कि ब्रह्मचारी हो कर उदा-

सीन कपड़े पहरे। जैसे कपड़े स्त्रीसहित अवस्थामें पहनता था वे न पहने याने पगड़ी जामा आदि रंग विरंगी सर्व कपड़े छोड़े जिससे वैराग्य अपनेको व दूसरेको प्रगटे ऐसे सफेद व लाल कपड़े मोटे अल्प मूल्यके रुईके पहने। सरपर कन्टोप पहने या साफा बांधे जिनको देखते ही हरएक समझे कि यह स्त्रीके त्यागी हैं—उदासीन वस्त्र रक्खे। इसी प्रकार आभूषणादि भी कोई न पहरे। यदि द्रव्यादिके स्वामीपनेसे कुछ रखना पड़े तो जिससे श्रृंगार न हो ऐसे कोई अंगूठी आदि शरीरपर रक्खे। यदि घरमें ही रहे तो किसी एकान्त कमरेमें सोए बैठे जहां स्त्री वा बालक न जावे न उनके कलकल शब्द सुनाई पड़ें अथवा श्रीजिनमंदिरजीके निकट किसी धर्मशालामें सोए बैठे। सिर्फ घरमें रोटी खानेको आवे व व्यापार करता हो तो व्यापार कर आवे शेष समय धर्मस्थानमें वितावे। अपना काम पुत्रादिको सौंपता जावे और आप निराकुलताकी अभिलाषा करके निश्चय ब्रह्मचर्य्यकी भावनामें रत रहे, अध्यात्मीक ग्रन्थोंका प्रतिदिन स्वाध्याय करे, अध्यात्मीक चर्चामें अधिक उत्साही रहे, परोपकारमें व साधर्मी वात्सल्यमें दत्तचित्त रहे, गरिष्ठ कामोद्दीपक भोजन न करे; सादा, शुद्ध और थोड़ा भोजन करे, प्रयोजन सिवाय अधिक वार्तालाप न करे, मौन रखकर विवेक व भेदज्ञान बढ़ानेका अधिक यत्न करे। यदि चित्तमें विशेष विचार स्वपरकल्याण का हो जावे तो घरका कारवार पुत्रादिको सौंप आप अपने

लायक धन वस्त्रादि परिग्रहको रखके देशाटन करे, तीर्थयात्रा करे, धर्मोपदेश दे, जिनधर्मकी प्रभावना करे। सामर्थ्य होय तो अपने साथ एक दो नौकर रक्खे जिनसे रसोई आदिका काम लेवे यादि नौकर न रक्खे तो अपने आप अपने धनसे रसोई पानी करे। यादि कोई भक्ति पूर्वक स्नेहपूर्वक अपनेको निमंत्रण दे तो हर्ष पूर्वक स्वीकार कर ले और आप वृथा आरम्भिक हिंसासे बचे, परन्तु कभी भी अपने मुंहसे याचना न करे–याचना करना दीन कायर पुरुषोंका काम है। इसने तो जिन धर्माचरणरूपी सिंह वृत्तिका आलम्बन किया है। अतएव सदा स्वाधीन रहे–पराधीनताकी बेड़ीमें न पड़े। धर्म वृद्धि व दानके प्रचार हेतु यादि कोई भक्ति वश निमंत्रण करके संविभाग करावे तो उजर न करे। यदि घरमें ही रहे तब भी किसीके निमंत्रणको विना कारण अस्वीकार न करे। साधारण नियमकी अपेक्षा यह श्रावक अभी घरसे जुदा नहीं होता है, अपने कुलमें जो आजीविका प्रचलित है उनको भी नहीं त्यागता है, कुटुम्बका पोषण व पुत्रादिकोंका विवाहादि भी करता है, परन्तु अपने परिणाममें व्रतरूप रहता है और अपनी चेष्टा उदासीन रखता है। इस प्रतिमा वालेको नैष्ठिकब्रह्मचारी कहते हैं।

स्वामीकार्तिकेयकी संस्कृतटीका तथा पं० आशाधरकृत धर्मामृतश्रावकाचारमें ब्रह्मचारीके ५ भेद ये हैं:—

१—उपनय ब्रह्मचारिणः गणधर सूत्रधारिणः समभ्यस्तागमाः गृहधर्मानुष्ठायिनो भवन्ति—अर्थात् उपनयब्रह्मचारी जो जनेऊ लेकर आगमका अभ्यास करके गृहधर्ममें पड़ते हैं।

जो बालक ८ वर्षके उपनीति संस्कारके बाद गुरुकुलमें जा विद्याभ्यास करते हैं जिनका वर्णन पहले संस्कारोंमें हो चुका है उनको उपनयब्रह्मचारी कहते हैं।

२—अदीक्षा ब्रह्मचारिणः-वेषमंतरेण अभ्यस्तागमा गृहिधर्मनिरताः भवन्ति—अर्थात् जो विना किसी वेषको धारण किये आगमको पढ़के गृहधर्ममें लवलीन हों सो अदीक्षाब्रह्मचारी हैं।

३—अवलम्व ब्रह्मचारिणः—क्षुल्लकरूपेण आगमाभ्यस्ताः परिग्रहीतावासा भवान्ति—अर्थात् जो क्षुल्लकरूप धारण करके आगमका अभ्यास करें फिर घरको ग्रहण करे सो अवलम्बब्रह्मचारी हैं। मालूम यहां ऐसा होता है कि कोई क्षुल्लक विद्वान् हो उनके साथ रह कर विद्या पढ़नी हो तो कोई विद्यार्थी क्षुल्लकके समान साथ २ रहे फिर घरमें जानेकी इच्छासे घर जाय। उसका प्रयोजन केवल विद्याभ्यास करने ही का था। इससे वह लौट गया—ऐसेको अबलम्बब्रह्मचारी कहते हैं।

४—गूढब्रह्मचारिणः—कुमारश्रमणाःसंतः स्वीकृतागमाभ्यासाःबंधुभिः दुःसह परीषहैः आत्मना नृपतिभिर्वा निरस्तपरमेश्वर रूपा गृहवासरता भवान्ति—अर्थात् गूढ़ब्रह्मचारी कुमार अवस्था ही में मुनि होकर मुनियोंके संघमें विद्याभ्यास करे फिर अपने माता पिता बंधुओंद्वारा व कठिन क्षुधा, तृषा, शीतादिकी बाधा न सह

सकनेके कारण व आपसे ही वा राजाओंके द्वारा प्रेरित होने-पर मुनि भेषको त्याग कर घरवासमें रत होय । इस कथनसे भी यह अभिप्राय निकलता है कि कोई विद्यार्थी किसी विद्वान् मुनिके साथ विद्या प्राप्तिके लिये घरसे बाहर निकला हो और मुनि भेषमें रह विद्याभ्यास करी हो तथा उसके मनमें यह अभिलाषा भी हो कि मैं मुनि ही रहूं, परन्तु अशक्ति व प्रेरणा वश अपनी इच्छाको पूर्ण न कर सके, विद्यालाभके अनन्तर घर चला जावे सो गूढ़ब्रह्मचारी है ।

५—नैष्ठिक ब्रह्मचारिणः—समधिगताशिखालक्षित शिरोलिंगा गण-धर सूत्रोपलक्षित उरोलिंगाः शुक्ल रक्त वसन खंड कोपीन कटिलिंगाः—स्नातकाभिक्षाऽभिक्षावृत्तयः भवन्ति देवतार्चनपराः भवन्ति—अर्थात् जिनके मस्तकमें चोटी हो या सिरका चिन्ह हो, छातीमें जनेऊ हो, सफेद या लाल कपड़े हों, खंड व कोपीन करके चिन्हित हो कमर जिनकी, भिक्षावृत्ति और अभिक्षा-वृत्ति ऐसे दो प्रकारके नैष्ठिक होते हैं—यह देव पूजनमें तत्पर होते हैं ।

सातवीं श्रेणिके आचरणको पालनेवाला नैष्ठिकब्रह्मचारी कहलाता है । यह लाल या सफेद रंगके वस्त्रोंको उदासीन रूपमें पहन सक्ता है ।

ब्रह्मचारीको नित्य स्नानका नियम नहीं है। यदि श्रीजिनेन्द्रकी पूजन करे तो स्नान करे ही करे नहीं तो अपनी इच्छापर है, तौभी मल मलकर न नहावे केवल ग्लानि मेटे ।

सुखासनंच ताम्बूलं सूक्ष्म वस्त्र मलंकृतिः ।
मज्जनं दन्त काष्ठंच मोक्तव्यं ब्रह्मचारिणा ॥ ३४ ॥
(धर्मसंग्रह श्रा०)

भावार्थ–ब्रह्मचारी गद्दे आदि सुखमई आसनोंपर, जिनसे शरीरको वहुत आराम व आलस्य आ जावे, न सोबे न वैठे। ताम्बूल कभी न खावे, महीन कपड़े न पहरे, अलंकार न पहने, शरीरका मंजन न करे, काष्ठकी दंतौन न करे। ब्रह्मचर्य्य अवस्थाका धारक इस वर्तमान द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके अनुसार स्वपरकल्याण बहुत ही सुगमता और आरामसे कर सक्ता है।

इस समय जैन जातिमें सैकड़ों ऐसे ब्रह्मचारियोंकी आवश्यक्ता है जो एक स्थान ही में रह कर परोपकार करें, चाहे वे किसी भी संस्थाका काम करें–उसमें खूब मिहनत करें। जैसे किसी विद्यालय आदिमें व जिनवाणीकी सेवामें व पुस्तकोंको देखकर सारांश चुननेमें व नवीन ग्रन्थोंके रचनेमें व प्राचीन ग्रन्थोंके प्रकाशनेमें व गवर्नमेन्टकी लायब्रेरियोंमें बैठकर जैन धर्म सम्बन्धी क्या २ खोज की है उनको संग्रह करनेमें व किसी पत्रको दिन रात मिहनत कर उपयोगी लेखोंसे भरकर चलाने में, इत्यादि अनेक परोपकारके कार्य्य एक ही स्थानपर रह कर सक्ते हैं। तथा जो देशाटन करना चाहें वे ग्राम २ में धर्मोपदेश देने में, पाठशालाएं स्थापित करानेमें, सरस्वती भंडारोंकी सम्हाल करनेमें, दयाधर्मका प्रचार करनेमें, अजैनों-

को मांस मदिरा छुड़ाकर जैनधर्मका श्रद्धान करा देनेमें इत्यादि अनेक उत्तमोत्तम कार्योंमें अपने जीवनके अमूल्य समयको बितावें। पर यह ध्यानमें रहे कि इन ब्रह्मचारियोंको अपने नित्य नियम व संयममें शिथिल न होना चाहिये अर्थात् नित्य ही सादा शुद्ध भोजन नियमसे मौनपूर्वक लेनेमें, त्रिकाल सामायिक कमसे कम दो घड़ी व उसके अनुमान करनेमें, सचित्त वस्तु न खानेमें, प्रति अष्टमी व चौदसको उपवास करनेमें व १६ पहर धर्मध्यानसहित रह अष्टमी व चौदसको भी १ भुक्त करनेमें इत्यादि जो २ क्रियाएं सप्तम श्रेणीमें स्थितको करनी चाहिये उनके करनेमें कभी भी प्रमाद न करे। क्योंकि जो आत्मीक संयम और आत्मीक बलमें सावधान है वही दूसरोंको भी सुमार्गपर चला सक्ता है तथा अपने आपको शास्त्रोक्त आत्मोन्नतिका दृष्टान्त बना सक्ता है।

आज कल कोई२ऊपर कहे हुए चार प्रकारके ब्रह्मचारियोंमें से। किसीमें न होकर तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी भी क्रियाओंको न पालन कर अपनेको ब्रह्मचारी कहलाते हैं और ऐसी अवस्थामें भी रात्रिभोजन पान, अशुद्ध आहार, सचित्त भोजन करते हैं, नियमसे भोजनादि नहीं करते, न तीन काल सामायिक करते न अष्टमी चौदस उपवास करते, किन्तु मात्र स्त्री सेवनके त्यागको ही ब्रह्मचर्य मान अन्य सर्व क्रियाओंमें स्वच्छन्द रहते हैं—यह पृथा ठीक नहीं है—शास्त्रोक्त मार्ग

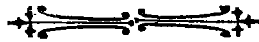
की लजानेवाली है। जिसको गृहस्थीमें फंसना है और अभी केवल विद्यार्थी हैं वही और आचरणोंमें ऐसा विचार न कर विद्या पढ़ने तक ब्रह्मचारी रहता है, परन्तु जिसने स्त्रीको होते हुए त्यागा है व स्त्रीके देहान्त होनेपर फिर स्त्री संसर्ग का त्याग किया है—वह नैष्ठिक ब्रह्मचारीके सिवाय अन्य संज्ञामें नहीं आसक्ता। अतएव स्वच्छन्दता छोड़ नियमानुसार ही वर्तना योग्य है।

ब्रह्मचर्यप्रतिमा तक प्रवृत्तिका मार्ग है इसके आगे निवृत्तिका मार्ग है। इसलिये भले प्रकार उद्यम करके स्वतंत्रताके साथ रहता हुआ यहां तक स्वपरकल्पाण कर सक्ता है। आगे कुछ परतंत्रता है जिसका वर्णन आगे देखिये।

इस प्रतिमा तक तो अपने हाथसे कुल काम सक्ता है याने अपनी आजीविकाका उपाय व भोजन आदिका बनाना तथा सवारी आदि पर चढ़कर इधर उधर जाना, परन्तु इसके आगे बहुतसी बातोंका परहेज हो जाता है। जब तक किसी श्रावकके चित्तमें प्रवृत्तिरूप रह परोपकार करने की उत्कट चेष्टा है तब तक तो वह इसी श्रेणीमें ही रह उद्यम करे और जब अंतरंगमें प्रवृत्तिरूप परोपकारकी भावना कम हो जावे और आत्मध्यानका विशेष अभ्यास बढ़ जावे तब इसके आगे कदम रक्खे। आजकल बहुधा लोग इसके आगेके दरजोंके नियम तो पालने लग जाते हैं, परन्तु आगेकी श्रेणीमें जितने ज्ञान, वैराग्य और आत्मध्या-

नके अभ्यासकी आवश्यक्ता होती है उनको नहीं रखते हैं। तो ऐसे व्यक्ति बाह्य संयम बहुत कष्टसे पालते हैं तथा जिनकी वैयावृत्त्यमें बहुधा श्रावक "गले पड़ेकी बात" खयाल करते हैं, परन्तु अपनी हार्दिक रुचि तथा श्रद्धाको नहीं दिखलाते। अतएव आगेकी श्रेणियां निवृत्तिमें तन्मयी आत्मानुभवी श्रावकके ही धारने योग्य हैं। यहांतक आप स्वतंत्र वृत्तिसे हरएक काम कर सक्ता है जिससे किसी स्थान व कालमें कोई आकुलता नहीं पैदा होती।

अध्याय चौदहवां।



आरम्भत्याग–प्रतिमा।

जब ग्रहस्थी श्रावक जो अभी तक ब्रह्मचर्यकी श्रेणीमें था देखता है कि अब मैंने अपने पुत्रादिकोंको सर्व व्यापार सौंप दिया है व मेरे घरमें मेरे पुत्र व उनकी वधू मुझे हर्षपूर्वक भोजन पान दे दिया करेंगे अथवा साधर्मी भाई मेरे भोजन पानके प्रबन्धमें सावधान रहेंगे तब वह इस आठवें नियमको धारण करता है–इसका स्वरूप इस भांति है:–

सेवाकृषि वाणिज्य प्रमुखादारम्भतो व्युपारमाति।
प्राणातिपात हेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः॥ १४४॥
(॥ र० क०)

भावार्थ–जो श्रावक जीवोंके घातके कारण सेवा, खेती,

व्यापार आदि आरम्भ कार्योंसे विरक्त होता है—वह आरम्भ-त्यागप्रतिमाका धारी है ।

जंकिंचि गिहारंभं वहुथोवं वा सया विवज्जेई ।
आरंभणिपत्तिमई सो अट्ठमु सावऊ भाणिऊ ॥

(वसुनंदि श्रा०)

भावार्थ—जो गृहका आरंभ थोड़ा हो या बहुत सदा ही न करे सो आरंभसे छूटा हुआ आठमां श्रावक होता है ।

निरारम्भः स विज्ञेयो मुनीन्द्रैर्हतकल्मषैः ।
कृपालुः सर्व जीवानां नारम्भं विदधातियः ॥८४०॥

(अ० ग०)

अर्थ—जो श्रावक सर्व जीवोंपर दयावान हो आरम्भ नहीं करता है वह निरारम्भी है ऐसा जानना चाहिये । यह बात दोषरहित मुनीद्रोंने कही है ।

आरंभ दो प्रकारके होते हैं:—एक तो व्यापारका आरंभ जैसे रोजगारके लिये तरह २ के उद्योग करना जिनसे बचानेपर भी हिंसा सर्वथा नहीं बच सकती ।

दूसरे घरके कामोंका आरंभ जैसे पानी भरना, चूल्हा जलाना, चक्कीमें पीसना, ऊखलीमें कूटना, घरको झाड़ना बुहारना, रसोईका बनाना इत्यादि । इन दोनों प्रकारोंके आरम्भोंको यह नहीं करता है; किन्तु धर्म कार्य्य निमित्त जो आरम्भ हैं उनका इसके त्याग नहीं है, उन धर्म कार्य्योंको बहुत

यत्नके साथ करेगा। जैसा कि कहा है:-

" न करोति न कारयति आरंभ विरतः श्रावकः कान् कृष्यादीन् कृषीसेवावाणिज्यादिव्यापारान् न पुनः स्नपनदानपूजाविधानादि, आरंभान् तेषां अंगिघाते अनंगत्वात् । पुत्रादीन् प्रति अनुमते कदाचित् निवारयितुम् अशक्यान् । मनोवाक्कायैः कृतकारिताभ्यामेव सावद्यारम्भो निवर्तते इत्यत्र तात्पर्यार्थः । "

(सा० ध०)

भावार्थ—खेती, सेवा, वाणिज्य आदि व्यापारोंको न करता है न कराता है; परन्तु अभिषेक, दान पूजा विधानादिके व्यापारका त्याग नहीं है। उनमें हिंसा होते हुए भी इसके त्याग नहीं है तथा अपने पुत्र आदिकोंको जब वे पूछें और आप उनको रोक नहीं सक्ता है तब सलाह दे सक्ता है । अभी इसको मन, वचन, कायसे आरंभको खुद करने तथा करानेका त्याग है, किन्तु अनुमति देनेका त्याग नहीं है—ऐसा प्रयोजन है।

किसी किसीका ऐसा मत है कि यह व्यापारादिको तो त्यागे, परन्तु रसोई बनाना, पानी भरना अपने लिये आवश्यक कामोंको अभी नहीं त्यागे; परन्तु ऐसा खुलासा कहीं देखनेमें नहीं आया । वसुनंदिश्रावकाचारके मतसे तो घरका कुछ भी आरम्भ नहीं कर सक्ता, परन्तु यदि वह अकेला हो और जीविकाका कोई उपाय न हो तो वह पापरहित कोई जीविका कर सक्ता है। जैसे आरंभरहित :चाकरी व

किसी कारीगरीका बनाना आदि—ऐसा मत पं० मेधावीका है। जैसेः—

कदाचिज्जविनाभावे निःसावद्यं करोत्यपि।
व्यापारं धर्मसापेक्षमारम्भविरतोऽपि वा॥ ३७॥ (धर्मसंग्रह)

भावार्थ—किसी वक्त जीविकाका उपाय न रहे तो पापरहित आरंभ धर्मकी अपेक्षाको लिये हुए कर भी सक्ता है। इस वचनसे यह सिद्ध होता है कि जब वह आजीविका कर सक्ता है तब यदि अकेला हो तो अपने लिये भोजन व पानका भी उपाय कर सके। तथापि यह अपवाद मार्ग दीखता है। राजमार्ग यही श्रेष्ठ है जो कोई आरंभ करे, करावे नहीं।

इस श्रेणीमें आकर श्रावक अपना व्यापार पुत्रादिकोंको तो सौंपता ही है, किन्तु अपनी सर्व परिग्रहका विभाग कर देता है। जिसको जो देना होता है दे देता है व दान करना होता है कर लेता है और अपने योग्य थोड़ा साधन वस्त्र आदि रख लेता है। सो भी उनको व्याजमें नहीं लगाता है। इस धनको वह समय २ पर धर्मकार्योंमें व परोपकारमें खर्च करता है।

अब वह विशेष उदास रह एकान्त सेवन करता है, अपने पुत्रादिक व अन्यसाधर्मी जो निमंत्रण दे जांय वहां जा जीम आता है। जो अपनेको त्याग आखड़ी हो सो बतला देता है। यदि किसी भी घरके काम काजकी व व्यापार

सम्बन्धी कोई सलाह पुत्रादिक पूछें तो सम्मतिरूप कह कर नफा नुकसान बता देवे-प्रेरणा न करे। यदि पुत्रादिक पूछें कि आज रसोईमें क्या २ बने तो वह केवल मात्र उन चीजोंको बतला देवे जिनसे शरीरको अनिष्ट होता हो कि यह मेरेको हानिकारक हैं, परन्तु अपने विषयकी लोलुपता वश किसी भी वस्तुको बनानेके लिये आज्ञा न करे। पानी प्राशुक लेकर थोड़े जलसे अपना आवश्यक काम करे। ७ मी श्रेणीमें स्नानक्रियां अधिक करता था यहां बहुत कम करता है। जब पूजनादि आरंभ करना हो तो थोड़े प्राशुक जलसे नहा लेवे। जीवहिंसा बचानेका बहुत उपाय रक्खे। मलमूत्र व जल आदि सूखी जमीनमें क्षेपण करे। सवारी-पर चढ़नेका त्याग करे, घोड़ा गाड़ी, बैलगाड़ी, पालकी आदि पर न चढ़े; क्योंकि ऐसा करनेसे जीवोंकी रक्षा नहीं कर सकता। रात्रिको प्राशुक भूमिपर किसी धर्म कार्य्य वश चले, यदि जीवोंके संचारकी शंका हो तो चांदनी व दीपकके प्रकाशमें चले। अपने हाथसे दीपक न जलावे, परन्तु स्वाध्यायादि धर्म कार्योंके लिये दीपक जला सक्ता है; क्योंकि धर्म सम्बन्धी आरम्भका त्याग नहीं है। कपड़े न धोवे, पंखा न करे। अपने कपड़े मैले हों तब पुत्र व कोई साधर्मी ले जाकर धोकर दे देवे तो ग्रहण कर ले। आप आज्ञा करके न धुल-वावे। ज्ञानानंदश्रावकाचारमें इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति कहा है:—

" इसके व्यापार व रसोई आदि आरम्भका त्याग है, दूसरेके व अपने घर न्यौता बुलाया जीमें " यद्यपि सवारीपर चढ़के चलनेका त्याग यहांसे शुरू होकर आगे सर्व स्थानोंमें रहता है तथापि किसी किसीकी यह सम्मति है कि जो ऐसी सवारी है कि वह एक नियत किये हुए मार्गपर ही अपने नियत कालपर विना हमारी प्रतीक्षाके जाती है याने उसपर यदि हम जाएं तब भी जावे, न जावें तब भी जावे तो ऐसी सवारीपर चढ़के जानेमें कोई हर्ज नहीं है, जैसे रेलगाड़ी व ट्रामगाड़ी। इनकी जानेकी लाइन एक ही मुकर्रर है उसीपर यह सदा चलती है, जिससे उस लाइनपर जीवोंका संचार नहीं रहता, दूसरे इनके जानेका नियम व समय नियत ही है खास किसी एकके लिये नहीं जाती है। इन दो कारणोंसे इनपर चढ़के देशसे देशान्तर जानेमें हर्ज नहीं है–ऐसा कहते हैं। यद्यपि वर्तमान स्थितिको देखकर यह युक्ति दी जाती है तथापि वैराग्यमय आत्मध्यानी विरक्तमार्गकी शोभा पगसे गमन करने में ही है–निराकुलता भी उसीमें विशेष है।

आरम्भत्यागी अभी घरको सर्वथा छोड़े नहीं है। अतः घरमें रह धर्म साधन करे, यदि तीर्थयात्रादि करनेकी अभिलाषा हो तो अपने पुत्र व साधर्मी भाईको साथ ले पगसे धीरे २ धर्मोपदेश करता, नीच ऊंच जैन व अजैन सर्वको धर्म मार्गपर लगाता चले। यदि घरमें न रहता हो और देशाटन भ्रमण ही करता हो तौ भी एक दो साधर्मियोंके साथ पगसे

घूमें और धर्मका प्रचार करे व ऐसे प्रान्तोंमें घूमें जहा श्रावकोंके घर दस बीस मीलसे अधिक दूरपर न हों। क्योंकि निवृत्तिके उत्सुकको निवृत्ति और निराकुलताके साथमें रह कर विशेष धर्म सेवन करना योग्य है।

रेल व ट्रामपर चढ़ना या नहीं इस विषयपर सर्वथा स्वीकारता व निषेध हम अपनी बुद्धिके अनुसार नहीं कर सक्ते, ज्ञानवान बिचार लेवें। तौभी हमारी सम्मतिमें आरम्भ त्यागीके लिये किसी भी सवारीपर चढ़ना योग्य नहीं है। उसकी विरक्तता उसको स्वतंत्र रहने ही की आज्ञा देती है।

अध्याय पन्द्रहवां।

परिग्रहत्याग प्रतिमा।

इस प्रतिमाका स्वरूप इस भांति है:-

बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्त्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्त परिग्रहाद्विरतः॥१४५॥
(र० क०)

भावार्थ—जो बाहरके दस प्रकारके परिग्रहोंमें ममताको छोड़ करके मोहरहित होता हुआ अपने स्वरूपमें ठहरता है, सन्तोषमें लीन होता है—वह परिचित्त परिग्रहसे विरक्त श्रावक है।

यहां वह अपनी शेष परिग्रहको विभाजित करके अपने पास कुछ पहनने ओढ़ने योग्य वस्त्र व खाने पीनेका पात्र रखकर और सर्वको त्याग देता है।

सागारधर्मामृतमें इस भांति कहा है:-

एवमुत्सृज्य सर्वस्वं मोहाभिभवहानये ।
किंचित्कालं गृहे तिष्ठे दौदास्यं भावयन्सुधीः ॥ ९२ ॥

गृहे तिष्ठति इति अनेन स्वांगाछादनार्थं वस्त्रमात्र धारणमत्तेः मूर्छा अस्य लक्षयति ते विना गृहावस्था अनुपपत्ते. ।

मुत्तूण वछमेत्तं परिग्गहंजो विवज्जाएसेसं ।
तच्छवि मुच्छं णकरादि जाणसो सावऊ णवमो ॥

भावार्थ-यहां मोहकी हानिके लिये सर्व परिग्रहको छोड़कर घरमें कुछ काल उदासीनताको भावता हुआ रहता है। ऐसा कहनेसे यह प्रयोजन है कि अपने अंगको ढकनेके लिये वस्त्र मात्र रखता है।

ज्ञानानंदश्रावकाचारमें इस भांति है:-"अपने पहरनेको धोती, पछेवड़ी पोत्या (सिरपर ढकनेको) आदि राखे है अवशेष त्यागे है।"

इस प्रतिमामें श्रावक पहलेसे अधिक उदासीन रहे। सामायिकादि ध्यानरूप कार्योंका विशेष उद्यम रक्खे। भोजन अपने पुत्रादि व अन्य साधर्मियोंद्वारा निमंत्रित होने पर करे, प्राशुक जल वर्ते और जो क्रिया आठमींमें कही जा चुकी है उन सर्वको पाले।

सुभाषितरत्नसन्दोहमें यह श्लोक है:—

संसार द्रुममूलेन किमनेन ममेतियः ।
निःशेषं त्यजतिग्रंथं निर्ग्रंथं तं विदुर्जिनाः ॥ ८८१ ॥

भावार्थ—यह परिग्रह संसार रूपी वृक्षका मूल है, इससे मेरा क्या प्रयोजन है—ऐसा समझकर जो सर्व परिग्रहको त्यागता है उसे परिग्रहत्याग प्रतिमावाला कहते हैं ।

प्रश्न—परिग्रहसे कार्य तो आठवीं श्रेणीमें ही नहीं लेता था यहां उसने विशेष क्या किया ?

उत्तर—यद्यपि ८ वीं श्रेणीमें आरम्भके कार्य करता कराता नहीं था और परिग्रहको इसने अपने पुत्रादिको सौंप दिया था, तौभी इसने अपने पास द्रव्य वा वस्त्रादि रख छोड़ा था इससे इसकी मूर्छा नहीं मिटी थी । ९ वीं श्रेणीमें अपनी सब मूर्छाको दूर करता है केवल बहुत ही जरूरी वस्त्र व भोजन खाने पीनेके लिये पात्र रख लेता है । यह श्रावक एकान्त घरमें व धर्मशालामें रह कर रात्रि दिन धर्म ध्यानकी चिन्ता रखता है ।

अध्याय सोलहवां ।



अनुमतित्याग—प्रतिमा ।

अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा ।

नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः
॥ १४६ ॥ (र० क०)

भावार्थ–जो आरंभमें, परिग्रहमें वा इस लोक सम्बन्धी कार्योंमें अनुमति कहिये सम्मति न देवे वह समान बुद्धिका धारक अनुमतित्यागी है।

सर्वदा पाप कार्येषु कुरुतेऽनुमतिं न यः।
तेनानुमननं युक्तं भण्यते बुद्धि शालिना ॥ ८४२ ॥
(अ० ग०)

अर्थ–जो सदा ही पापके कार्योंमें अपनी अनुमति नहीं करता है याने सलाह नहीं देता सो अनुमतित्यागी है।

" धनो पार्जन गृह हट्ट निर्माण पण प्रमुखानि तेषु गृहस्थकार्येषु अनुमननं मनसावाचा श्रद्धानं रुचिं न करोति। आहारादीनां आरंभाणाम् अनुमननात् विनिवृत्तो भवति। (स्वा० सं० टीका)

भावार्थ–धन पैदा करना, घर, बाजार, हवेली बनाना आदि गृहस्थीके कार्योंमें मनसे व वचनसे रुचि न करे अर्थात् सलाह न देवे तथा आहारादि आरंभ कार्योंमें भी सलाह न देवे। अर्थात् ९ मीं तक तो वह पुत्रादिके पूछनेपर घरके कामोंमें सलाह बतला देता था व अपने शरीरकी रक्षाके हेतु जिह्वा इन्द्रीके वश न हो आहार करनेकी भी सम्मति पूछनेपर बता देता था। अब यहां यह सब त्यागता है

पहले तो निमंत्रण हो जानेपर जाता था। अब खास भोज-

नके समय जो ले जाय वहां भोजन कर लेता है-पहलेसे निमंत्रण स्वीकार नहीं करता है।

चैत्यालयस्थः स्वाध्यायं कुर्यात् मध्यान्ह वंदनात्।
ऊर्ध्वम् आमंत्रितः सोऽद्यात् गृहेस्वस्य परस्य वा
॥ ३१ ॥ (सा० ध०)

१० मीं प्रतिमावाला चैत्यालयमें रह स्वाध्याय करे। मध्यान्हकी वन्दनाके ऊपर जो बुलावे अपने या दूसरेके घरमें जीम आवे।

नोट—इससे यह प्रयोजन समझमें नहीं आता कि दोपहर बाद भोजनको जावे। पर यह अभिप्राय है कि एक दिनके ४ भेद हैं प्रातःकाल, मध्यान्ह काल, अपरान्ह काल और सायंकाल। हरएक काल ३ घंटेका होता है इस कारण ९ बजेसे मध्यान्हकाल प्रारम्भ होता है सो वन्दना करके आहारको जावे और सामायिकके समय तक निबट ले।

इसके परिणाम पहिलेसे बहुत विरक्त हैं। घर सम्बन्धी कामोंकी सलाह देना भी नहीं चाहता है। घरके त्यागका उत्सुक है। शेष क्रियाएं पहलेकी भांति पालता है। वस्त्रके परिग्रहको भी यथाशक्ति घटाता है। शीत व उष्णकी बाधा सहनेका अभ्यास करता है, क्योंकि यह शीघ्र ही खंड वस्त्रधारी क्षुल्लक होनेका उत्सुक हो रहा है। यह अत्यन्त उदासीनताको चाहनेवाला एकान्त गृह व धर्मशाला व नगर बाहर रह कर अपने कर्मोंके नाशका उद्यम करता है।

अध्याय सत्रहवां।



उद्दिष्टत्याग–प्रतिमा।

क्षुल्लक और ऐलक।

गृहतो मुनिवनमित्त्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥ १४७ ॥

(र० क०)

भावार्थ–जो घरको बिलकुल छोड़कर घरसे मुनि महाराजके पास वनमें जाता है और गुरुके निकट व्रतोंका धारण करके भिक्षावृत्तिसे भोजन करता हुआ तप करता है सो खण्ड वस्त्रका धारी उत्कृष्ट श्रावक है।

स्वनिमित्तं त्रिधायेनकारितोऽनुमतःकृतः।
नाहारो गृह्यते पुंसा त्यक्तोद्दिष्टः सभण्यते ॥८४३॥

[सु० र०]

अर्थ–जो अपने निमित्त किया हुआ, कराया हुआ व अपनी अनुमति या सलाह या रुचिसे बनाया हुआ ऐसे तीन प्रकारका भोजन नहीं ग्रहण करता है सो उद्दिष्टआहार त्यागी श्रावक है।

“ पात्रं उद्देश्यनिर्मायतमुद्दिष्ठः स च असौ आहारः उद्दिष्टाहारः तस्मात् विरतः—

स्वोद्दिष्टापिंडोपधिशयनवरासन वसत्यादेः विरतः य अन्नपान स्वाद्य खाद्यादिकं भक्षयति भिक्षाचरणेन मन वचन काय कृतकारित अनुमोदना रहितः। मह्यं अन्नं देहि इति आहार प्रार्थनार्थे द्वारोद्घाटनं शब्दज्ञापनं इत्यादि प्रार्थना रहितं, मकारत्रयरहितं चर्मजलघृततैल रामवादिभिः अस्पृष्ठं रात्रावाकृतं चांडाल नीच लोक मार्जार शुनकादि स्पर्श रहितं यति योग्यं भोज्यं। एकादशके स्थाने ह्युत्कृष्ठः श्रावको भवेत् द्विविधः वस्त्रैकधरः प्रथमः कोपीन परिग्रहोऽन्यस्तु। कोपीनोऽसौ रात्रि प्रतिमायोगं करोति नियमेन लोचं पिच्छं धृत्वा भुंक्ते हि उपविश्य पाणिपुटे।" (स्वा० का० सं०टीका)

किसी पात्रके लिये भोजन बनाना है इस उद्देशसे बनाया हुआ भोजन उद्दिष्टआहार है। इस प्रकारके आहारसे जो विरक्त हो सो उद्दिष्टत्यागी है अर्थात् जो बुलाया हुआ किसी खास जगह भोजन करने न जावे। भोजनके समय जावे जो भक्तिसे पड़गाहें वहीं भोजन कर ले।

यह श्रावक खास उसीके लिये वनाया हुआ भोजन, शय्या, आसन, बस्ती आदिसे विरक्त रहता है। अन्न, पान, स्वाद्य, खाद्य चारों ही प्रकारका भोजन भिक्षारूपसे करता है। मन, वचन, कायसे भोजन बनाता नहीं, वनवाता नहीं, न बने हुएकी अनुमोदना करता है। जो श्रावकने खास अपने लिये वनाया है उसीमें से विभागरूप जो वह भक्तिसे दे उसे लेता है। मुझे अन्न दो ऐसी अहारके लिये प्रार्थना नहीं करता, न गृहस्थीके बंद दरवाजेको खोलता है, न भोजनके लिये

शब्द करके पुकारता है। मद्य, मांस, मधुरहित चर्ममें रक्खा जल, घी, तेल आदिसे विना छुआ हुआ, रात्रिको न बनाया हुआ, चाडांल, नीच आदमी, बिल्ली, कुत्ता आदिसे नहीं स्पर्श किया हुआ मुनियोंके योग्य भोजनको ग्रहण करता है। यह उत्कृष्टश्रावक दो प्रकारका होता है। प्रथम एक ही वस्त्रका धारी द्वितीय केवल कोपीन मात्रधारी। कोपीन-धारी रात्रिको मौनसहित प्रतिमा–योग धारे, कायोत्सर्ग करे। नियमसे अपने केशोंका लोंच करे, मोर पीछी रक्खे तथा अपने हाथमें ही ग्रास रखाकर वैठ कर खावे। प्रथमको क्षुल्लक और दूसरेको ऐलक कहते हैं।

स द्वेधा प्रथमः स्मश्रु मूर्धजान् अनापयेत्।
सितकौपीन संव्यानः कर्तरया वा क्षुरेणवा ॥ ३८ ॥
स्थानादिषु प्रतिलिषेन् मृदूपकरणेन सः।
कुर्यादेव चतुष्पर्व्यामुपवासं चतुर्विधम् ॥ ३९ ॥
स्वयं समुपविष्ठोऽद्यात् पाणिपात्रेऽथ भाजने।
स श्रावक गृहं गत्त्वा पात्र पाणिस्तदंगणे ॥ ४० ॥
स्थित्त्वा भिक्षां धर्मलाभं भणित्त्वा प्रार्थयेत् वा।
मौनेन दर्शयित्त्वांऽगम् लाभालाभे समोऽचिरात् ॥ ४१ ॥
निर्गत्यान्यद् गृहं गच्छेत भिक्षोद्युक्तस्तु केनचित्।
भोजनायार्थितोऽद्यात् तद्युक्त्वायद् भिक्षितं मनाक् ॥ ४२ ॥
प्रार्थयेतान्यथां भिक्षां यावत्स्वोदर पूरणीम्।
लभतेप्रासु यत्र अम्भस्तत्र संशोध्य तां चरेत् ॥ ४३ ॥

आकाक्षन् संयमं भिक्षा पात्र प्रक्षालनादिषु ।
स्वयं यतेत चादर्पः परथाऽसंयमो महान् ॥ ४४ ॥
यस्त्वेक भिक्षा नियमो गत्वाऽद्यादनु मन्यसौ ।
भुक्त्यभावे पुनःकुर्यादुपवास मवश्यकम् ॥ ४६ ॥
तद्वत्द्वितीयः किन्त्वार्य संज्ञो लुञ्चत्यसौ कचान् ।
कौपीन मात्र युग्धत्ते यति वत्प्रतिभासनम् ॥ ४८ ॥
स्वपाणि पात्र एवात्ति संशोध्यान्येन योजितम् ।
इच्छाकारं समाचारं मिथः सर्वे तुकुर्वते (सा० ध०)

भावार्थ—ग्यारह प्रतिमाधारी दो प्रकारका होता है। पहला क्षुल्लक जो सफेद कोपीन और उत्तरवस्त्र याने खंड वस्त्र रक्खे तथा अपने मूंछ, डाढ़ी और सिरके केशोंका लोंच कतरनी या छुरेसे करावे। कोमल उपकरण याने पीछीसे स्थान आदिको झाड़कर बैठे तथा मासमें चार पर्वोके दिन चार प्रकार आहारको त्याग उपवास करे। स्वयं बैठ हाथमें रखवाकर या वर्तनमें लेकर भोजन करे। क्षुल्लक श्रावक हाथमें पात्र लिये हुए गृहस्थीके घरमें आंगन तक जावे और खड़ा होकर "धर्मलाभ" कहे, मौनसे अपना अंग दिखावे। यदि वे पड़गाह लें तो ठीक नहीं तो लाभ व अलाभमें समभाव रखके दूसरे घर जावे। अपने पास पानीके पात्रके सिवाय १ भोजन लेनेका भी पात्र होता है उसमें जो भोजन कोई श्रावक दान कर दे उसे ले दूसरे घरमें जावे, जहांतक उदर पूर्ति होने तक

न मिले वहांतक जावे फिर किसी घरमें प्राशुक जल लेकर वहां भोजन कर लेवे और भिक्षाके पात्रको आप ही धो लेवे। मद नहीं करे, नहीं तो बड़ा असंयम होवे। जिस क्षुल्लकको एक ही घरमें भिक्षाका नियम हो वह एक ही घरमें जो मिले सो भोजन कर ले और जो न मिले सो अवश्य उपवास करे।

दूसरा भेद ऐलकका है सो भी पहलेकी भांति क्रिया करे, किन्तु उसमें विशेष यह है कि यह अपने केशोंका लोंच आप ही करे केवल कोपीन मात्र धरे। यतीके समान आप प्रकाशमान रहे, अपने हाथमें ही नियमसे भोजन खावे जो दूसरेने विचार पूर्वक हाथमें रख दिया हो तथा यह श्रावक परस्पर इच्छाकार करे इसको कई घरसे लेनेका निषेध है, क्योंकि ऐलकके पास जलका पात्र तो होता है, परन्तु भोजन रखनेका पात्र नहीं होता।

वसुनंदिश्रावकाचारमें भी ऊपरकी भांति ही कथन है। ज्ञानानंदश्रावकाचारमें इस भांति कथन है:-

"उत्कृष्टश्रावक बुलाया नहीं जीमें, कमंडल, पीछी पछे बड़ी लगोटी स्पर्श शूद्र लोहेका शेष पीतल आदि धातुका और पांच घरां सूं भोजन लेना। अंतके घर पानी ले वहां बैठ भोजन करे। कातरया करावे, ऐलक कमंडल पीछी कर पात्र आहार, लोंच करे। लाल लंगोटी राखे है और लंगोट चाहिये सो भी लेय, श्रावकके घर कहे" अक्षयदान नगर, मंदिर व मठ वाह्यमें वसे है।

श्रीपार्श्वनाथपुराणमें इस भांति लेख है:-

" जो गुरु निकट जायव्रत गहै, घर तज मठ मंडपमें रहे ।
एक वसन तन पीछी साथ, कटि कोपीन कमंडल साथ ।
भिक्षा भाजन राखे पास, चारों परब करै उपवास ।
ले उदंड भोजन निर्दोष, लाभ अलाभ राग ना रोष ।
उचित काल कतरावै केश, डाढ़ी मूछ न राखे लेश ।
तप बिधान आगम अभ्यास, शक्ति समान करे गुरु पास ।
यह क्षुल्लक श्रावककी रीति, दूजो ऐलक अधिक पुनीत ।
जाके एक कमर कोपीन, हाथ कमंडल पीछी लीन ।
विधिसे खड़ा लेहि आहार, पानपात्र आगम अनुसार ।
करे केश लुंचन अति धीर, शीत घाम सब सहै शरीर ।
सोरठा-पान पात्र आहार, करै जलांजुलि जोड़ मुनि ।
खड़ो रहो तिहवार, भक्तिरहित भोजन तजै ।
दोहा-एक हाथपर ग्रास धर, एक हाथमें लेहि ।
श्रावकके घर आयके ऐलक असन करेय ।

क्षुल्लकका खुलासा कर्तव्य ।

क्षुल्लक एक लंगोटी और १ खंड वस्त्र रक्खे जिससे सर्व शरीरको ढक न सके ताकि किसी अंगको खुला रखते हुए डांस, मच्छर, शर्दी गर्मीकी परीसहोंको सहनेका अभ्यास करे । जलके लिये कमंडल व एक पात्र भोजनके लिये रक्खे तथा मोरके परोंकी पीछी रक्खे, क्योंकि मोरके बाल ऐसे कोमल होते हैं कि रंचमात्र भी हिंसा नहीं होती ।

भोजनके समय उदास रूप संतोषके साथ निकले। तब यह प्रतिज्ञा करे कि मैं किस २ मुहल्लेमें भोजनार्थ घूमूंगा व कई घरसे थोड़ा २ भोजन लेकर जीमूं गा व एक ही घरमें जो मिलेगा सो ले लूंगा। ऐसा विचार कर श्रावकके घरके द्वार-पर व आंगन तक आ जावे जहां सब कोई जा सक्ते हैं। यदि श्रावक देखते ही पड़गाह लेवे और आहार पानी शुद्ध कहे तो श्रावकके साथ होकर घरके भीतर चला जावे, जो सम्मुख न खड़ा हो तो कार्योत्सर्ग करके "धर्म लाभ" कहे। यदि इतनेमें कोई पड़गाह ले तो चला जावे नहीं तो लौटकर दूसरेके घर जावे। दूसरे घरमें इसी भांति करे। यदि वह पड़गाह ले और पग धुवाय चौकेमें भक्तिसहित ले जाय और बैठावे तो आप सन्तोषसहित आहार कर ले तथा यदि एक ही घर जीम लेनेका नियम न हो तो पात्रमें जो श्रावक डाल दे उसे ले और दूसरे घर जावे। यहां यह मालूम होता है कि वह पात्र ढका हुआ होना चाहिये ताकि उसमें से कुछ गिर न पड़े और फिर दूसरे घरमें जावे जो पात्रमें मिले उसे ले तीसरे घरमें जावे। जब भोजनके योग्य प्राप्त हो जावे तो किसी श्रावकके यहां केवल प्राशुक जल ले बैठ कर भोजन कर ले और अपने पात्रको अपने ही हाथसे मांज कर धो लेवे। कई घरोंकी प्रवृति इसीलिये मालूम होती है कि गरीबसे गरीब दातार भी दान कर सके और उसको उद्दिष्टका दोष न लगे। परन्तु वर्तमानमें एक घर ही जीम-

नेकी प्रवृत्ति दूसरेकी अपेक्षा अधिक रुचिकर मालूम होती है अथवा किसी २ का ऐसा भी कहना है कि जो पांच घर एक ही सीधमें हों तो इस प्रकार पांचोंके यहांसे भोजन ले आहार कर ले और फिर निवृत्त हो जावे । क्षुल्लक त्रिकाल सामायिक व प्रोषधोपवास अवश्य करे । अधिक वैराग्य और आत्मज्ञानकी उत्कंठा रखकर उद्यम करे ।

ऐलकका कर्तव्य ।

क्षुल्लकके समान सामायिक व प्रोषधोपवास करे । रात्रिको मौन रख ध्यानमें लीन रहे । एक लंगोटी मात्र वस्त्र व पीछी कमंडल रक्खे । भोजनके समय मुहल्लोंकी व घरोंकी प्रतिज्ञा कर जावे । यदि कोई जाते ही पड़गाह ले तो ठीक नहीं तो कायोत्सर्ग करके अक्षयदान कहे, इतनेमें वह श्रावक पड़गाह ले तो जाकर चौकेमें बैठ व खड़े हो हाथमें ही भोजन करे । अर्थात् श्रावक एक हाथमें रखता जाय और वह दूसरे हाथसे लेता जावे । अपने सिर, डाढ़ी और मूछके केशोंका आप ही लोंच करे । विशेष ध्यान स्वाध्यायमें लीन रहे ।

क्षुल्लक तथा ऐलकके लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह रोज व्रतसंख्यान तपके अभिप्रायसे ऐसी अटपटी आखड़ी लेवे जिससे गृहस्थ लोग खासकर अनेक प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह कर द्वारपर खड़े हो बाट देखें । जब कभी अपने शरीरकी ऐसी स्थिति देखे कि आज आहार नहीं प्राप्त होगा तौ भी मेरे ध्यान व स्वाध्यायमें कोई आकुलता न

होगी तथा आज मुझे अपना अंतरायकर्म अजमाना है तो कोई अटपटी आखड़ी रख ले, जैसे कि पड़गाहनेवाला ऐसी स्थितिमें प्राप्त होगा तो आहार लेंगे अन्यथा नहीं। यदि प्रतिज्ञाके समान प्राप्त न हो तो आहार न लेवे और अपने ध्यान स्वाध्यायके स्थानको लौट जावे। नियम रूपसे रोज अटपटी आखड़ी क्षुल्लक तथा ऐलकको करना चाहिये यह बात कहीं देखनेमें नहीं आई, किन्तु प्रायः साधारण रीतिसे ही अनुद्दिष्ट भोजन लेकर धर्मध्यान करनेकी आज्ञा पाई गई है।

अध्याय अठारहवां।



विवाहके पश्चात् आवश्यक गृहस्थके संस्कार।

गत अध्यायोंमें गृहस्थश्रावक किस प्रकार अपने धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थोंको भले प्रकार अपनी कषायोंके अनुसार सम्पादन करता हुआ मोक्ष पुरुषार्थका उद्यम करे और अंतमें ऐलक तक अभ्यास करता हुआ मुनिपनेके योग्य हो यह बात वर्णन कर दी गई है। जो गृहस्थीका पुत्र गुरुकुलमें विद्याभ्यासके लिये गया था वह जब विद्या अच्छी तरह प्राप्त कर अपने घरमें लौटता है तब मातापिता उसको गृहस्थ धर्मके पालनेके योग्य अभिलाषी जानकर उसका विवाह करते हैं। उसके पश्चात् वह गृहस्थमें किस प्रकार

रहे और क्या २ आवश्यक संस्कार उसके लिये हैं इनका वर्णन आगे किया जाता है।

नं० १८ वर्णलाभक्रिया–जब यह विवाह करके आ जाता है तब संतानके अर्थ ही ऋतु समयमें काम सेवन करता है। और अपने कर्तव्यको सीखता है। जब इसकी स्त्री घरके काम काजमें चतुर हो जाती है और यह पुत्र अपने गृहस्थ योग्य सर्व व्यवहारमें प्रवीण हो जाता है और अपने पितासे स्वतंत्र रह आजीविका कर सक्ता है तब यह वर्णलाभ क्रिया की जाती है जिससे यह स्वतंत्रताके साथमें अपने पुरुषार्थोंकी सिद्धि कर सके। जब तक इस योग्य नहीं होता है तबतक पिताके ही साथ एक ही घरमें रहता है। जब सब तरह योग्य हो जाता है तब पिता अपनी इच्छासे इसको स्वतंत्रता दे देते हैं। उस समय मंत्र पूर्वक यह क्रिया की जाती है। पिता अपने पुत्रको अच्छी उन्नति करनेके लिये यह स्वतंत्रता देता है न बिलकुल छूट जानेके लिये। इनका पिता व पुत्रका सम्बन्ध नहीं छूटता है। इस क्रियाकी आवश्यक्तामें महापुराणमें श्रीजिनसेनाचार्य्य इस भांति कहते हैं:–

" ऊढ भार्योऽप्ययं तावदऽस्वतंत्रोगुरोर्गृहे ।

ततःस्वातन्त्र्य सिद्धयर्थं वर्णलाभोऽस्यवर्णितः १३७॥

अर्थात्–जब तक इसकी वधू ऊढ़ा है अर्थात् विज्ञ (तजुर्बेकार) नहीं है तब तक यह अपने पिता ही के घरमें माता पिताके

पिताकी जायदादको ही खाते और स्वयं उद्यम करके परिश्रम नहीं करते हैं वे आलसी, सुस्त, विषयानुरागी, मदान्ध और अधर्मी बन जाते हैं और अपने मनुष्य-जन्मको वृथा गमा देते हैं। अतएव यह १८ वां संस्कार मनुष्यकी उन्नतिके लिये अतिशय उपयोगी है।

१९. कुलचर्याक्रिया-इस प्रकार स्वतंत्रतासे रहता हुआ वह गृहस्थी होकर गृहस्थके कुलका आचरण करे अर्थात् नीचे लिखे षट्कर्म साधन करे:—

१. इज्या-श्रीअरहंतकी नित्य पूजा करे।

२. वार्ता-आजीविका अपने वर्णके योग्य ६ प्रकार करे याने असि, मसि, व्यापार, कृषि, शिल्प व पशु-पालन या विद्या। ब्राह्मणके लिये कोई आजीविका नहीं है। उसको जिन-पूजन व जिन-शास्त्रोंका पठन पाठन करना ही योग्य है और यही उसका मुख्य कार्य्य है।

३. दत्ति-चार प्रकारका दान करे, दयासे सबका उपकार करे, भक्तिसे पात्रोंको देवे, अपने समान जैनियोंको औषधि, शास्त्र,अभय, भूमि, सुवर्ण इत्यादि भी देवे, जिसमें वे निराकुल हो गृहस्थके कर्तव्य कर सकें।

४. स्वाध्याय-शास्त्रोंको पढ़े, सुने व सुनावे।

५. संयम-प्राणसंयम और इन्द्रीसंयम पाले, जितेन्द्री रहे।

६. तप-ध्यान व उपवास व्रत आदिक कार्य्य करे।

२० गृहीसिता (गृहस्थाचार्यकी क्रिया)–जब यह गृहस्थी अपने उद्योगसे धन, धर्म, यशको बढ़ा ले तथा लोकमान्यता प्राप्त करले और यह देखे कि मेरेमें अन्य गृहस्थियोंको गृहस्थधर्ममें चलानेकी योग्यता है तब यह गृहस्थाचार्यके पदको गृहण करे। उस समय प्रथमकी भांति पूजा आदि होकर यह मुख्य होवे और तबसे इसको श्रावक लोग वर्णोत्तम, महीदेव, सुश्रुत, द्विजसत्तम, निस्तारक, ग्रामपती, मान योग्य ऐसे नामोंसे सत्कार करें। तबसे यह अन्य गृहस्थियोंके गर्भाधानादि संस्कारोंको करावे, उनकी प्रतिपालना करे, न्याय और धर्ममें औरोंसे अधिक सूक्ष्मतासे बर्ते। अपने शुभाचरणसे अपना प्रभाव प्रगटावे। आजकल पंचायतियोंमें बहुधा चौधरी, सेठ, मुखिया व पंच होते हैं। ऐसे चौधरी, सेठ व मुखिया पहले गृहस्थाचार्य्य ही हुआ करते थे। इनकी सर्व व्यवहार क्रिया औरोंसे उत्तम और बढ़ कर रहती थीं।

अनन्यसदृशैरेभिः श्रुतवृत्तिक्रियादिभिः ।
स्वमुन्नतिं नयन्नेष तदाऽर्हति गृहीशिताम् ॥१४७॥

भावार्थ–जब गृहस्थीमें शास्त्रज्ञान, आजीविका व धर्मादि क्रियाकी ऐसी उन्नति हो जाती है जो दूसरोंमें न हो। तब यह गृहीशिताक्रियाके योग्य होता है। अब भी यह रिवाज है कि चौधरियोंके विना विवाहादि कार्य नहीं होते, परन्तु अबके चौधरी केवल रीति रिवाज पुरानी लकीरके अनुसार

जानते हैं; परन्तु पूजा, पाठादि संस्कार नहीं करा सक्ते और न अपना प्रभाव जमा सक्ते हैं । अतएव समाजको शास्त्रानुसार धर्मके मार्गपर चलानेके लिये गृहीशिताक्रियाको प्राप्त ऐसे प्रभावशाली गृहस्थाचार्य्योंकी आवश्यक्ता है ।

हमारे भाइयोंको इस सनातनके मार्गको देख इसके पालनेके लिये तुरन्त उत्साही हो जाना चाहिये; क्योंकि निराकुलताका यही मार्ग है । जब गृहस्थी कुलचर्य्यामें प्रवीण हो यश और धर्म बढ़ा ले तब अन्य गृहस्थियोंका अधिपति हो उनको कुमार्गसे बचावे और सुमार्गपर चलावे।

२१. प्रशांतता क्रिया–यह गृहस्थी जैसे २ उन्नति करता जाता है वैसे २ प्रतिमा सम्बन्धी क्रियाओंको दृढ़ करता जाता है । जब इस गृहस्थाचार्यके चित्तमें पूर्ण शांति स्थापनेकी इच्छा होती है तब यह अपने समान समर्थ जो पुत्र उसको गृहस्थपनेका सारा भार दे देता है और आप शांतताका आश्रय कर विषयोंसे विरक्त रह स्वाध्याय व उपवाससहित घरमें ही रह अपना जीवन विताता है । इस कथनसे यह विदित होता है कि यह धीरे २ आरंभका त्याग करता है और ८ वीं प्रतिमाके नियम पालने लग जाता है ।

२२. गृहत्याग क्रिया–जब गृहस्थीको पुत्र पौत्रादिकोंके व धनादि परिग्रहके सम्बन्धमें रहना भी अपनी आत्मोन्नतिमें बाधक मालूम होता है तब यह सर्व साधर्मी जनोंको बुलाकर

उनके सामने पूर्वोक्त पूजा आदि कर पुत्रको नीचे लिखे भांति शिक्षा दे व स्वयं दानादि धर्ममें अपने द्रव्यका विभाग कर घरको त्याग देता है।

"कुलक्रम त्वया तात सम्पाल्योऽस्मत् परोक्षतः।
त्रिधा कृतं च नो द्रव्यं त्वयेत्थं विनियोज्यताम्॥ १९३॥
एकांशो धर्मकार्येऽतो द्वितीयः स्वगृहव्यये।
तृतीयः संविभागाय भवेत्त्वत्सहजन्मनाम्॥ १९४॥
पुत्र्यश्चसंविभागार्हाः समं पुत्रैः समांशकैः।
त्वं तु भूत्वा कुलज्येष्ठः सन्तर्ति नोऽनुपालय॥ १९५॥
श्रुतवृत्ति क्रिया मंत्र विधिज्ञस्त्वमतन्द्रितः।
प्रपालय कुलाम्नायं गुरुं देवांश्च पूजयन्॥ १९६॥
इत्येवमनुशिष्य स्वं ज्येष्ठं सूनुमनाकुलः
ततोदीक्षां समादातुं द्विजः स्व गृहमुत्सृजेत्॥ १९७॥

भावार्थ–हे पुत्र! हमारे कुलकी रीतिको हमारे पीछे भले प्रकार पालियो तथा मैंने जो अपने द्रव्यके तीन भाग कर दिये हैं उसी प्रमाण उसका उपयोग करियो। इन तीन भागोंमें एक भाग तो धर्म कार्य्यके लिये, दूसरा भाग घर खर्चके लिये और तीसरा भाग तुम्हारे सहजन्मोंके लिये है। पुत्रोंके विभागके समान पुत्रियोंका भी हिस्सा है अर्थात् सर्व पुत्र पुत्रियोंको बराबर २ द्रव्यका भाग करना योग्य है। तू कुलमें बड़ा है–इससे सर्वकी रक्षा कर; तू शास्त्र, सदाचार क्रिया, मंत्र व विधिको जाननेवाला है, इससे आलस्य त्याग

कर कुलकी रीतिकी रक्षा कर और अपने इष्टदेव और गुरुकी पूजा कर। इस तरह अपने बड़े पुत्रको शिक्षा दे क्रम २ से आकुलता छोड़ कर दीक्षा लेनेके अभिप्रायसे घरको त्याग करे।

२३. दीक्षाद्यक्रिया—ऊपरके कथनसे विदित होता है कि गृहस्थी परिग्रहका त्याग कर घरसे अलग मठ व धर्मशालामें रहे फिर अनुमतिको भी त्यागे। इस तरह ९ मीं और १० मीं प्रतिमाके व्रतोंको पालता हुआ दीक्षाद्यक्रिया धारण करे अर्थात् क्षुल्लक और ऐलकके व्रत पाले। मुनिकी दीक्षाके पहलेकी यह ११ मीं प्रतिमाकी क्रिया है, इससे इसको दीक्षाद्यक्रिया कहते हैं। क्योंकि जो विरक्त पुरुष दीक्षाद्यक्रियामें अभ्यास कर लेगा वही मुनिव्रतको धार कर सुगमतासे पाल सकेगा।

२४. जिनरूपताक्रिया-अर्थात् नग्न हो मुनिका रूप धारण करे।

त्यक्तचेलादि सङ्गस्य जैनीं दीक्षामुपेयुषः।
धारणं जातरूपस्य यत्तत्स्याज्जिनरूपता ॥ १६० ॥

भावार्थ—सर्व वस्त्र आदि परिग्रहको छोड़ कर मुनि दीक्षाको ले यथा जात अर्थात् जिस रूपमें जन्म लिया था उस रूपको धारण कर जिनरूपता अर्थात् नग्न दिगम्बरत्वको प्राप्त होवे।

२५. मौनाध्ययन व तत्त्वाक्रिया।

कृत दीक्षोपवासस्य प्रवृत्ते पारणा विधौ।
मौनाध्ययन वृत्तित्व मिष्टमाश्रुत निष्ठिते ॥ १६२ ॥

भावार्थ—दीक्षा लेनेके दिन उपवास करके पारणाकी विधि मुनिके समान करे तथा मौन धर विनयवान हो निर्मल मन, वचन, कायसे गुरुके समीप सकलश्रुत पढ़े। शास्त्र समाप्ति तक मौनसहित पढ़े, आप परके उपदेशमें न प्रवर्ते। यहां तक की क्रियाओंका जानना गृहस्थीके लिये बहुत जरुरी है, इसलिये इनका खुलासा लिखा गया है।

आगे २८ क्रियाएं मुनि दीक्षासे लेकर सिद्ध अवस्था प्राप्ति करने तककी हैं जिनका हाल इस पुस्तकमें लिखना आवश्यक नहीं समझा गया। जिनको देखना हो आदिपुराणके ३८ वें पर्वको पढ़ें।

अध्याय उन्नीसवां।



संस्कारोंका असर।

हरएक वस्तु उत्तम २ निमित्तोंको पाकर शोभनीक और उपयोगी अवस्थाको प्राप्त होती है। जैसे खानसे निकला हुआ ही एक माणिक, नीलमका पत्थर प्रवीण कारीगर और घिसनेके लिये योग्य शान व मसालेका सम्बन्ध पानेपर बहुत ही मूल्यवान और उपयोगी हो जाता है व ईंट, पत्थर, लकड़ी, चूना आदि मसाला प्रवीण शिल्पीका संयोग पाकर १ अच्छे शोभनीक महलकी सूरतमें बदल जाता है। इसी तरह जिस मनुष्य-गतिमें ये बालक व बालिकाएं आते हैं

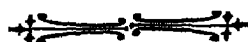
उस समयके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे वे अजान होते हैं, उनकी आत्मामें शक्ति व्यक्तरूप होनेको भी सन्मुख होती है, जिस कार्य्यके लिये गर्भ अवस्थासे ही उपयोगी निमित्तोंका मिलाना जरूरी है । यदि योग्य निमित्त मिलें तो ये बालक व बालिकाएं बहुत ही उपयोगी पुरुष और स्त्रीके भावको प्राप्त हो जाते हैं ।

गर्भावस्थामें गर्भस्थानमें जिस समय जीव आता है उस समय वह एक पिंडके भीतर प्राप्त होता है । यह पिंड माताके रुधिर और पिताके वीर्य्यसे बनता है । इस पिंडका सम्बन्ध होना ही पहला संस्कार है । यदि माता पिता मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्यके त्यागी, सुआचरणी, धर्मबुद्धि, संतोषी, परिमित आहारी, शुद्ध भोजनपानके कर्त्ता और शुद्ध विचारोंके धारक होते हैं तो उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तिका असर भी उनके रुधिर और वीर्य्यमें वैसा ही उत्तम पड़ता है और इन्हींसे बने हुए पिंडका असर उस बालकके पौद्गलिक शरीरपर पड़ता है ।

पहले जो गर्भाधानादि संस्कार वर्णन किये गये हैं वे गर्भके समयसे ही प्रारम्भ होते हैं । इन संस्कारोंको जब सुआचरणी माता और पिता बालकके साथमें करते हैं तब उनके परिणामोंमें जो धार्मिक व सुव्यवहारिक असर पड़ता है उससे बालक बालिकाके विचार एक खास अवस्थामें बदलते जाते हैं । संस्कारोंके प्रताप और माता पिताके

सम्हालसे बालककी शक्तियां बहुत प्रौढ़ और मजबूत हो जाती हैं, जैसे कच्चे गेहूं और चनेको सूर्य्यकी धूपकी किरणोंका संस्कार पका देता है। गृहस्थका कर्तव्य संस्कारित पुरुष और स्त्रीके द्वारा ही यथायोग्य पाला जा सक्ता है और ऐसे सुकर्तव्यके वर्तावसे दोनोंका जीवन सुखमई देव और देवीके तुल्य परस्पर हितरूप हो जाता है तथा ऐसे गृहस्थ ही पहले कही हुई प्रतिमाओंकी रीतिसे धर्माचरण करते हुए आत्मोन्नति करते चले जाते हैं और क्षुल्लक व ऐलक हो कर फिर मुनि होनेके योग्य हो सक्ते हैं। अतएव यदि मनुष्य-जन्मकी सफलता करना हो तो अवश्य अपने बालक बालिकाओंको संस्कारित करो और पहले कही हुई रीतिसे गृहधर्मको पालो और पलवाओ। इसमें शंका नहीं कि बालकका संस्कार ठीक होनेके लिये सुसंस्कारित और सुशिक्षित माताकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। अतएव जैसे बालकको संस्कारित व सुशिक्षित किया जाता है ऐसे ही बालिकाको उसके योग्य संस्कारोंसे विभूषित करना चाहिये और सुशिक्षित बनाना चाहिये।

अध्याय बीसवां।



संस्कारित माताका उपाय।

जब बालक गर्भमें आता है तब यह तो निश्चय नहीं हो

सक्ता कि पुत्र होगा या पुत्री। अतएव बालकके जन्मसे पहले गर्भाधानसे लेकर मोदक्रिया तकके संस्कार तो किये ही जाते हैं, परन्तु यदि पुत्र न जन्मकर पुत्री जन्मे तो उसके लिये क्या संस्कार किये जावें तथा उसके क्या २ मंत्र हैं? इनका विधान किसी शास्त्रमें हमारे देखनेमें नहीं आया। तौ भी जो २ संस्कार पुत्रके लिये हैं उनमेंसे वे संस्कार पुत्रीके लिये भी किये जावें जोकि पुत्रीके लिये संभव हैं—ऐसा करनेमें कोई हर्जकी बात नहीं है। जबतक खास विधि व खास मंत्र न मिलें तब तक नीचे प्रमाणें क्रियाएं की जावें ताकि पुत्रीके चित्तपर भी असर पड़े।

जन्म समयकी प्रियोद्‌भवक्रिया उसी विधिसे करे जैसे पुत्रके लिये कहा गया है। नित्य पूजाके बाद सात पीठिकाके मंत्रोंसे होम किया जावे। आगे चल कर पहले कहे हुए मंत्रोंसे बालकका सिर गंधोदक छिड़क कर पिताद्वारा स्पर्श किया जावे। उस समय पिता आशीर्वाद देवे। पहली विधिमें पुत्रके कहनेको तो शब्द हैं, परन्तु पुत्रीके लिये नहीं हैं। अतएव जब तक वे शब्द न मिलें तब तक चिरंजीव रहे, सौभाग्यवती रहे, तीर्थेश्वरकी माता हो इत्यादि शब्द कहे जावें। फिर बालककी नाभिनाल काटनेसे लेकर नाभि गाड़ने तक की क्रिया पहलेकी भांति करे, परन्तु क्रियाओंके मंत्र न पढ़े; क्योंकि वे सर्व पुत्र सम्बन्धी हैं। इन मंत्रोंके स्थानमें "नमः अर्हद्‌भ्यः" गृहस्थाचार्य्यद्वारा कहा जावे। बालककी

माताको स्नान करानेका जो मंत्र है उसीसे पढ़ स्नान कराया जावे। तीसरे दिन तारामंडित आकाश दिखाया जावे, तब "नमः अर्हद्भ्यः" ही मंत्र पढ़ लिया जावे । फिर नामकर्मक्रियामें पहलेकी भांति सात पीठिकाके मंत्रों तक होम करे और कुछ शुभ नाम सतियों व धर्मात्मा स्त्रियोंके व त्रेशठशलाका पुरुषों-की माताओंके प्रत्येक पत्रपर अलग २ लिख कर रक्खे, किसी शुचि बालकसे उठवावे जो नाम आवे वही रक्खा जावे।

बहिर्यानक्रियामें—पूर्वकी तरह प्रसूति घरसे बाहर लाया जावे । पूजा केवल सात पीठिकाके मंत्रों तक ही की जावे । इस क्रियाके खास मंत्र पुत्रकी अपेक्षा हैं, तिनको न पढ़ केवल 'नमः अर्हद्भ्यः' कहा जावे। इसी भांति निषद्याक्रिया, अन्नप्रासनक्रिया, व्युष्टिक्रिया भी की जावे । केवल खास मंत्रोंके स्थानमें 'नमः अर्हद्भ्यः' कहा जावे। पुत्रीके लिये चौलिक्रियाकी आवश्यकता नहीं है । यदि किसी कुलमें इसका रिवाज हो तो की जावे, खास मंत्रोंके स्थानमें 'नमः अर्हद्भ्यः' कहा जावे अथवा किसी पुत्रके साथ पुत्रीकी चौलिक्रिया की जावे ।

जब बालिका ५ वर्षकी हो जावे तब उसको सुशिक्षित अध्यापिका व वयोवृद्ध सुशील अध्यापकके द्वारा लिपिकी शिक्षा देनेके लिये " लिपिसंख्यान क्रिया " करानी चाहिये। उस समय भी सात पीठिकाके मंत्रों तक पूजा की जाय ।

शेष मंत्रोंके स्थानपर 'नमः अर्हद्भ्यः' से काम लिया जाय। उस समयसे बालिकाके योग्य लिखने, पढ़ने, गणित आदिकी ऐसी प्राथमिक शिक्षा दी जावे जिससे उसे आगामी ज्ञानके साधनोंमें व गृहस्थी सम्बन्धी क्रियाओंकी शिक्षा प्राप्त करनेमें सुगमता मालूम हो। ३ वर्ष तक साधारण शिक्षा देकर फिर विशेष शिक्षाके अर्थ किसी योग्य श्राविकाश्रममें पढ़ने भेजे अथवा अन्य शालाओंसे काम लेवे। उस समय धर्मका भले प्रकार ज्ञान कराया जावे और साथमें सीनापरोना, रसोई-बनाना, पुत्र-पालन, वैद्यक आदिकी जरूरी शिक्षाएं दी जावें तथा कन्याओंको गाना, बजाना व नृत्य भी सिखाना चाहिये, क्योंकि गृहधर्ममें प्राप्त वधूके लिये इनका जानना अपने पतिके चित्तके प्रसन्नार्थ जरूरी है। जब यह कन्या सच्ची माता होने योग्य शिक्षाको प्राप्त कर लेवे तब इसकी रक्षिका अथवा माता व पिता यह देखें कि अब भी इस कन्याकी पढ़नेमें अधिक रुचि है तथा इसका काम-विकार दबा हुआ है तो और अधिक प्रयोजनीय शिक्षा दी जावे। कमसे कम १२ वर्षकी अवस्था तक तो पढ़ना ही चाहिये। यदि सुशिक्षित कन्या धर्मके स्वरूपको जानकर यह कहे कि मैं आजन्म ब्रह्मचर्य्य पालकर अपना जीवन स्वपरकल्याणमें ब्राह्मी तथा सुन्दरीकी तरह बिताऊंगी तो माता पिताको उसके लग्नका हठ नहीं करना

चाहिये, परन्तु उसकी योग्यता और परिणामोंकी जाच किसी एक दो वयोवृद्ध धर्मात्मा सुशिक्षित श्राविकाओंसे कराई जाय। यदि यथार्थमें उसके भाव इसी प्रकारके दृढ़ हों तो वह कन्या अपने घरमें न रह किसी श्राविकाश्रममें अथवा किसी धर्मात्मा विरक्तचित्त ब्रह्मचारिणी श्राविकाके साथ रह ज्ञान, तप और उपकारकी वृद्धि करे। यदि कन्याके परिणाम विरक्त न हों तो गृहधर्म-प्रेमी कन्याकी लग्न योग्य वरके साथ उसी विधिके साथ की जावे जिसका वर्णन विवाह-संस्कारमें किया जा चुका है। और तब वह कन्या वधू भावको प्राप्त हो अपने पतिको अपना स्वामी, रक्षक, व परम प्रीतम समझे, उसकी आज्ञामें चले, अपने सत्य जिनधर्मकी क्रियाओंको रुचिसे पाले। यदि अपना पति धर्मसे विमुख हो तो उसको प्रिय बचनोंसे उपदेश देकर धर्ममें दृढ़ करे। यदि कदाचित् पति धर्मकी तरफ ध्यान न दे तो आप कभी भी धर्माचरणसे विमुख न हो, किन्तु धर्माचरणको इस तरह पाले जिससे परिणामोंमें आकुलता न हो। पतिकी सेवामें किसी प्रकारकी त्रुटि न रहे, जिससे पतिको संक्लेशपना हो जावे तथा पुत्रादिकोंकी योग्य सम्हाल करे, भोजन शास्त्रानुसार क्रियासे बनावे, प्रमाद न करे तथा अपनी सास, ननद आदिसे प्रेम रक्खे और एक घरमें वास करनेवालोंको अपने निमित्तसे आकुलता पैदा हो जाय इस तरह वर्ताव न करे। जिस कन्यापर बाल्यावस्थासे संस्कारोंका

और फिर सुशिक्षाका असर पड़ेगा वह अवश्य योग्य माता हो सक्ती है और उसकी सन्तान प्रति सन्तान अवश्य सन्मार्गपर चलनेवाली होगी। अतएव अपनी कन्याओंको धार्मिक संस्कार और विद्यासे सुसज्जित करना चाहिये–यही एक कारण बीजरूप वीर पुत्रोंकी प्राप्तिका है।

अध्याय इक्कीसवां।



गृहस्त्री–धर्माचरण।

स्त्री अपने पति और पुत्रादिकोंके साथमें रहती हुई उसी प्रकार श्राविकाके व्रत पाल सक्ती है जिस तरह एक पुरुष अपनी स्त्री पुत्रोंके साथमें रहता हुआ श्रावकके व्रत पाल सक्ता है। पहले पाक्षिकश्रावकके व्रत पाले। जब उनमें अभ्यास हो जावे तब दर्शनप्रतिमा व व्रतप्रतिमाके नियमोंको पाले। यहां तक के नियम हरएक गृहस्थ स्त्री सुगमतासे पाल सक्ती है। फिर जब अधिक धर्मध्यान करने की शक्ति और अवकाश हो तब सामायिकप्रतिमा, प्रोषधोपवास प्रतिमा, सचित्तत्याग–प्रतिमा, रात्रिभोजन, व दिवामैथुनत्याग प्रतिमाके नियम पाले। यहां तक के नियम अपने पतिके साथमें मेलसे रहते हुए श्राविका पाल सक्ती है। इसके आगे ब्रह्मचर्य्यप्रतिमाके नियमोंको वह श्राविका उसी वक्त पाले जब पति भी पालने लग जावे अथवा अपने पतिकी आज्ञा

लेकर पाले और तब घरमें किसी एकान्त कमरेमें सोये बैठे। इसके आगे आरम्भ-त्यागका नियम उसी समय धारे जबकि वह श्राविका यह देख ले कि मेरे घरमें पुत्र बधू आदि हर्ष पूर्वक मेरी आवश्यक्ताओंका प्रबन्ध कर देवेंगे अथवा स्थानीय श्राविका मंडलीपर विश्वास करके इस श्रेणीके नियम पाले। पश्चात् ९ वीं श्रेणीके नियम रखते हुए वस्त्र व पात्र मात्र रक्खे, शेष परिग्रहको और उसके ममत्वको त्यागे। इसके आगे दो श्राविकाएं मिलकर किसी मठ या धर्मशालामें रहें और तब १० वीं श्रेणी याने अनुमतित्यागके नियम पालें। वर्तमान अवस्थामें यहां तकके नियम पालना श्राविकाके लिये कुछ कठिन नहीं हैं। इसके आगे ग्यारहवीं प्रतिमामें अर्जिकाके व्रत हैं। यदि दो तीन श्राविकाएं मिलकर अर्जिकाके व्रत धारें तो धार सक्ती हैं। परन्तु यह व्रत उसी समय लेना योग्य है जब शीत व उष्णकी बाधाको सहनेके लिये शरीर तयार हो जावे, क्योंकि अर्जिका केवल १ सफेद सारी, पीछी और कमंडल रखती है, क्षुल्लकके समान भिक्षावृत्तिसे भोजन लेती है। परन्तु केशोंका लोंच करती है।

विधवा कर्तव्य।

जब स्त्रीका पति देहान्त कर जावे तब उसको विधवा अवस्थामें रह कर अपना जीवन श्राविकाके व्रतोंके पालनेमें बिताना चाहिये। विधवाको किस प्रकार रहना चाहिये इस विषयमें सोमसेन त्रिवरणाचारके कुछ श्लोक लिखे जाते हैं:-

तत्र वैधव्य दीक्षायां देशव्रतपरिग्रहः ।
कंठसूत्र परित्यागः कर्णे भूषण वर्जनम् ॥ १९८ ॥
शेष भूषानिवृत्तिश्च वस्त्रखंडान्तरीयकम् ।
उत्तरीयेण वस्त्रेण मस्तकाच्छादनं तथा ॥ १९९ ॥
खट्वाशय्याञ्जनालेप हारिद्र प्लव वर्जनम् ।
शोकाक्रन्द निवृत्तिश्च विकथानां विवर्जनम् ॥ २०० ॥
त्रिसंध्यं देवतास्तोत्रं जपःशास्त्र श्रुतिःस्मृतिः ।
भावनाचानुप्रेक्षाणां तथात्मप्रति भावना ॥ २०२ ॥
पात्रदानंयथा शक्ति चैक भक्तिमगृद्धितः ।
ताम्बूल वर्जनं चैव सर्वमेतद्विधीयते ॥ २०३ ॥

अर्थ—विधवा श्राविकाके देशव्रत ग्रहण करे, कंठमेंसे मंगल सूत्र उतारे, कानके गहने व अन्य आभूषण न पहरे, धोती पहरे, ऊपरके वस्त्रसे मस्तकको ढके, खाट व शय्यापर न सोवे, सुरमा न लगावे, हल्दी लगाकर न नहावे, पतिके लिये शोक न करे न रोवे, खोटी कथाएं न कहे, तीनों संध्याओंमें श्रीजिनेन्द्रका स्तोत्र पढ़े, जाप देवे तथा शास्त्र सुने, १२ भावनाओंका विचार करे तथा आत्मस्वरूपकी भावना करे, यथाशक्ति पात्रदान करे, गृद्धता न करके एक समय भोजन करे तथा पान ताम्बूल न खावे ।

विधवा स्त्री यदि श्रृङ्गार करे, पान खावे, गहने पहने, काम कथाएं करे, खोटे गीत गावे, दोंनों वक्त कई समय भोजन करे, खोटी संगति करे, रागरंग व नाच देखे

तो वह अपनी इन्द्रियोंको अपने आधीन कैसे रख सक्ती है? यही कारण है कि बहुधा विधवा स्त्रियें अपने शीलको भृष्ट कर बैठती हैं।

यह तन क्षणभंगुर है तौभी यह बड़े कामका है। यदि इस तनसे तप किया जाय, स्वाध्याय, पूजा व परोपकार किया जाय तो इस मनुष्य देहसे यह आत्मा स्वर्गादिक व परम्परा मोक्षको प्राप्त कर सक्ता है। इसलिये विधवा स्त्रियोंको उचित है कि वे अपने जीवनको सफल कर लेवें, आप विद्यासहित और सुचारित्रवान होकर दूसरोंके साथ उपकार करें व उनका भला करें। विषयोंकी तृष्णामें पड़ा हुआ यह आत्मा कभी भी शांतिको नहीं पा सक्ता? सो ये सब बातें उसी वक्त सम्भव हैं कि जब विधवा स्त्री ब्रह्मचारिणी की रीतिके अनुसार रह कर अपना जीवन बितावे, ध्यान स्वाध्याय और परोपकारमें ही अपना दिन रातका समय खर्च करे। जिस तरह पुरुष श्रावक अपना धर्म पाल सक्ते हैं उसी तरह स्त्री श्राविकाएं भी पाल सक्ती हैं।

रजस्वलाधर्म।

स्त्री पर्यायमें प्रति मासमें रजोधर्म होता है, उससे खराब रुधिर बहने लगता है। ऐसी हालतमें स्त्रीके शरीरमें से केवल योनिस्थानसे ही नहीं, किन्तु सर्व शरीरके रोओंसे ऐसे अशुद्ध परमाणुओंका निकास होता है कि उनके कारण छुई हुई

चीजें भी खराब और अशुद्ध हो जाती हैं। अतएव ऐसी हालतमें स्त्रीको एकान्त स्थानमें गुप्त रीतिसे मौन धारे हुए बैठना चाहिये, ताकि उसका स्पर्श वहीं पर रहे। रजस्वला स्त्रीको जिस दिनसे यह विकार हो उस दिनसे लेकर तीन दिन तक एकान्तमें रहना चाहिये, वहीं पर भोजन हाथमें व मिट्टी, पत्तेके वर्तनमें करना चाहिये। यदि कांसे आदिके वर्तनोंमें करे तो उनकी शुद्धि फिर अग्निमें डालनेसे ही हो सक्ती है। किसी पुरुषके मुखको न देखे न अपने पतिको देखे, किसीसे बात न करे। स्त्रियोंसे भी बातें नहीं करना चाहिये। ३ दिन बराबर पंच परमेष्ठीकी याद मन ही मनमें करे या बारह भावनाओंका व स्त्रीपर्यायका व सिद्ध सुखका इत्यादि शुभ धर्मध्यान करे। कहीं फिरे नहीं शौचके लिये जहां घरके और लोग जाते हैं वहां शौच न करे, अन्य स्थान में करे। चौथे दिन स्नान करके केवल वस्त्र व सूखी चीजें छू सक्ती है। रात्रिको पतिके सन्मुख जा सक्ती है। पांचवें दिन श्रीजिनेन्द्र पूजन, दान, धर्म व भोजनादि बनानेका काम कर सकती है। यदि रजस्वला सूर्य्यके अस्त होनेके पीछे होवे तो दूसरे दिनसे ३ दिन गिनने चाहिये।

रजस्वला धर्मके विषयमें त्रिवरणाचार अध्याय १३ में इस भांति कथन है:—रजस्वला धर्मस्त्रियोंके दो प्रकारसे होता है। एक प्राकृत याने स्वाभाविक प्रति मासमें, दूसरा विकृत याने रोगादिके होनेपर। यदि ५० वर्षसे ऊपरकी स्त्रीके अकालमें

रजधर्म हो तो उसका कुछ दोष नहीं है । प्राकृतका नियम कहते हैं कि स्त्रियोंको रजके देखनेके दिनसे ३ दिन तक अशुद्धपना रहता है । रजदर्शन यदि आधी रातसे पहले हो तो पहलेका दिन गिन लेना ऐसा भी किसी २ का मत है । यदि मासिक रजोधर्मके बाद फिर १८ दिनके अन्दर ही रज स्रवे तो केवल स्नान मात्र ही से शुद्धि हो जाती है । उसके बाद यदि १८ दिन हो जावें तो २ दिन अशुद्ध, यदि २१ दिन होवें तो मासिक धर्मके समान ३ दिन अशुद्धि माननी ऐसा भी मत है । किसीका मत है कि १८ दिन होनेपर ही ३ दिनकी अशुद्धि माननी चाहिये ।

ऋतुमतीको कैसे वर्तना चाहिये इस विषयमें ये श्लोक हैं:—

काले ऋतुमती नारी कुशासने स्वपेत्सती ।
एकांत स्थानके स्वस्था जनस्पर्शनवर्जिता ॥ १६ ॥
मौनयुक्ताऽथवा देव धर्म वार्ता विवर्जिता ।
मालती माधवी वल्ली कुन्दादिलतिका करा ॥ १७ ॥
रक्षच्छीलं दिनत्रयं चैकभक्तं विगोरसम् ।
अञ्जनाभ्यङ्ग स्रग्गन्धलेपन मंडनोज्झिता ॥ १८ ॥
देवं गुरुं नृपं स्वस्य रूपं च दर्पणेऽपिवा ।
नच पश्येत्कुदेवं च नैव भाषेत तैः समम् ॥ १९ ॥
वृक्षमूले स्वपेन्नैव खट्वाशय्यासने दिने ।
मंत्र पंच नमस्कारं जिन स्मृर्तिं स्मरेत् हृदि ॥ २० ॥
अंजलावश्नीयात् पर्णपात्रे ताम्रे च पैत्तले ।

भुक्तं चेत्कांस्यजे पात्रे तत्तु शुद्ध्यति वन्हिना ॥ २१ ॥

भावार्थ—योग्य कालमें रजधर्मको पानेवाली स्त्री दर्भके आसनपर सोवे, स्वस्थ्य मन हो एकान्तमें बैठे, किसीको स्पर्श न करे, तीन दिन मौन रक्खे, देव धर्मकी कथा न कहे, मालती, मोगरी व कुंदफूलकी बेल तीन दिन तक हाथमें रक्खे।

नोट—इसका क्या प्रयोजन है सो समझमें नहीं आया।

अपने शीलकी रक्षा करे (पूरा शीलव्रत पाले), तीन दिन दही व दूधके विना एक वार भोजन करे, आंखोंमें अंजन न लगावे, अंगमें तेल न चुपड़े, माला व गहने न पहरे, देव, गुरु, राजाको न देखे, न अपने मुखको दर्पणमें देखे, किसी कुदेवको भी न देखे, न राजा, गुरु आदिसे भाषण करे। वृक्षके नीचे व खाट या शय्यापर न सोवे, दिनमें शयन न करे, पंच णमोकार व जिनदेवकी मनमें याद करे, तीन दिन अपने हाथोंपर व पत्तेपर व तांबे या पीतलके वर्तनमें अन्न लेकर खावे। यदि कांसेके वर्तनमें खावे तो उसे अग्निमें डालकर शुद्ध करना होगा।

रजस्वलाकी शुद्धि कब होती है? इस विषयमें यह मत है:—

चतुर्थे दिवसे स्नायात्प्रातर्गो सर्गतःपुरा।
पूर्वान्हे घटिका षट्कं गोसर्ग इति भाषितः ॥ २२ ॥
शुद्धा भर्तुश्चतुर्थोन्हि भोजने रन्धनेऽपिवा।

देव पूजा गुरूपास्ति होमसेवासु पंचमे ॥ २३ ॥

भावार्थ—चौथे दिन ६ घड़ी दिन चढ़े याने २ घंटे २४ मिनट दिन चढ़े पर स्नान करे तथा उस दिन केवल अपने पतिके लिये भोजन अन्न बना सक्ती है शेष देवपूजा, गुरु सेवा, दान आदि कार्य्योंके लिये पांचवें दिन शुद्ध समझनी चाहिये। रजस्वला स्त्रीको उचित है कि वह परस्पर दूसरी रजस्वलासे भी बात न करे।

अस्नाते यदि संलापं कुरुतश्चोभयोस्तयोः।

अतिमात्र मघं तस्माद्वर्ज्ये सम्भाषणादिकम् ॥ २४ ॥

भावार्थ—विना स्नान किये यदि एक स्त्री दूसरेसे बात कर ले तो बहुत पापका बंध होता है। यदि भोजन करते हुए रजस्वलाकी शंका हो तो फिर स्नान करके शुद्ध हो भोजन करे ऐसी स्त्री तालाव व नदीमें डुबकी न लगावे पानी बाहर लेकर स्नान करे।

यदि रजस्वलाको दूध पीनेवाला बचा छुए तो वह जल छिड़कनेसे और जो इससे बड़ा लड़का १६ वर्ष तकका छुए तो स्नान करनेसे शुद्ध होगा। जिस स्त्रीको ऋतुका ज्ञान न हो और रजस्वला हो जाय तो उससे १ हाथकी दूरी तकके पदार्थ अशुद्ध समझने चाहिये। जो कोई ऐसी स्त्रीके हाथका भोजन करे उसको एक या दो दिनका उपवास करना चाहिये।

जो स्त्रियां आरंभ त्यागी हैं वे भी यदि रजस्वला हो

जावें तो दूसरी स्त्रियां उनको जल व वस्त्र आदि देवें । अर्जिकाको भी रजस्वला होनेपर तीन दिन एकान्तमें रह कर उपवास करना होता है । चौथे दिन दूसरी आर्जिका व श्राविका पानी दे स्नान कराती है तथा सारी बदलवाती है । अर्जिका रजस्वला अवस्थामें भोजन लेवे व नहीं तथा और किस प्रकार वर्ते इसका कथन अन्य किसी स्थलसे जानना योग्य है ।

जिन धर्मको पालनेके हकदार जैसे पुरुष हैं वैसे स्त्रियां भी हैं । अतएव स्त्रियोंको भी रुचिसे अपनी शक्तिके अनुसार धर्मका पालन करना चाहिये ।

अध्याय बाईसवां ।



समाधि मरण तथा मरणकी क्रिया ।

श्रावक श्राविकाओंको १२ व्रत जन्म पर्यन्त बड़ी श्रद्धा और सावधानीसे पालना योग्य है तथा जब असाध्य रोग व अन्य कोई कारणसे अपना मरण निकट आवे तब सल्लेखणा करनी योग्य है ।

सूत्र—मारणन्तिकीं सल्लेखनां ज्योषिता (उमा०)

अर्थात्—मरणके समय समाधिमरणको सेवना चाहिये ।

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां चनिःप्रतीकारे ।

धर्माय तनुविमोचन माहुःसल्लेखनामार्याः ॥ १२२ ॥

(र० क०)

भावार्थ–उपसर्ग याने कोई अग्नि,जल,वायु आदिकी आफत आजाने पर, दुष्काल पड़ने पर, बुढ़ापा होनेपर, रोगी होनेपर, यदि इलाजरहित हो तो अपने आत्मीक धर्मकी रक्षाके वास्ते शरीरका त्यागना सो सल्लेखना कही गई है । सल्लेखनाका अर्थ कषायोंका भले प्रकार क्षीण करना है और इसीलिये शरीरको कृश करते हुए वीतराग अवस्थासे मरना सो समाधिमरण है ।

नीयंतेऽत्रकषाया हिंसाया हेतवोयतस्तनुताम् ।
सल्लेखनामपिततःप्राहुरहिंसा प्रसिद्ध्यर्थम् ॥ १७९ ॥

(पु० सि०)

भावार्थ–हिंसाके कारण कषाय भावोंको जहां कम किया जाता है इसलिये यह सल्लेखना अहिंसा धर्मकी सिद्धिके लिये ही की जाती है । इसमें आत्म घातका दोष नहीं है । क्योंकि कषाय भावोंसे अपनेको मारना ही आत्माघात हो सकता है । यह शरीर धर्म साधनेका निमित्त सहायक है, इसलिये जबतक आत्मीक धर्म सधे तबतक इसकी रक्षा करनी योग्य है और जब इसकी रक्षाके झगड़ेमें पड़नेसे अपना धर्म डूबता हो तब ऐसे शरीरका छोड़ देना ही अच्छा है । श्रावकके समाधिमरणकी विधि इस प्रकार है:–

स्नेहंवैरं संगं परिग्रहं चापहाय शुद्ध मनाः ।
स्वजन परिजनमपि च क्षांत्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥ १२४ ॥
आलोच्यसर्व मेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम् ।
आरोपयेत्महाव्रतमामरण स्थायि निश्शेषम् ॥ १२५ ॥
शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्य मरतिमपि हित्वा ।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥ १२६ ॥
आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥ १२७ ॥
खरपान हापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या ।
पंचनमस्कार मनास्तनुं त्यजेत्सर्व यत्नेन ॥ १२८ ॥

(र० क०)

भावार्थ—सर्वसे स्नेह छोड़े, द्वेष हटावे, सम्बन्ध तोड़े, परिग्रहको दूर करे और शुद्ध मन हो मीठे वचन कह अपने कुटुम्बी तथा अन्योंको क्षमा करावे और आप भी क्षमा कर देवे । छल कपटरहित हो कृत, कारित, अनुमोदनासे किये हुए सर्व पापोंकी आलोचना करके मरण पर्यंतके लिये पांच पापोंके सर्वथा त्याग रूप महाव्रतको धारण करे। शोक, भय, चिन्ता, ग्लानि, कलुषता तथा अरतिको भी त्याग करके और अपने बल तथा उत्साहको प्रगट करके शास्त्र रूपी अमृतसे अपने मनको आनन्दित करे अर्थात् तत्त्वज्ञानके चिन्तवनमें हर्ष माने।

शरीरको क्रम २ से त्यागनेके अर्थ पहले भोजन करना छोड़े केवल दूध या छाछको ही लेवे फिर उसको भी छोड़ता

हुआ कांजी वा गर्म जलको ही पीता रहे, फिर गर्म जलको भी त्याग करके शक्तिसे उपवास करके खूब यत्नके साथ पंच णमोकार मंत्रको जपता हुआ शरीरको छोड़े। मतलब यह है कि आहार पान धीरे २ घटावे ताकि कोई आकुलता न पैदा हो और समाधि अवस्थाके लिये परिणाम चढ़ते चले जावें। यदि अपनी शक्ति हो तो वस्त्रादि सब परिग्रहको छोड़कर मुनिके समान नग्न दिगम्बर हो जावे, केवल एक चटाईपर आसनसे बैठा या लेटा हुआ आत्मस्वरूपका शांततासे अनुभव करे, परन्तु यदि शक्ति न हो तो आवश्यक कपड़े, स्थानको प्रमाण करके शेषको त्यागे। जघन्यरूपसे ऐसा भी किया जासक्ता है कि एक २:दो २ चार २ दिनोंके प्रमाणसे भोजन व परिग्रहको छोड़े, कि यदि इस बीचमें जीता रहा तो फिर शक्ति देखकर प्रमाण कर लूंगा। जो समाधिमरण करे वह घरके झगड़ोंसे अलग एकान्तमें रहे, अपने पास ४ साधर्मी ज्ञानी भाइयोंकी संगति रक्खे ताकि वे शास्त्रोपदेश करके परिणामोंको वैराग्यमें स्थिर करें। स्त्री पुत्रादि मोहकारक चेतन अचेतन पदार्थोंकी संगति न करे। यदि शक्ति न हो तो चटाईके साथरेपर लेटा लेटा ही णमोकार सुने व अर्थको बिचारे।

बहुधा कुटुम्बी जन अज्ञानतासे मरते हुएको कष्ट होते हुए भी ऊपरसे नीचे लाते हैं—यह बड़ी निर्दयता है और उसके परिणामोंको दुखानेवाली है। जब वह सुगमतासे

आसके तो पहले लाओ नहीं तो केवल रूढ़ि वश ऊपरसे उतारनेकी जरूरत नहीं है । सम्हाल इस बातकी रखना चाहिये कि मरनेवालेके मनमें शांति पैदा हो। दुःख, शोक, व ग्लानि उत्पन्न न हो।

समाधि मरणके समय ५ प्रकार शुद्धि रखनी चाहिये।

" शय्योपध्यालोचनान्न वैयावृत्त्येषु पंचधा ।
शुद्धिः स्याद् दृष्टिधीवृत्तविनयावश्यकेषुवा ॥ ४१ ॥

(सा० ध०)

भावार्थ–शय्या, संयमके साधन उपकरण, आलोचना, अन्न और वैय्यावृत्तमें तथा अंतरंग दर्शन, ज्ञान, चारित्र, विनय और छह आवश्यकों (सामायिकादि) में शुद्धि रखनी चाहिये तथा इन पांच बातोंका विवेक या भेद-विज्ञान रक्खे ।

विवेकोऽक्ष कषायांग भक्तो पधिषु पंचधा ।
स्याच्छय्योपधिकायाऽन्न वैय्यावृत्त्य करेषु वा ॥ ४२ ॥

(सा० ध०)

भावार्थ–इन्द्रिय विषय, कषाय, शरीर, भोजन और सयमक उपकरणोंमें तथा शय्या, परिग्रह, शरीर, अन्न और वैयावृत्यमें विवेक रक्खे ।

सल्लेखनाव्रतके पांच अतीचार हैं सो बचाना चाहिये ।

जीवित मरणा शंसामित्रानुराग सुखानुबंध निदानानि ।

(उ० स्वा०)

भावार्थ--१. अपने अधिक जीनेकी इच्छा करनी कि किसी तरह जी जाऊं तो सर्व सम्बन्ध बना रहे सो जीवितशंसा है। २. अपना शीघ्र मरण चाहना कि रोगादिकी विशेष बाधा हो रही है वह सही नहीं जा सक्ती सो मरणाशंसा है। ३. अपने विषयोंके मिलानेमें सहाई मित्रोंकी ओर राग भाव करना सो मित्रानुराग है। ४. पहले भोगे हुए सुखोंका बारंबार चिन्तवन करना सो सुखानुबन्ध है। ५. मरणके पीछे भोगोंकी प्राप्ति हो ऐसी चाहना करनी सो निदान है।

जैसे पुरुष समाधिमरण करे ऐसे स्त्री भी करसकती है।

मरनेपर क्या क्रिया करनी चाहिये ?

मृतक शरीरको प्रेत भी कहते हैं। प्रेतको रखनेके लिये सुशोभित विमान बना कर तथा उसे धोकर नए वस्त्रादिसे भूषित करके इस तरह लिटाना चाहिये जिसमें वह हिले नहीं, अंग तथा मुख सर्व शरीरको नवीन वस्त्रोंसे ढक देवे, उसके ऊपर फूलकी माला डाले और अपनी जातिके ४ विवेकी जन प्रेतके मस्तकको गांवकी ओर रखते हुए अपने कंधोंपर उस विमानको इस तरह ले जावें कि वह हिले नहीं तथा एक मनुष्य दग्ध करनेके लिये अग्नि ले जावे। यदि कोई ब्रह्मचारी व धर्मात्मा गृहस्थ मरे तो उसके लिये जो अग्नि जावे वह होम की हुई अग्नि होनी चाहिये अर्थात् क्रिया करानेवाला कुंडमें मंत्रोंसे होम करे उन मंत्रोंसे होम की हुई

अग्निको ले जावे। कौनसे मंत्रसे होम हो यह देखनेमें नहीं आया, तौ भी यदि नीचा लिखा हुआ मंत्र काममें लाया जावे तो कुछ हर्ज नहीं।

"ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्व शान्ति कुरु २ स्वाहा" १०८ वार इस मंत्रद्वारा होम करे।

कन्या या विधवा मरे तो उसके लिये ऐसी अग्नि ले जावे जो ५ वार दर्भको रखकर काष्ठद्वारा सिलगाई गई हो और सर्व स्त्रियोंके लिये ऐसी अग्नि ले जाई जाय जो जली हुई लकड़ीमें इस तरह जलाई गई हो कि चूल्हेमें अग्नि रखकर ऊपर थाली रखकर उसकी गर्मीसे जले—इसका क्या अभिप्राय है सो समझमें नहीं आया। इनके सिवाय तीन वर्णके और पुरुषोंके व शूद्र वर्णके सर्वके लिये वही अग्नि काममें लेवे जो रसोई आदि बनानेके काममें आती है। स्मशानको जाते हुए जब आधा मार्ग हो जावे तब किसी स्थानपर प्रेतको रक्खें और उसका पुत्र व अन्य सम्बंधी प्रेतका मुख खोल मुंहमें कुछ पानी सींचे। इससे शायद प्रयोजन मुर्देको जांच करनेका होना चाहिये। तब जाति सम्बन्धी तो उस शवके आगे और शेष जन और सर्व स्त्रियां पीछे २ जावें।

उसके मरणमें किसी प्रकार शंका न रहे ऐसी परीक्षा करके उस लाशको स्मशान भूमिमें ले जाकर रक्खे, फिर चंदन और काठकी लकड़ियोंसे बनी हुई चिताके ऊपर

शवका पूर्व या उत्तरकी ओर मुख करके रख देवे और तब सुवर्णसे उठा कर घी और दूध सात स्थानोंमें डाले अर्थात् मुंह, दो नाकोंके छेद, दो आंखें और दो कानोंमें तथा तिल और अक्षत मस्तकपर डाले—यह भी शायद परीक्षाके लिये ही करना होता होगा। फिर चिताको दग्ध करनेवाला तीन प्रदक्षिणा करके और उस चिताके एक तरफ १ हाथ चौड़ा खैरकी लकड़ीका और दूसरी ओर ईंधनका मंडल कर देवे। फिर जो अंगीठीमें लाई हुई अग्नि है उसको जलाकर घी की आहुति देकर उस मंडलपर अग्नि लगा देवे तथा चारों ओर लकड़ियां इकट्ठी कर देवे और चिताके चारों ओर आग करके शवको दहन करावे ।

चिता रचनेके लिये जब काष्ठ रक्खे तब यह मंत्र पढ़े "ॐ ह्रीं ह्रः काष्ठ संचयं करोमि स्वाहा" जब प्रेतको उस काष्ठपर रक्खे तब पढ़े "ॐ ह्रीं ह्रौं झौं अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा।" फिर अग्नि बढ़ानेको जब घी डाले तब यह पढ़े "ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्नि संधुक्षणं करोमि स्वाहा"। खूब घी चंदनादि द्रव्य डाल दे जिससे वह शव जल जावे। फिर तालाबमें जा स्नान करे तथा चार ले जानेवाले व अन्य मंडली चिताकी प्रदक्षिणा करके जलाशयमें जावे, जिसको दग्ध करनेका अधिकार हो वह अपना सिर मुंडन करा कर स्नान करे। कन्याके मरनेपर सिरके मुंडनकी आवश्यक्ता

नहीं है। बहुधा रत्नत्रयधारी पुरुषकी मूर्ति व चिन्ह स्थापित करते हैं, जिससे लोगोंको प्रेम हो इस प्रयोजनसे जलाशयके किनारे १ पाषाण रक्खे उसपर मंडप करे या न करे तिल जल उसके सन्मानार्थ आगे रखकर सर्व जने गांवमें जावें छोटे आगे और बड़े पीछे चलें।

दूसरे दिन बंधु जनसहित आकर उस चिताकी आगपर दूध डाल जावें तीसरे दिन सबेरे अग्निको शांत करें, चौथे दिन सबेरे हड्डी जमा करें। जो मृतकको जलावे वह १४ दिन तक और शेष भाई बन्धु १२ दिन तक इस प्रमाण व्रत रक्खें; देवपूजा और गृहस्थाश्रमके कार्य्य न करें, शास्त्र पढ़ना पढ़ाना न करें, पान न खावें, चंदनादि न लगावें, पलंगपर न सोवें, सभामें न जावें, क्षौर न करावें, दो दफे न खावें, दूध व घी न लेवें, स्त्री समागम न करें, तेल लगाकर न न्हावें, देशान्तर न जावें, तास गंजीफा न खेलें, धर्मध्यानसहित १२ भावना विचारते हुए रहें।

दाहक्रिया करनेका अधिकार क्रमसे पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, उनकी सन्तान व जिनके १० दिन तकका ऐसा पातक है उनको है। पुरुषका कोई सम्बन्धी न हो तो पत्नी करे तथा पत्नीका पति करे। पत्नीके अभावमें कोई उसका सजातीय मंगलवार, करे। मृतककी हड्डी शनिवार, शुक्रवार और रविवारको इकट्ठी न करे। शेष वारोंमें एकत्र करके पर्वतकी

गुफामें व जमीनमें एक पुरुष भर या ३।। हाथका खड्डा करके गाड़ देना चाहिये, नदीमें बहाना न चाहिये । १२ दिनके पश्चात् श्रीजिनेन्द्रकी पूजा कराके पात्रोंको श्रद्धा पूर्वक दान करे;

यह विधि सामान्यसे सोमसेनकृत त्रिवर्णिकाचार अध्याय १३ वें के अनुसार चुन करके लिखी गई है, क्योंकि मरनके पीछे क्या क्रिया करनी इसका वर्णन अन्य किसी आर्ष ग्रंथमें देखनेमें नहीं आया ।

यह प्रत्यक्ष प्रगट है कि जिनको मरणका पातक लगता है उनको १२ दिन तक न रोजगार करना चाहिये, न देव पूजा, न दान, परन्तु सिर्फ ब्रह्मचर्य्य पालते रह कर १२भावनाओंका विचार करते रहना चाहिये । और जब तेरहवां दिन हो तब १२ मुनियोंको व श्रावकोंको व अविरत श्रद्धालु जैनियोंको भक्ति पूर्वक बुलाकर दान करना चाहिये और तब अपना जन्म कृतार्थ मानना चाहिये । यह प्रवृत्ति हानि कारक है कि मरणका विरादरी भरका जीमन किया जाय। ऐसा करना दान नहीं है, किन्तु मान बड़ाई पुष्ट करना है व रीतिके अनुसार जातिका दंड भुगतना है । इसलिये केवल धर्मात्माओंको ही बुलाकर भक्तिसहित प्रेमसे दान करे और धर्मात्माओंका भी कर्तव्य है कि इसमें इनकार न करें ।

अध्याय तेईसवां ।

जन्म मरण आशौचका विचार ।



व्यवहारमें यह प्रवृत्ति हो रही है कि जब कोई जन्मता है या मरता है तो उसके कुटुम्बी जन कितने काल तकके

लिये देवपूजा व पात्रको आहार दान आदि कार्य्योंके करनेके लिये रोक दिये जाते हैं। इस सम्बन्धमें कितने काल तक किस अवसरमें अटक माननी चाहिये, इसका वर्णन किसी अति प्राचीन संस्कृत शास्त्रमें देखनेमें नहीं आया। केवल सोमसेन त्रिवर्णाचारमें जो देखा गया उसीका संक्षेप सर्व साधारण जैनियोंके जाननेके लिये लिखा जाता है। जातक याने जन्मका आशौच (सूतक) तीन प्रकारका होता है—स्राव, पात और प्रसूत।

जो गर्भ तीसरे या चौथे महीने तक गिरे उसे स्राव, पांचवें या छठे महीनेमें निकले तो पात तथा सातवें माहसे आगे तकको प्रसूति कहते हैं।

गर्भस्राव और गर्भपातमें केवल माताको उतने दिनोंका सूतक है जितने मासका गर्भ गिरा हो, परन्तु पिता व भाई बन्धुओंको गर्भस्रावमें स्नान मात्रसे शुद्धि और गर्भपातमें एक दिनका आशौच होता है।

साधारण नियम है कि प्रसूतिमें याने जन्ममें मा बाप व भाई बन्धुओंको सर्वको १० दिनका सूतक होता है, परन्तु क्षत्रियोंको १२ और शूद्रोंको १५ दिनका होता है।

सूतकका हिसाब यह है कि जब ब्राह्मणको ३ दिनका सूतक होगा तब वैश्योंको ४, क्षत्रियोंको ५ और शूद्रोंको ८ दिनका होगा। यदि बच्चा जीता पैदा होकर नाभि काटनेके पहले मर जावे तो माताको १० दिनका, परन्तु

पिता आदिको ३ दिनका होता है। यदि बच्चा मरा पैदा हो व नाभि काटनेके बाद मर जावे तो मातापिता सबको १० दिनका पूरा सूतक लगेगा। यदि बच्चा १० दिनके अंदर मर जावे तो मा बापको १० दिनका आशौच होता है सो जन्मके आशौचकी समाप्ति होनेपर समाप्त होता है अर्थात् जो दिन बाकी रहेंगे सो सूतक पालना होगा।

नाम रखनेके पहले बच्चा मरे तो जमीनमें गाड़े तथा नामसंस्कार होनेपर अन्न प्राशनक्रिया होने तक बालकको गाड़े वा दाह करे। दांत निकलने पर यदि मरे तो उसे जलावे। दांतवाले बालकके मरनेका आशौच मा बाप और उसके सगे भाइयोंको १० दिनका, निकटके भाई बन्धुओंको १ दिनका और दूरके भाई बन्धुओंको केवल स्नान करना चाहिये। चौथी पीढ़ी तक निकटके और उससे आगे वालोंको दूरके कहते हैं।

चौलकर्म याने जिसका मुंडन हो गया हो ऐसे बालकके मरनेपर माबाप और सगे भाइयोंको १० दिन, निकटवालों-को ५ दिन और दूर वालोंको १ दिनका आशौच होता है। उपनीति प्राप्त याने जनेऊ संस्कार जिसका हो गया है ऐसे बालक (८ वर्षसे ऊपर) के मरनेपर मा बाप, भाई व निकटके भाइयोंको १० दिन और पांचवीं पीढ़ीवालोंको ६ दिन, छठीको ४ दिन, ७ वींको ३ दिनका आशौच होता है, इसके आगे वाले स्नान मात्रसे शुद्ध होते हैं।

जन्म और मरणके आशौचमें यह फर्क है कि बालककी नालि काटनेके बाद बालकको जीते हुए उसके बाप या भाई वस्त्र व सुवर्ण आदिका लौकिक दान कर सक्के हैं और इनको लेनेवाले भी अशुद्ध नहीं होते।

बालक जन्मे तब माताको १० दिन तक किसीका मुख नहीं देखना चाहिये। पीछे यदि पुत्र हो तो २० दिन तक और पुत्री हो तो ३० दिन तक गृह कार्य्य न करे। एक आशौच होते २ दूसरा हो तो उसीमें गर्भित हो जाता है। यदि एकके बाद दूसरा हो तो दूसरा पूरा पालना होगा।

देशान्तरमें गये हुए पुत्रको अपने माता व पिताका मरण जिस दिन सुन पड़े उससे १० दिन तक पातक मानना पड़ेगा। देशान्तरसे मतलब यहां नदी व पहाड़ बीचमें आ जानेसे या भाषाभेद हो जाने से है अथवा ३० योजन याने १२० कोस दूर जो क्षेत्र हो उसे देशान्तर कहते हैं। ऐसा ही १० दिनका आशौच परदेशमें स्थित पति या पत्नीको होगा जिस दिन एक दूसरेकी मृत्युको सुने। यदि माताके १० दिनके आशौचके अन्दर पिताका मरण हो जावे तो मरनेके दिनसे १० दिन तक आशौच मानना होगा। यदि दोनों माता पिताओंका मरण एक ही दिन होवे या सुने तो दोनोंका केवल १० दिन तक ही आशौच रहेगा।

जिस दिन आशौच समाप्त हो उस दिन स्नान करना चाहिये। यदि कोई ज्वरादिसे पीड़ित हो तो उसके बदलेमें

कोई निरोगी मनुष्य उस रोगीको जितने दिनका आशौच हो उतनी वार स्पर्शकर करके स्नान कर ले तो वह रोगी शुद्ध हो जावे। यदि कोई रजस्वला स्त्री बुखार आदिसे पीड़ित हो और स्नान करना उसके लिये हानिकारक हो तो चौथे दिन कोई स्त्री उस रजस्वलाको १० या १२ वार छू२ कर स्नान करे, अन्तमें अपने व रजस्वला स्त्रीके कपड़े निकालके स्नान करे तो दोनों शुद्ध हों। जो कोई विष शस्त्रादिसे अपघात करके मर जावे तो वह नर्कका पात्र है। उसके मृतक शरीरको राजाकी आज्ञासे जलाना चाहिये तथा एक वर्ष पूर्ण होने पर उसका प्रायश्चित्त शांतिविधान व प्रोषधोपवास आदिसे करना योग्य है। गर्भिणी स्त्री यदि ६ माससे पहलेके गर्भ सहित मरे तो दग्ध कर दें। यदि छह माससे अधिक हो तो स्मशानमें उदर काट बालकको निकाल फिर दग्ध करे।

कन्या मरण आशौच।

चौलसंस्कार याने मुंडन विधान होनेके पहले यदि कोई कन्या मरे तो मा, बाप, भाई, बन्धु केवल स्नान कर लेवें। मुंडन होनेके बाद व्रत लेने तक याने ८ वर्ष तक १ दिनका, इसके आगे विवाह होनेके पहले तकका ३ दिनका सूतक है। विवाहके पीछे माता पिताको दो दिन एक रात्रिका आशौच है; परन्तु भाई बन्धु केवल स्नान करे, पति और उसके भाई बन्धुओंको १० दिनका आशौच होगा। अपने बापके घरमें यदि विवाहित कन्या प्रसूत प्राप्त हो या मरण कर जावे तो

माता पिताको ३ दिनका और शेष कन्याके बन्धु आदिकको १ दिनका आशौच होगा। कन्याके माता पिता कन्याके घरमें वा अन्य कहीं मर जावें और १० दिनके अंदर कन्या सुन ले तो ३ दिनका आशौच होगा। बहनके घरमें भाई व भाईके घरमें बहन मरे तो एक दूसरेको ३ दिनका आशौच है, यदि अन्य कहीं मरे तो २ दिन और एक रात्रिका आशौच होगा। बहनका सूतक भाईकी स्त्रीको तथा भाईकी स्त्रीका सूतक बहनके पतिको नहीं होता, किन्तु बहनके पतिको अपनी स्त्रीके भाई बंधुका मरण सुनने पर, तैसे ही भाईकी स्त्रीको अपने पतिकी बहनका मरण सुनने पर केवल स्नान करना चाहिये।

अपनी माताका पिता या उसकी माता याने नाना, नानी मामा या मामी, लड़कीका पुत्र, बहनका पुत्र, बापकी बहन, माताकी बहन इनमें से कोई यदि उसके घरमें मरे तो ३ दिनका आशौच है। यदि बाहर कहीं भी मरे तो २ दिन एक रात्रिका है तथा १० दिन बीतने पर यदि सुना जाय तो केवल स्नान मात्र है।

व्रती, दीक्षाप्राप्त, यज्ञकर्म करने वाले तथा ब्रह्मचारी इनको आशौच नहीं होता, केवल पिताके मरणका ही आशौच होता है।

आचार्य, गुरु, शिष्य, मित्र, धर्मात्मा सहपाठी, अध्यापक इनके मरण होनेका आशौच स्नान मात्र है।

यदि कोई महान् धम कार्य्य प्रारंभ कर लिया हो व एकदम बहुत भारी द्रव्यकी हानि हो तो हरएक शौच तुरंत ही शुद्ध हो सक्ता है।

अध्याय चौबीसवां।



समयकी कदर।

मनुष्योंको उचित है कि अपनी आयुको बहुत ही अमूल्य समझें। हमारी आयु समयोंसे मिल करके बनी है। कालका एक २ समय बीतता चला जाता है। हमारा यह कर्तव्य है कि कोई समय विना उपयोगके न जाने देवें, हमें हरएक समयमें उपयोगी काम करना चाहिये।

मनुष्य मात्रके जीवनकी दो व्यवस्थाएं हो सक्ती हैं। एक मुनि सम्बन्धी दूसरी गृहस्थ सम्बन्धी। जो मनुष्य मुनि अवस्थामें रहते हैं वे अपने समयकी बड़ी भारी सम्हाल रखते हैं, रात्रि दिन संयमके साधनमें समयको विताते हैं। श्रीदशलाक्षणी पूजाकी रैधूकविकृत प्राकृत जयमालाके इस पदके अनुसार कि " संयम विन घड़िय मयत्थ जाहु " अर्थात् संयमके विना एक घड़ी बेकार न जावे वे मुनि अपने धर्मकी रक्षाके समान समयकी रक्षा करते हैं। रात्रि दिनमें शयन भी बहुत ही कम करते हैं, शेष समय ध्यान, स्वाध्याय व आवश्यक क्रियाओंके करनेमें विताते हैं। इसी तरह हरएक गृहस्थको चाहे वह श्रेणीयुक्त हो या पाक्षिक हो या अव्रत श्रद्धालु हो या श्रद्धाके सन्मुख मिथ्यादृष्टी हो अपना समय व्यर्थ नहीं विताना चाहिये। अपनी २ पदवीके अ-

नुकूल लौकिक और धार्मिक कार्योंके किये जानेका समय विभाग कर रखना चाहिये और कोई विशेष कारणके अभावमें उसी तरह नित्य प्रवर्तन करना चाहिये । ऐसे खोटे व्यसनोंकी आदत हरगिज़ नहीं रखनी चाहिये जिससे समय तो व्यर्थ जावे ही और घातेमें अपने शरीरका बल, धन, और धर्म भी नष्ट हो जावें । इसलिये गृहस्थको जुएके खेलसे, सर्व प्रकारके नशोंसे और खोटी कहानी किस्सोंके पढ़नेसे व खोटे खेल तमाशोंके देखनेसे अपनेको सदा बचाना चाहिये । जो लोग रुपये पैसेका दाव लगाकर व योंही तास गंजीफा, सतरंज खेलकर अपने जीवनके भागका विनाश करते हैं वे अपने अमूल्य समयके खोनेके सिवाय अनेक लौकिक और पारलौकिक व्याधियोंको प्राप्त होते हैं । जो लोग भांग, तम्बाकू, चरस, गांजा अफीम आदि किसी भी नशेके खाने पीनेकी टेव डाल लेते हैं उनका बहुमूल्य काल ही वृथा नहीं जाता, किन्तु वे अपने शरीरके साथ आप ही शत्रुता बांध लेते हैं । जो लोग खोटे काम कथामें लीन उपन्यासोंकी बहार देखते व ऐसे ही शृंगार रससे भरे खेल तमाशे देखते हैं उनकी बहुतसी जिन्दगी वृथाके विचारोंमे उलझ जाती है और बहुधा ऐसा हो जाता है कि वे अपनी सारी जिन्दगीके लिये इश्कके बीमार बन जाते हैं । धन, धर्म व यशको गमाकर परलोकमें दुःखके भाजन बनते हैं । अतएव वृथाके हानिकारक कार्योंसे मुंह मोड़ फायदेमन्द दुनियवी व धार्मिक कामोंके लिये अपनी आयुके एक २ भागको विताना

चाहिये । हमारी आयुका एक भाग वह सूक्ष्म समय है जिसका असंख्यात गुणा काल एक पलक मारने मात्रका होता है ।

एक मामूली गृहस्थको मामूली ऋतुमें अपना समय विभाग इस प्रकार करना योग्य है:—

समय		कार्य्य
सबेरे	५ बजेसे ६ तक	भगवत्भजन व विचार
,,	६ से ६॥ तक	शारीरिक क्रिया व व्यायाम
,,	६॥ से ८॥ तक	मंदिरजीमें पूजन, स्वाध्याय
,,	८॥ से ९॥ तक	पत्रादि व मामूली गृहस्थकार्य्य व कोई विद्या व कलाका अभ्यास
,,	९॥ से १० तक	भोजन
,,	१० से ४॥ तक	आजीविकाका उपाय ।
मध्य	१२ से १२॥ तक	आराम व भगवत्भजन
,,	४॥ से ५ तक	शारीरिक क्रिया
,,	५ से ५॥ तक	भोजन
,,	५॥ से ६ तक	शुद्ध हवामें साधर्मी मित्रसहित टहलना
,,	६ से ७ तक	भगवत्भजन व विचार
रात्रिको	७ से ९ तक	धर्मसेवन स्वाध्यायादि या आजीविका साधनका शेष कार्य्य
,,	९ से १० तक	स्त्री पुत्रादिकोंसे वार्तालाप व शिक्षाप्रदान
,,	१० से १०॥ तक	किसी उपयोगी पुस्तकका विचार
,,	१०॥से ५ तक	शयन

हरएक मनुष्यकी स्थितिके अनुसार कुछ फेर फारसे भी समय विभाग हो सक्ता है। परन्तु खयाल यह रखना चाहिये कि हम केवल ६ घंटा शयन करें तथा मध्यके कार्योंके लिये जो समय नियत करें उस समयमें हम उन्हीं कार्योंकी ओर दिल लगावें और यदि उन कार्योंके बीचका समय बचे तो उसका भी उपयोग करें । उसके उपयोगके लिये हमको चाहिये कि हम लौकिक तथा पारलौकिक याने धार्मिक समाचार पत्र मंगाते रहें व नई मुद्रित पुस्तकें लेते रहें और उनको अपने बचे हुए समयमें पढ़ते रहें व कोई उपयोगी पुस्तक लिखते रहें।

मामूली गृहस्थ चित्त प्रसन्नार्थ गाना बजाना सीखकर उसके द्वारा श्रीजिन गुण गानादिसे अपना और दूसरोंका मन प्रफुल्लित कर सक्ता है। आलस्य, प्रमाद, नींद व वृथाकी बकवादमें अपना समय विताना बड़ी भारी भूल है । यदि प्रमाद वश किसी दिनका कोई समय व्यर्थ हो जावे तो उसका बहुत पश्चाताप करना चाहिये और आगामी ऐसा न हो सके इसका ध्यान रखना चाहिये। जैसे हमको अपने गांठके रुपये पैसेकी सम्हाल होती है और इसलिये रोज उसकी विधि मिलाते हैं—ऐसे ही हमको अपने समयकी सम्हाल रखनी उचित है। पैसा तो खोजानेपर व यों ही गायब हो जानेपर फिर भी कमा लिया जा सक्ता है; परन्तु समय जो चला जाता है वह अनन्तकालमें भी लौट करके नहीं आता है।

अध्याय पच्चीसवां.

जैनधर्म एक प्रकार है और वही सनातन है।

कोई भी कार्य्य हो उसका कारण एक ही प्रकारका होता है। भिन्न २ कारण भिन्न २ कार्य्योंकी उत्पत्ति नहीं करते हैं। जबकि साधने योग्य आत्माका रागादिरहित शुद्ध स्वभाव है अर्थात् परमात्म अवस्था है तब उसकी सिद्धिका उपाय भी एक शुद्ध वीतराग स्वरूपकी भावना, उसका अनुभव तथा उसका ध्यान है। शुद्ध वीतराग स्वरूपका निर्मल ध्यान ही आत्मशुद्धिका निकट साधन है। इसी अभिप्रायसे ही अमृतचंद्र आचार्य्यने समयसार नाटकके कलशोंमें यह कहा है:–

एषज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्यताम् ॥ १५ ॥

भावार्थ–यह ज्ञानका समूह आत्मा ही साध्य साधक भावसे दो प्रकार तथा वास्तवमें एक प्रकार सिद्धिके इच्छुकोंसे उपासना करने योग्य है।

आत्माके शुद्ध स्वभावका श्रद्धान ज्ञान और उसीमें आचरण ये तीन रूप एक समयमें होने वाली क्रिया ही आत्माकी शुद्धताका कारण है। अभ्यासीके लिये बाह्य अवलम्बनोंके विना ऐसी आत्म क्रियाका पा लेना कठिन है। इस लिये

वे अलम्बन याने सहारे भी ऐसे ही होने चाहिये जो वीत-राग–विज्ञानता रूप आत्माको परिणमन करानेमें परम प्रबल कारण हों । सर्वसे प्रबल कारण मुनिधर्म है, जोकि सर्व परिग्रह त्यागरूप है, जहां वस्त्र मात्र भी नहीं रक्खा जाता। दिशाओंको ही वस्त्र मान कर बालकके समान निर्भय और बेपरवाह रहा जाता है । जो पर्वत, बन आदि एकान्त स्थानोंमें रह ध्यान करते हैं भोजन मात्रके लिये बस्तीमें आ भोजन ले लौट जाते हैं। जबतक इस अवस्थाका निमित्त न मिलायेगा तबतक कदापि मोक्ष–साधक शुद्धताको नहीं पासक्ता। इसीलिये दिगम्बर आचार्य्य कथित ग्रन्थोंमें तो इस अवस्थाकी उत्तमत्ताका वर्णन है ही, परन्तु श्वेताम्बर आचार्य्योंके ग्रन्थोंमें भी इस मुनिके दिगम्बर भेषकी ही महिमा लिखी है। देखो, आचारंग सूत्र टीका प्रो० रावजीभाई देवराज सं० १९६२ पत्रा ९७ में.

एयं खुमुणी आयाणं सया सु अक्खाय ।
धम्मे विधूतकप्पे णिज्झो सइत्ता ॥ ३९९ ॥

अर्थ–हमेशा पवित्र पने धर्म साचवनार अने आचारने पालनार मुनि धर्मोपकरण सिवाय सर्व वस्त्रादिक वस्तुनो त्याग करे छे.

अदुवातत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति तेउफासा फुसंति दंस मसग फासा फुसंति, एगयरे अन्नयरे विरूप रूवे फासे अहिया सेति अचेले लाघवं आगम माणे तवेसे अभि सन रागाए भवति ॥ ३६१ ॥

अर्थ—वस्त्ररहित रहेतां तेवा मुनियोंने कदाच बारंबार शरीरमां तणखलाके काटा भराया करे अथवा ताड, वायु अथवा ताप लागे अथवा दंसाके मच्छो करडे ए विगेरे अणगमता परीषहो सहेता रहे छे एम कर्याथी तप करेलुं गणायछे ॥ ३६१ ॥

श्रीमहावीर स्वामी नग्न रहे। परीसह सही यह वर्णन आचारांग सूत्र अध्याय ९ पत्रा १३५–१४१ में हैं।

अहासुयं विदिस्सामि—जहासे समणे भगवंउट्ठाय—संखाय तंसि हेमंते—अहणापव्व इए रीयत्था ॥ ४६२ ॥

अर्थ—हे जंबू ! मैं जेम सांभल्यू छे तेम कहूं छूं कि श्रमण भगवान् (महावीर) दीक्षा लई ने हेमंत ऋतुमां तरतज विहार कर्यो.

णोचे विमेण वत्थेण, विहिस्सामितं सि हेमंतो से पारए आवकहाए एवं खुअणु धम्मियं तस्स ॥ ४१३ ॥

अर्थ— (तेमने इंद्रे एव देव दूष्य वस्त्र आपेलु हतुं पण) भगवाने नथी विचार्यूं के ए वस्त्र ने हूं शियालामा पहेरीश ते भगवान तो जीवित पर्यंत परीषहोंना सहनार हता मात्र बधा तीर्थंकरों ना रिवाजने अनुसरीने तेमने (इंद्रे आपेलुं) वस्त्र धर्युं हतुं ॥ ४६३ ॥

संवच्छरं साहियं मास। जंणरिक्कासि वत्थगं भगवं।
अचेलए ततो चाई। तं वोसज्ज व्यत्थ मणगारे ॥ ४६९ ॥

अर्थ—भगवान लगभग तेरह महिना लगते वस्त्र स्कंधपर धर्युंहतुं पछीते वस्त्र छाड़ीने वस्त्ररहित अणगार थया ॥ ४६५ ॥

भगवनं च एव—मन्नेसीं सो वहिएहु लूप्यती वाले ।

कम्मंच सव्वसो णच्चा । तं पडिया इक्खे पावगं भगवं॥ ४७५॥

अर्थ—अने एम भगवान महावीर देवे विचारीने जाण्युंके उपधि (उपधि बे प्रकारनी छे, द्रव्योपधि तथा भावोपधि) सहित अज्ञानी जीव कर्मों थी बंधायछे माटे सर्व रीते कर्मोने जाणीने ते कर्मों तथा तेना हेतु पापने भगवान त्याग करता हता ॥ ४७५ ॥

सिसि रसि अद्धपडिवन्ने । तं वोसज्ज वत्थमणगारे ।

पक्षारितुवाहू परकमें णो अवलं विपाण कंधंसि ॥ ४८२ ॥

अर्थ—भगवान बीजे वर्षे ज्यारे अधी शिशिर ऋतु बेठी त्यारे त (इन्द्रदत्त) वस्त्र ने छांड़ी दई ने छूट वाहु थी विहार कर्या हता (अर्थात्) ताड़ना माटे वाहुने संकोचता (नहिं) तथा स्कंध ऊपर पण वाहु धरता नहिं ॥ ४८२ ॥

ऐसा ही प्रवचनसारोद्धार भाग ३ छपी सं० १९३४ सफा १३४ में कहा है कि " आउरण वज्जियाणं विसुद्ध जिण-कप्पियाणंतु " अर्थात् जे आवरण एटले कपड़ा वर्जित छेते स्वल्योपाधि पणेकरी विशुद्ध जिनकल्पी कहनाय छे।

मुनि धर्मके आलम्बनोंको जबतक न मिला सके तबतक वह धर्मात्मा जीव गृहस्थ धर्मके आलम्बनोंको मिलावे, जिनका वर्णन पहले पाक्षिक—श्रावकसे ले ग्यारहवीं प्रतिमाके लंगोट मात्र ऐलकके भेद रूपसे कहा गया है। इनको बढ़ाता हुआ तरकी करता चला जावे। जैसे २ बाहर आचरणमें तरकी

करेगा तैसे २ ही अंतरंग परिणामोंमें कषायोंका घटाव और विशुद्ध भावोंका झलकाव होगा। गृहस्थी लोग अपनेमें इसी भावके लिये वीतराग ध्यानाकार प्रतिमाको पुनः पुनः देख कर व उसके द्वारा वीतराग भावोंके गुणोंका अनुभव कर शुद्ध स्वरूपकी भावनाका मनन करते हैं। वास्तवमें कोई भी प्रतिमा हो वह सामान्यतासे दर्शकके भावोंको उन्हीं भावोंमें पलटा देगी जिन भावोंकी वह झलकाने वाली हो। वीर रसकी वीर रसको, शृंगार रसकी शृंगार रसको, कामरसको कामरसको ऐसे ही वैराग्य रसकी प्रतिमा वैराग्यको पैदाकर सक्ती है। इसलिये गृहस्थीके लिये सर्व प्रकार शृंगार व वस्त्र अलंकारसे रहित परम शत ध्यानाकार अरहंतकी प्रतिमा वीतराग भावोंके लिये वड़ा भारी आलम्बन है।

एक मुनि २८ मूल गुणोंमें नित्य ६ आवश्यक कर्मोंको करता है उसी तरह गृहस्थ छह कर्म नित्य करता है। १. श्रीजिनेन्द्रदेवकी उनकी प्रतिमाके द्वारा पूजन; २. परिग्रहरहित निर्ग्रन्थ साधुकी उपासना; ३. जैन शास्त्रोंका अभ्यास व जैन शास्त्रोंके द्वारा तत्त्वोंका मनन; ४. मन और इंद्रियोंको अपने आधीन रखना तथा सर्व प्राणियोंपर दया-भाव रखना; ५. अपनी इच्छाओंको रोकनेके लिये सामायिक व जपद्वारा तपका करना; ६. परका उपकार करनेके लिये दानका करना। ऐसा ही कहा हैः—

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः ।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्म्माणि दिने दिने ॥

यही आलम्बन आत्माके शुद्ध स्वभावकी भावना कराने वाले हैं । अतएव इन आलम्बनों करके सहित यह जिन धर्म अनादि कालसे सनातन है ।

यह लोक अर्थात् जगत् छह द्रव्योंका समुदाय (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश) है । ये छहों द्रव्य अनादि अनंत हैं। क्योंकि प्रत्यक्षमें किसी भी नए द्रव्यकी न उत्पत्ति दीखती है न विनाश; जो कुछ है उसीकी अवस्थाओंका पलटन है—वही देखनेमें आता है। जैसे बीजके साथ अन्य पदार्थोंके सम्बन्धसे वृक्ष होता है, वृक्षके टुकड़े करनेसे काष्ठ होता है, काष्ठको जलाने से कोयला और कोयलोंको जलानेसे राख होती है । राख हवामें उड़कर व कहीं जमकर किसी न किसी रूपमें पलट जाती है ।

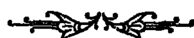
जब असत्की उत्पत्ति नहीं देखी जाती तब जो कुछ है वह सत् रूपसे ही है और ऐसा ही था व ऐसा ही रहेगा यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। जब लोक अनादि और आत्मा अनादि, तब आत्माका स्वभाव और परिणमन भी अनादि है। आत्माका स्वभाव यद्यपि शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य्य और सुखरूप है तथापि अनादि कालसे यह विभाव अवस्थामें दीख रहा है तथा परिणमन स्वभाव होनेसे यह विभा-

१. इनका वर्णन द्वितीय भागमें किया जा चुका है ।

वपना घटते २ स्वभावपना हो सक्ता है—यह भी प्रगट है। अतएव आत्माका परमात्मा होना व उसके लिये यत्नका किया जाना भी अनादि है।

परमात्माका स्वरूप वीतराग ज्ञानानंदमय पर द्रव्यके कर्त्ता भोक्तापनेसे रहित है तथा उसका यत्न भी ज्ञान वैराग्यमय वीतराग धर्मरूप है तथा ऐसा ही जिन धर्म मानता है। इसलिये जिन धर्म किसी खास समयमें नहीं जन्मा, किन्तु अनादि कालसे चला आया—सनातन धर्म है। जिन धर्मका अर्थ "रागद्वेषान् अजयत् सः जिनः" ऐसा जो वीतरागी आत्मा उसीका धर्म कहिये स्वभाव है। पस जब आत्मा अनादि तब उसका स्वभाव भी अनादि, इसलिये यह जिन धर्म अनादि कालका सनातन है।

अध्याय छब्बीसवां।



जैन गृहस्थ धर्म राज्यकीय और सामाजिक उन्नतिका सहायक है न कि बाधक।

देश या समाज कोई खास व्यक्ति नहीं है, किन्तु अनेक मनुष्योंके संगठनको ही देश या समाज कहते हैं। इसलिये अनेकोंकी उन्नति देश या समाजकी उन्नति है।

जैन गृहस्थ समयका दुरुपयोग और आलस्यको अपना शत्रु समझता है। वह धर्म, अर्थ और काम तीनों पुरु-

र्थोको एक दूसरेके साधनमें विना हानि पहुंचाये न्यायपूर्वक सम्पादन करता है।

राज्यकीय उन्नति उस उन्नतिको कहते हैं कि जिससे देशकी प्रजा बलवान, विद्वान्, सुशील, सुआचरणी, धर्मात्मा, सत्यवादी, परोपकारी, धनयुक्त और कर्तव्यनिष्ठ हो। प्रजाके भीतर ऐक्यता, स्वास्थ्य, व्यापार, कलाकौशल्य, धनसाम्राज्य, सत्यव्यवहार, न्यायरूप विषय सेवनमें सन्तोष, परोपकारता और धर्मात्मापना बढ़ना ही उन्नतिका चिन्ह है।

यदि किसी राज्यकी प्रजामें विद्या, कला व धन तो बढ़ता जाय; परन्तु स्वास्थ्य, सन्तोष, सत्य–व्यवहार घटता जाय और इन्द्रिय विषयोंकी तल्लीनता व क्रोध, मान, माया, लोभ व धर्मसे अरुचि बढ़ती जाय तो वह उन्नति प्रजाकी दिखलावेकी उन्नति है–सच्ची राज्यकीय उन्नति नहीं।

राज्यकीय उन्नतिकी एकदेशीय उन्नतिका नाम सामाजिक उन्नति है।

एक देशमें सर्व प्रजा एक ही सामाजिक बंधनमें बंधी हो ऐसा प्रायः होना कठिन है। अतएव भिन्न २ एक नियमसे वर्तनेवाले समूहोंको समाजें कहते हैं।

यदि समाजके लोग ऐक्यता व सत्यतासे रहते हुए एक दूसरेका उपकार करें, विद्याका प्रचार करें, परस्पर धर्म, स्वास्थ्य और सन्तोषकी रक्षाके हेतु जन्म, मरण, शादीके

योग्य नियमोंका पालन करें तथा जिससे समाजमें कर्जा बढ़े, दोष फैले, निर्धनता आवे, शरीर बिगड़े व विषय परायणता की आदत पड़ जावे ऐसे कुनियमोंको रोक देवें तो अवश्य समाजकी उन्नति हो।

जैन गृहस्थियोंके ४ वर्ण हैं:–ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र। ये चारों ही वर्ण अनेक प्रकारकी कला व विद्याएं यथायोग्य सीख सक्ते हैं। परन्तु आजीविकाका साधन क्षत्रीके लिये देशकी रक्षा अर्थात् असिकर्म, वैश्यके लिये मसि (लिखना) कृषि और वाणिज्य तथा शूद्रके लिये विद्या व शिल्प है। ब्राह्मणोंके लिये परोपकारतासे पठन पाठन धर्माचरण करना कराना है व जो दान अन्य तीनों वर्णवाले भक्तिसे देवें उनको लेकर अपना व अपने गृहका पालन करना है।

जब क्षत्री जैनधर्मी होगा तो श्रीरामचंद्रकी भांति निर्बलोंकी रक्षा करेगा, प्रजाको सुखी रखनेके लिये अपना शारीरिक स्वार्थ भी त्याग देगा (जैसे श्रीरामने लोगोंको अधर्मकी प्रवृत्तिसे बचानेके लिये अपने दिलमें निश्चय रखते हुए भी कि सती सीता पतिव्रता है उसको घरसे निकाल दिया) तथा प्रजाके कष्टको दूर करने व धर्मात्माओंकी रक्षाके हेतु युद्ध भी करेगा। परन्तु वृथा किसीके प्राणोंको न दुखाएगा और न बेमतलब शत्रुके प्राण लेगा, जैसा श्रीरामने राजा सिंहोदरको जब वह आधीन हो गया तब छोड़ दिया और बहुत सन्मानित किया।

जैनी राजा न केवल मनुष्योंकी रक्षा करेगा, परन्तु पशुओंकी भी रक्षा करेगा। जैसा कि राजा चंद्रगुप्त जैनी राजाके इतिहाससे प्रगट है कि उसने पशुओंके लिये स्थान २ पर पशुशालाएं खुलवा दी थीं तथा रोगी पशुओंकी चिकित्साका पूरा प्रबन्ध किया था। जैनी राजा तुरंत उस हिंसाको बन्द करा सक्ता है जो वृथा पशुओंका बलिदान दे कर धर्मके नाम से की जाती हो तथा मांस व मादक वस्तुओंके प्रचारको बन्द करा कर शुद्ध भोजन पानकी प्रवृत्ति कराए गा। जैनी राजा अपने आपको प्रजाका सेवक समझेगा व जिस तरहसे प्रजामें धन, बल, स्वास्थ्य, सत्यता व धर्म बढ़े वैसा उपाय कर देगा।

इसी तरह जैनी वैश्य नीतिपूर्वक व्यापार करता हुआ असत्य बोलकर व चोरी करके किसीके प्राणोंको नहीं दुखाएगा, सदा दयाको सामने रखता हुआ दूसरोंका मन दुखाकर द्रव्य पैदा करूं—यह बात कभी नहीं ठानेगा। जिससे कभी कुछ कर्ज़ लेगा उसको उसका कर्जा ठीक कहे हुए समयपर अदा कर देगा, धनका लाभ कर परोपकारता में खर्च करेगा; दीन, दुखी, अनाथ पुरुष, स्त्री और बालकोंकी तो रक्षा करे ही गा; किन्तु पशुओंकी भी पालना करेगा। ऐसे गृहस्थियोंसे जगत्को न तो दुःख पहुंचेगा न अदालती मुकद्दमें उठेंगे। सदा ऐक्यता और सन्तोष उनके मनको सुखी रक्खेगा।

जैनधर्मी शूद्र भी अपना कार्य्य परिश्रमसे करता हुआ इस बातका ख्याल रक्खेगा कि दूसरोंका मन पीड़ित न करूं। सत्यता और सन्तोषको अपना भूषण बनाता हुआ कभी लड़ाई झगड़ा न करेगा और सुखसे जीवन बिताएगा। मूढ़ताईमें पड़ जैसे आज कलके शूद्र अपनी बची बचाई कमाई देवियोंको बलि चढ़ाने व नदीमें स्नान करनेसे पुण्य मानकर यात्रा करनेमें बिता देते हैं अथवा तरह२ के नशे खानेमें बरबाद कर देते हैं—ऐसे नहीं करेगा। उस शूद्रका जीवन भी स्वपर लाभकारी हो जायगा, वह पशुओंको कभी भी मांसाहारी, कसाई आदिकोंके हाथ नहीं बेचेगा, करोड़ों गाय, भैंसें, बकरी, भेड़ें जो शूद्रोंकी मूढ़ताईसे मारी जाती हैं अपने प्राणोंको उस समय बचा सकेंगीं, यदि शूद्र लोग जैनधर्म पालने लग जावें। अतएव इस बातके विशेष कहनेकी जरूरत नहीं। यह तो स्वयं सिद्ध है कि जैन धमके आश्रयसे राजा व प्रजा सब उन्नतिके सच्चे मार्गपर चलेंगे और लौकिक साताके साथ २ आत्मानुभवरूपी आनन्दको भी भोगेंगे। इसलिये यह जैन धर्म राज्यकीय और सामाजिक उन्नतिका हर तरह सहायक है—बाधक नहीं।

अध्याय सत्ताइसवां।

जैन पंचायती सभाओंकी आवश्यक्ता।

समाजमें सुनीति और सुरीतिका प्रचार हो तथा कुनीति

और कुरीतिका विनाश हो इसके लिये हरएक मंडलीमें पंचायती सभाओंकी मजबूती होनी चाहिये । इस पंचायती सभाकी एक अंतरंगसभा हो, जिसके ५ सभासद ऐसे हों जो गृहीसिता याने गृहस्थाचार्य्यके गुणोंसे विभूषित हों। हरएक विषयको यह अंतरंगसभा जांचकर व विचारकर सर्व पंचायतसे मंजूर करावे। आजकल गृहस्थी लोग जरासी तकरारमें अदालत दौड़ जाते हैं, इससे महा हानि उठाते हैं। जैसे अगर किसीको किसीसे सौ रुपया लेने हों तो लेनेवाला और देनेवाला दोनों दो दो सौ अदालतमें खर्च कर देते हैं अथवा किसी जायदादकी हककी मिलकियत तो एक लाखकी हो और करीब १ लाखके अदालती झगड़ोंमें ही लगा देते हैं, इससे सिवाय मूर्खताके और कुछ पल्ले नहीं पड़ता। यह सब माल सम्बन्धी झगड़े पंचायतसे तय होना चाहिये, ताकि खर्च तो कुछ न पड़े और फैसला सुगमतासे हो जावे। आजकल यह भी देखनेमें आता है कि कोई २ लोग ऐसे २ निंद्यकर्म कर बैठते हैं कि जिससे वे दंड भोगे विना एक नियमरूप समाजके साथ खान पान व्यवहार करनेके अधिकारी नहीं हो सक्ते। परन्तु पंचायतोंकी शिथिलतासे व पंचायतोंमें धर्मात्मा परोपकारी मुखियाओंके विना उन ऐसे लोगोंको कुछ प्रायश्चित्त नहीं दिया जाता और न रोका जाता है; पस निंद्यकर्म समाजमें बढ़ते चले जाते हैं। इसलिये दृढ़ पंचायतियोंकी अंतरंगसभाके मेम्बर

अपनी समाजके हरएक व्यक्तिकी सम्हाल रक्खे तो समाज में निंद्यकर्मसे भय बना रहे और हर एक काम जो पंचायती करना चाहे वह सुगमतासे हो सके, अदालतोंसे लाखों रुपये बचें और कष्टोंसे रक्षा हो। इस पंचायती सभाके अंतरंग मुख्य सभासद ज्ञानवान समझदार होने चाहिये जो अपना फैसला अदालतकी अपेक्षा भी बढ़िया कर सकें। ये पंचायतें ही समाजमें विद्योन्नति आदिके अनेक उपायोंसे समाजका उपकार कर सक्ती हैं।

अध्याय अट्ठाइसवां।

सनातन जैनधर्मकी उन्नतिका सुगम उपाय।

इस पवित्र जैनधर्मकी उन्नतिका सर्वसे सुगम उपाय यह है कि पढ़े लिखे गृहस्थियोंको ब्रह्मचारी होकर देशाटन करना चाहिये। जबतक समाजको अपना कर्तव्य विदित न हो तबतक यह पृथा होनी चाहिये कि शास्त्र-ज्ञाता गृहस्थ अपने २ पुत्रोंको काम सौंप स्त्रीको त्याग ब्रह्मचारी हो भ्रमण करते हुए उपदेश करें तथा स्वाधीनतासे अपना खर्च आप चला सकें इसके लिये कुछ रुपया बैंकमें जमा करा देवें। ऐसे लोग किसीसे कहीं कुछ याचना न करें, केवल परोपकार-वृत्तिधार कष्ट सहें और जैनधर्मका प्रचार करें। आप खूब ध्यानके साथ ७ वीं प्रतिमा तकके नियमोंके पालनेका अभ्यास करें, क्योंकि जिसका चारित्र ठीक होगा उसीका असर समाजपर पड़

सक्ता है। ऐसे ब्रह्मचारी दस पांच नहीं सौ दो सौ पांच सौकी तुरंत आवश्यक्ता है जो ग्राम २ घूमें और लोगोंका कल्याण करें। अपने आत्मानुभवके रससे जीवोंको तृप्त करें। जबतक किसी धर्मके उपदेष्टा बहुतायतसे नहीं होते तबतक उसका प्रचार हरगिज़ नहीं हो सक्ता। जैसे आजकल श्वेताम्बरी साधु व ढूंढिये साधुओंकी अधिकता है ऐसे ही ब्रह्मचारियोंकी अधिकता होनी चाहिये। वर्तमानमें दिगम्बर मुनियोंका संघ अधिकतासे होकर भ्रमण करे—यह बात बननी अभी कष्टसाध्य है, परन्तु ब्रह्मचारी गण वर्तमान द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार देशाटनकर जगत्का बहुत बड़ा उपकार कर सक्ते हैं और इस सनातन पवित्र जैनधर्मके प्रचारका सर्वसे सुगम यही उपाय है।

अध्याय उन्तीसवां।

पानी व्यवहारका विचार।

श्रावकको पानी कैसा काममें लेना चाहिये इस विषयपर विचार करना अतिशय जरूरी है।

कुछ संस्कृत शास्त्रोंमें पानी छानने, प्राशुक करने आदिके जो श्लोक देखनेमें आये वे नीचे दिये जाते हैं:—

(यशस्तिलक चम्पूकाव्य लम्ब ७ पत्रे ३३४.)

गृहकार्याणि सर्वाणि दृष्टि पूतानि कारयेत्।

द्रव द्रव्याणि सर्वाणि पट पूतानि योजयेत् ॥
वातातपादि संस्पृष्टे भूरितोये जलाशये ।
अवगाह्य आचरेत् स्नान मतोऽन्यद्गालितं भजेत् ॥

अर्थ—घरके काम देख करके करे, सर्व बहती हुई चीजें कपड़ेसे छानकर काममें लेवे। हवा धूप आदिसे छूए हुए गहरे भरे हुए तालाव या नदीके पानीमें स्नान कर सक्ता है। इसके सिवाय छानके काममें लेवे।

मेधावीकृत धर्मसंग्रहश्रावकाचारमें इस भांति है:—

गालितैर्निर्मलैर्नीरैः सन् मंत्रेण पवित्रतैः।
प्रत्यहं जिन पूजार्थं स्नानं कुर्यात् यथा विधिः ॥ ९१॥
सरतां सरसां वारि यद्गाधं भवेत् क्वचित्।
सुवातातात संस्पृष्टं स्नानार्हं तदपि स्मृतम् ॥ ९२ ॥
नभस्वताहतं ग्राव घटी यंत्रादि ताडितम्।
तप्तं सूर्यांशु भिर्वाप्यां मुनयः प्राशुकं विदुः ॥ ९३ ॥
यद्यप्यस्ति जलं प्राशु प्रोक्त लक्षणमागमे ।
तथाप्यति प्रसंगाय स्नायात् तेनाऽद्यनो बुधः ॥ ९४ ॥

अर्थ—छने हुए निर्मल मंत्रसे पवित्रित जलसे रोज जिन पूजाके लिये स्नान करे। नदी व तालावका जल यदि बहुत गहरा हो तथा हवा, धूपसे स्पर्शित हो तो स्नानके लिये योग्य कहा गया है। जो जल हवासे छिन्नभिन्न किया गया हो तथा पत्थरकी घटी व यंत्र वगैरहसे दलमला गया हो व धूपकी किरणोंसे गर्म: हो ऐसे वापीके जलको मुनियोंने

प्राशुक कहा है। यद्यपि आगमके अनुसार यह जल प्राशुक है, तौभी विद्वान् इस जलसे स्नान न करें। क्योंकि अति प्रसंग हो जायगा जिससे अजैनोंकी तरह जैनी भी विना विचारे नदी व तालाबोंमें न्हाने लग जावेंगे।

श्रीअमितिगति आचार्यकृत सुभाषितरत्नसंदोहमें इस प्रकार हैः—

स्पर्शेन वर्णेन रसेन गन्धाद्यदन्यथा वारिगतं स्वभावम्।
तत्प्राशुकं साधुजनस्ययोग्यं पातुं मुनीन्द्रा निगदन्ति जैनाः॥२१४॥
उष्णोदकं साधुजनाः पिवन्ति मनो वचः काय विशुद्धिलब्धम्।
एकान्तत स्तत्पिवतां मुनीनां षड् जीवघातं कथयन्ति सन्त.२१५
हतं घटीयंत्र चतुष्पदादि सूर्येन्दुवाताग्नि करैर्मुनीन्द्राः ।
प्रत्यन्त वातेनहतं वहच्च यत्प्राशुकं तन्निगदन्तिवारि ॥ २१६ ॥

भावार्थ—यदि पानीका स्पर्श, वर्ण, रस, गंध और रूप हो जावे तो वह पानी प्राशुक है और साधुजनोंके पीने योग्य है—ऐसा जैन मुनियोंने कहा है। मन, वचन, कायकी विशुद्धतासे याने अपने विना किसी संकल्पके प्राप्त हुए गर्म जलको मुनिजन पीते हैं। यदि तीनों विशुद्धतामें एक की भी हानि हो तो पीनेवाले मुनिको छह कायके जीवोंके घातका पाप होता है—ऐसा सन्तोंने कहा है। जो पानी घटी से, यंत्रसे व चौपायों आदिसे छिन्नभिन्न किया जावे व सूर्य्यकी किरण व वायु व अग्निके कणोंसे हता जावे व जो वहता हुआ पानी उल्टी ओर की वायुसे हता जाय वह सब पानी प्राशुक है—ऐसा कहते हैं।

पानीके छानने की क्या विधि है? इसका वर्णन किसी भी संस्कृत शास्त्रमें नहीं देखा गया केवल सागारधर्मामृतमें इतना मात्र है:—

मुहूर्त्त युग्मोर्ध्वम् अगालनं वा दुर्वाससा गाल-
नमम्बुनो वा ।
अन्यत्र वा गालित शेषितस्य न्यासोनिपानेऽ
स्यन तद् व्रतेऽर्च्यः ॥ १६ ॥

अर्थात्—दो महूर्तके ऊपर विना छना व मैले खराब कपड़ेसे छना पानी व्रती न पीवे तथा पानी छानकर उसका बिलछन उसी स्थानपर पहुंचा देवे ।

भाषाके श्रावकाचारोंमें जो पानी छाननेकी विधि है सो नीचे दी जाती है:—

बहता हुआ नदी व कूप व तालावका पानी लोटे या डोलसे भरे और दूसरे वर्तनमें विना सूराखदार गाढ़े सफेद दोहरे कपड़ेको रखकर धीरे २ पानी छाने ताकि अनछना पानी बाहर न गिरे । यह कपड़ा दुहरा किये जानेपर ३६ अंगुल लम्बा और २४ अंगुल चौड़ा हो अर्थात् जिस वर्तनमें छन्ना लगावें उसके मुंहसे तीन गुणा चौड़ा हो, छाननेके बाद जो छन्नेमें बचता है उसको बिलछन कहते हैं । इसमें कूड़े करकटके सिवाय वहुतसे महीन त्रस जीव वेगिनती होते हैं, जो एकाएक देखनेमें नहीं आते । एक

डाक्टरसे मालूम हुआ कि एक इञ्चके १० वें भागसे छोटे त्रसजीव होते हैं। इस सर्व बिलछनको उसीमें पहुंचा देना चाहिये जहांसे पानी भरा हो। जिस डोल व लोटेसे पानी भरा जाय उसके नीचे कुंडा लगा रहना चाहिये, ताकि बिलछनको छने पानीसे छननेमेंसे धो उस लोटे व डोलमें करके तथा उल्टी ओर कुंडेमें उस डोरको अटकावे तथा एक छोटीसी लकड़ीकी डंडी मुंहमें अटका लोटा नीचे गेर कर हिला दे तब वह उल्टा हो जावेगा और बिलछन कूएमें गिर पड़ेगा। इस प्रकारका छना पानी एक महूर्त्त याने दो घड़ीकी म्याद रखता है उसीके अन्दर काममें लाया जा सक्ता है। यदि ४८ मिनटका समय हो जावे तो फिर छानके काममें लेता रहे और बिलछन एक वर्तनमें जमा करता रहे और दिन भरका इकट्ठा करके उसी जलके स्थानपर पहुंचा देवे जहांसे पानी भरा था। परन्तु इस छने हुए पानीमेंसे खाली त्रसजीव दूर हुए हैं जलकायिक जीव मौजूद हैं। पानीको जलके जीवोंसे रहित करनेके लिये नीचे लिखी विधि है:—

यदि कषायला पदार्थ जैसे लौंग, मिरच, इलायची, अमली, बारीक राख आदि चीजें डालकर पानीका स्पर्श, रस, रंग व गंध बदल लिया जावे तो यह पानी उस बदले हुए समयसे ६ घंटे तक प्राशुक याने जलकायिक जीवोंसे भी रहित हो जाता है।

यदि छने पानीको गर्म करलें और उबालें नहीं तो १२

घंटे तकके लिये प्राशुक हो जाता है। यदि छने पानीको अधनके समान औंटा लेवें तो २४ घंटेके लिये प्राशुक हो जाता है। इन तीनों तरहके प्राशुक किये हुए जलको उसकी म्यादके अन्दर ही वर्त लेना चाहिये। म्यादके वाद वह छाननेसे भी काममें नहीं आ सक्ता। पानीकी म्यादके विषयमें किसी शास्त्रका जो श्लोक सुननेमें आया सो दिया जाता है:—

"महूर्तं गालितं तोयं प्राशुकं प्रहरद्वयं। कोराहं चतुष्कामं।
च विशेषोष्नं तथाऽष्टकं॥"

अर्थात् छना हुआ दो महूर्त, प्राशुक किया दो पहर, गर्म किया हुआ ४ पहर व विशेष गर्म किया हुआ ८ पहर याने २४ घंटे चलता है।

वर्तमानमें जगह २ नल लग जानेसे जैन अजैनं सर्वका ध्यान नलके पानीके पीनेमें लग गया है, विरले ही पुरुष स्त्री कुए आदिसे पानी लानेका परिश्रम उठाते हैं तथा कोई २ कहते हैं कि इस पानीके लेनेमें कोई हर्ज नहीं, क्योंकि यह बालू आदिसे छना हुआ आता है इसमें न कूड़ा है न जीव जन्तु। ऐसी हालतमें जबकि इसका प्रचार वढ़ता ही जाता है तथा सर्कारकी ओरसे वहुधा कुए बंद कराये जा रहे हैं। यह बात बड़े विचार की है कि नलका पानी काममें लाया जाय या नहीं।

इस विषयमें तीन बातें विशेष विचारनेकी हैं—एक यह

कि जलसे चर्मका स्पर्श होता है व नहीं, बालू आदिसे साफ होने बाद पानी कितनी देरमें हमको मिलता है तथा विलछन का प्रबन्ध होसक्ता है व नहीं ।

कलकत्ते (खिदिरपुर) में रायसाहब द्वारकाप्रसाद जैनी असिस्टेन्ट इंजिनियर हैं इनके हाथसे कई स्थानोंमें नलका काम हुआ है, इनसे मालूम करने पर जो हाल विदित हुआ है सो प्रगट किया जाता है:–

Kidderpore–Calcutta 9th Aug. 1912.

My dear Revered Brahmchariji.

I received your letter duly for which I am much obliged to you. You asked me to give you a detail of filtered water supply, also whether fat or skin or leather is used at any place from the point of operation to the point where water is taken for use by the people.

First of all the water is pumped from the river at the low tide into the big pucca tanks, which are called settling tanks, where it is kept from 2 to 6 days so as to settle down all the mud and silt from the water. At low tide when the water goes down towards seaside it is generally clean and free from dirt.

After that the water passes through filtering materials consisting of washed course sand and gravel. Sometimes char–coal is also used to remove bad smell from the water. The water is then ready to be sent out through pipes for human consumption.

Formerly greeze and leather were used at the pumping engines, and in pointing together the pipes, taps

etc.; but at present they are not used, as the leather washers between the points rot very quickly, and then give out bad smell, and need to be changed and renewed very often, hence very expensive. In place of leather washers, rubber and asbestas paper are used which need renewal very seldom, and are much cheaper in the long run, and not objectionable by high caste Hindus.

Yours very sincerely
Dwarka Prasad.

* * * * *

2

Calcutta 17th Aug. 1912.

My dear Brahmchariji,

I received your post-card last evening, for which I am much obliged to you.

(I) The river water is pumped in the settling tanks. The water does not come in the settling tanks by itself. The tanks are made of pucca bricks all round and at the bottom. The settling tanks are often (or when necessary) cleaned out by opening out valves (iron screws) which are fixed for the purpose.

(ii) The filtering materials are generally at the bottom of the filtering tanks. The water from the settling tanks passes through the filtering materials and rises up and falls in the reservoir tank and passes at once through the pipes. All this does not take long. It is the work of only a few minutes.

(iii) The pipes are always full of filtered water. No sooner the valves are opened out there is a good supply of water at every tap, points etc. and every where.

(IV) When I was in charge of a water work, the filtering materials were washed and reused every week. They were however changed after a month or two as found necessary. The pipes do not require to be cleaned out from inside. The flow or rush of water keeps it quite clean. The pipes do not get dirty and rusty inside when they are first laid under the ground. Three or four years after the pipes of filtered water supply were found broken somehow or other, and so they had to be renewed. The broken pipes were examined and found quite clean, not dirty and muddy inside. Washers are cut out of leather or thick paper or rubber sheet, and used at the mouth of pipes, when two pipes are pointed together. Without a washer the point cannot be made water tight. Asbestas is a kind of thick paper used in place of leather. Asbestas paper does not rot in water.

With best wishes.

yours sincerely DwarkaPrasad.

* * * * *

3

Calcutta. 28 th Septr. 12.

My dear Brahmchariji,

I received your post-card duly. I am sorry that I could not reply to it earlier. There are I think about

12 settling tanks at Calcutta water-works. The water is almost continually flowing from river to settling tanks and then to pipes and the taps in the houses. During rainy-seasons and other times when the river water is very dirty and muddy, the river water is taken from one settling tank to another in order to have the water as clean as possible, and then sent in the filter tanks. All this takes from 2 to 6 days.

With best wishes.

Yours sincerely Dwarka Prasad.

ऊपर लिखे तीनों पत्रोंका भावार्थ इस भांति है:—

आपने यह प्रश्न किया कि नलके द्वारा छना हुआ पानी कैसे प्राप्त होता है? उसका खुलासा लिखो तथा जबसे पानी किसी नदी या कुएसे लिया जाता है और जब वह लोगोंसे काममें लाया जाता है इस बीचमें चर्वी या खाल या चमड़ा किसी जगहपर लगाया जाता है कि नहीं । इन प्रश्नोंके उत्तरमें लिखा जाता है कि सबसे पहले पानीको नदीकी नीची सतहसे नलके द्वारा बड़े पक्के तालाबोंमें लिया जाता है । यहां पानी २ दिनसे ६ दिन तक इसलिये भरा रहता है कि उसकी सारी मिट्टी आदि नीचे बैठ जावे । समुद्रकी ओर जाता हुआ जल नीचे की ओर होनेसे बहुधा साफ और मैलसे रहित होता है । पश्चात् वह पानी छानने वाली चीज़ोंके अन्दरसे गुज़रता है । ये चीज़ें धोई हुई मोटी बालू और कंकड़ होते हैं । कभी २ पानीकी बदबू निकालनेके लिये कोयला भी

काममें लाया जाता है। तब पानी तय्यार हो जाता है और मनुष्योंके खर्चके लिये नलोंद्वारा भेजा जाता है।

पहले चर्वी और चमड़ा नल चलाने वाले एंजिनमें तथा नल आदिको परस्पर जोड़नेके स्थानमें लगाये जाते थे, परन्तु अब उनको नहीं लगाया जाता है। क्योंकि चमड़ेकी पट्टियाँ बन्धनोंके बीचमें बहुत जल्दी सड़ जाती हैं और तब दुर्गन्ध देने लगती हैं और इसलिये प्रायः उनको बदलनेकी और दूसरे नए बैठानेकी आवश्यक्ता पड़ जाती है जिससे बहुत अधिक खर्च करना पड़ता है। चमड़ेकी पट्टियोंके स्थानमें रबर और एक प्रकारके मोटे कागज़ काममें लाए जाते हैं। इनको बहुत ही कम बदलनेकी जरूरत होती है तथा यह बहुत काल चलते हुए भी बहुत सस्ते पड़ते हैं और उच्च जातिके हिन्दू लोग भी इसमें कोई उजर नहीं उठाते हैं।

पत्र ता० १७–८–१२ ई०

तुम्हारे कार्डके उत्तरमें लिखा जाता है कि नदीका पानी पक्के तालावोंमें पंपद्वारा लिया जाता है। पानी अपने आप नहीं आता है। यह तालाब सर्व ओर तथा पेंदीपर पक्की ईंटोंके बने होते हैं। ये तालाव अक्सर जब जरूरत हो, लोहेके बन्धन जो इसी कामके वास्ते लगाए जाते हैं खोल दिये जाने पर, साफ कर लिये जाते हैं। छानने वाली चीज़ें अक्सर छाननेवाले तालावकी पेंदीपर रहती हैं। पक्के तालावोंसे पानी छानने वाले पदार्थोंमें जाता

है और ऊपरको उठता है तब एक बड़े तालावमें गिरता है और उसी समय नलोंमें होकर बाहर जाने लगता है। इस सर्व काममें अधिक समय नहीं लगता यह मात्र कुछ मिनटों ही का काम होता है।

ये नल सदा ही छने पानीसे भरे रहते हैं और जैसे ही लोहेके बंधन खोल दिये जाते हैं वैसे ही हरएक स्थानपर खूब पानी पहुंचने लग जाता है।

जब मैं नलके पानीके प्रबन्धमें था तब छाननेके पदार्थ हर सातवें दिन धोए जाते थे और तब फिर काममें लाए जाते थे तथा जब आवश्यकता होती थी महीने या दो महीनेके बाद उनको बदल भी दिया जाता था। नलोंको भीतरसे साफ करनेकी कोई जरूरत नहीं पड़ती है। पानीका बहाव उनको बिलकुल साफ रखता है तथा ये नल न तो मैले होते हैं और न इनमें भीतरसे जंग लगता है; क्योंकि जब वे पहले जमीनमें रक्खे जाते हैं तब उनको भीतरसे खूब कस दिया जाता है।

एक दफे यही छने पानीके नल लगनेसे ३ या ४ वर्ष बाद किसी कारणवश टूटे पाए गए और तब उनको बदलना पड़ा था। उस वक्त इन टूटे हुए नलोंकी परीक्षा की गई थी, तो मालूम हुआ कि ये बिलकुल साफ हैं न मैले हैं और न इनके भीतर कीचड़ लगी है।

ये पट्टियां (Washers) चमड़े या मोटे कागज या

रबरकी चद्दरसे बनाई जाती हैं और नलोंके मुंहपर लगाई जाती हैं, जब कि दो नलोंको आपसमें कसा जाता है। यदि इस पट्टीको न लगाया जाय तो वह बन्धन पानीको रोक सके ऐसा नहीं होता है।

ऐसवेस्टस एक प्रकारका मोटा कागज़ है उसको चमड़ेके स्थानमें काममें लेते हैं। यह कागज़ पानीमें सड़ता नहीं है।

पत्र ता० २८-९-१२ ई०

कार्ड पाया। कलकत्तेके पानीके नलके काममें १२ पक्के तालाव हैं। इनमें बराबर पानी नदीसे आया करता है और बराबर नलोंके द्वारा घरोंमें पहुंचा करता है। वरसातके मौसममें तथा ऐसे समयमें जब कि नदीका पानी बहुत मैला और मटीला होता है तब उस पानीको एक पक्के तालावसे दूसरेमें लाया जाता है, ताकि पानी साफ हो जावे और तब छानने वाले तालावोंमें भेजा जाता है। इस सबमें २ से लेकर ६ दिन खर्च होते हैं।"

* * * *

ऊपर लिखे हुए पत्रोंके मतलबसे यह बात निकलती है कि नदीका पानी तुरंत नलोंके द्वारा पक्के तालावमें लाया जाता है और उसी वक्त छानने वाले तालावमें भेजा जाता है। तुरंत ही वह नलोंके द्वारा बह कर घरोंमें पहुंच जाता है। केवल ऐसी हालतमें ही पानी पक्के तालावोंमें अदला बदला जाता है जब कि वह मैला होता है। ऐसी हालतमें तो

इन पक्के तालावोंमें पानी से ६ दिन ठहरता है अन्यथा तुरंत ही छनकर काममें आने लगता है । तथापि छाननेके बाद पानी घरोंमें कुछ मिनटोंके अन्दर ही पहुंच जाता है। तथा अब चमड़े वा चर्बीका स्पर्श कहीं नहीं कराया जाता है, केवल रबर या कागजसे काम लिया जाता है।

पीने योग्य पानी वही माना जाता है जो छाना जाय, उसका बिलछन वहीं पहुंचाया जाय तथा जो अपनी मर्यादाके अन्दर हो। इस बातको ध्यानमें लेकर नलके पानीके विषयमें विचार करना है । यदि चमड़ा या चर्बीका स्पर्श न हो तब चर्म स्पर्शका दोष कहीं आता नहीं तथा जब पानी छननेके बाद तुरंत ही मिलने लगता है तब मर्यादाका दोष भी नहीं आता। सिर्फ प्रश्न यह उठता है कि बिलछनका क्या होता है ?

जब पानी नदीसे पक्के तालवोंमें लाया जाता है तब अनछना होता है। छनने वाले तालावमें जाकर उसका सर्व मैल व त्रसजीव आदि निकल जाते हैं, परन्तु वे फिर जल थानकमें पहुंचाए नहीं जाते—ऐसी दशामें यह पानी लेने योग्य नहीं ठहरता है।

यहां पर एक विचार करना पड़ जाता है जैसा कि पहले कहा है कि " जब नदीके पानीमें तीव्र वायु लगे व सूर्य्यकी किरणें लगें व पानी घटीमें हता जावे तो वह प्राशुक हो जाता है—ऐसे जलको देशव्रती पशु पीते हैं जैसा कि श्री

पार्श्वनाथपुराणमें हाथीके जीवका कथन है कि उसने श्रावकके व्रत लेकर सूखे पत्ते खाए और अन्य पशुओंसे रौंदा हुआ नदीका जल पिया। इस जलके अन्दर जो सूक्ष्म त्रस जीव होते हैं उनका क्या बचाव होता है सो समझमें नहीं आया।

प्रश्न यह उठता है कि जब ऐसा जल पशुके लिये प्राशुक पीने योग्य है तो मनुष्यके लिये क्यों नहीं? जैसा कि यशस्तिलकमें कहा है कि ऐसा जल स्नानके लिये योग्य है—पीनेक लिये छान कर लेवे। श्रीअमितिगति आचार्यने इस बातका कुछ खुलासा नहीं किया है, किन्तु ऐसे जलको प्राशुक संज्ञा दी है। यदि जैन तत्त्व मीमांसकोंके मतसे इस प्रकारका प्राशुक जल पीनेके योग्य भी ठीक हो सक्ता है तब तो बालू व कंकड़से साफ किया हुआ नलका जल भी पीने योग्य हो सक्ता है।

इस विषयपर जहां तक हमसे खोज लगाई गई व विचार किया गया हमने प्रगट किया है। अन्य भाई इस विषयको विचार करके अवश्य निर्णय करें कि चर्म स्पर्शरहित नलका पानी काममें लाने योग्य है कि नहीं। क्योंकि वर्तमानमें सर्व देशोंके जैनी भाइ बहुत ही थोड़ी संख्याके सिवाय नलके पानीको विना निर्णय किये हुए ही काममें लेने लग गए हैं, यहां तक कि बहुतसे स्थानोंमें इसी नलके जलसे श्रीजिनेंद्रकी प्रतिमाका अभिषेक भी करने लग गए हैं। इसलिये इस बातका वादानुवाद होकर पूरा निर्णय होना चाहिये कि नलका पानी काममें लाया जाय कि नहीं।

पाठकोंको यह ध्यान रखना चाहिये कि जब तक इसका निर्णय न हो नलके पानीको काममें लेना योग्य न समझें ।

अध्याय तीसवां ।



हम क्या खाएं और पिए ?

इस अध्यायमें हमको शारीरिक स्वास्थ्यकी ओर विचार करके इस बातपर नमूनेकी रीतिसे कुछ दिखलाना है कि हम गृहस्थ लोग क्या खाएं और पिएं ।

इस विषयकी खोज करते हुए हमको जर्मनीके एक प्रसिद्ध डॉक्टर लुई कोहनी (Louis kohne) की बनाई हुई किताब " New Science of Healing " अर्थात् " भला करनेके लिये नई विद्या " का उर्दूमें तर्जुमा श्रीत्रकृष्णप्रसाद बी. ए. गवर्नमेन्ट प्लीडर, बदायूं जिला बिजनौरकृत देखनेमें आया है । इस तर्जुमेका नाम " नया इल्म शफाबख्श " है और सन् १९०४ में कैसरेहिन्द प्रेस, बदायूंमें छपा है । यही पुस्तक जर्मनी भाषामें ५० दफे छप चुकी है तथा इसका तर्जुमा पचीस भाषाओंमें हो चुका है । यह किताब हर एकके पढ़ने योग्य है तथा इसका पूरा उल्था हिन्दी भाषामें भी होना चाहिये । इस किताबके सफा ११९ से १५२ तक इसी बातका वर्णन है कि हम क्या खाएं और क्या पिएं ? उसीके अनुसार नीचे कुछ कहा जाता है:—

सर्व बीमारियोंको रोकनेकी तरकीब—जब तक पहलेका खाया हुआ ठीक तौरपर हजम न हो जावे दूसरी बार भोजन मत करो। क्योंकि सर्व रोगोंका मूल कारण भोजनका नहीं पचना याने हजम न होना और अनुचित आहारका करना है।

भोजन ठीक पच जानेकी पहचान—जब दस्त (पाखाना) थोड़ा व भूरे रंगका मुलायम और बंधा हुआ हो और उसपर लेसदार एक तह पाई जावे तथा जो झटसे अलग हो जावे—पाखानेके स्थानपर लगा न रहे तो जानना चाहिये कि भोजन ठीक पचा है।

एक भोजन करनेके बाद दूसरा भोजन कब ले—एक भोजनके ठीक २ पच जानेके लिये पूरा वक्त देना चाहिये। संसारमें पशु पक्षियों तकमें नियम है कि एक खाना खानेके बाद दूसरा खाना बहुत देर बाद लेते हैं। बहुधा व्रत उपवास करनेसे शरीरका हाजमा ठीक हो जाता है। यह देखा गया है कि एक दफा पूरी खुराक खानेके बाद सर्प बहुधा कई सप्ताह तक खाना नहीं खाता। यह भी जांचा गया है कि हिरण और खरगोश हफ्तों और महीनों तक बहुत कमती भोजनपर रहते हैं। इसलिये जब भोजन भले प्रकार पच जावे तब दूसरा भोजन करे।

कौनसे खाने जल्दी पचते हैं और लाभकारी होते हैं?

जो भोजन अपनी असली दशामें स्वादिष्ट और चित्तको

आकर्षण करनेवाले हों जल्दी हजम होते हैं और जो यही भोजन नमक व मसाला लगाकर पकाकर खाए जावें तो देरमें हजम होते हैं और असली हालतकी अपेक्षा कम लाभकारी होते हैं। पकाए व तयार किये हुए भोजनोंमें वे भोजन जल्दी पचते हैं जो सादे तौरपर पकाए जावें व जिनमें नमक मसाला कम लगा हो। पतले भोजन जैसे सुगन्धित शर्वत वगैरह असली दशामें चबाए जानेवाले भोजनकी अपेक्षा देरसे हजम होते हैं। जो भोजन अपनी असली हालतमें मनुष्यमें घृणा पैदा करें हमेशः स्वास्थ्य याने तन्दुरुस्तीको हानिकारक होते हैं. चाहे वे कितने ही स्वादिष्ट क्यों न बनाए गये हों? और सबसे अधिक मांस ही इस प्रकारका भोजन है। कोई भी मांस खानेवाला मनुष्य जिन्दे पशुपर दांत नहीं मार सक्ता न भेड़का कच्चा मांस खासक्ता है; क्योंकि दर असलमें कच्चा मांस घृणा पैदा करानेवाला है। कच्चे मेवे पके मेवेकी अपेक्षा जल्द हजम होते हैं जैसे पकी हुई किसमिसकी अपेक्षा गीलेतर अंगूर जल्दी हजम होते हैं। यदि देरमें हजम होनेवाला भोजन किया हो और ऊपरसे कच्चा मेवा खा ले तो सब खाना जल्द हजम हो जावेगा। बहुधा वे कुत्ते जो कभी ज्यादा खाते हैं पीछे घास खाते हैं जिससे अपनी खुराक जल्द हजम कर लेते हैं। पिसे हुए अनाजकी अपेक्षा साबुत या तला हुआ अनाज यदि चबाकर खाया जाय तो जल्दी हजम होता है, क्योंकि चबानेमें मुंहकी राल साथमें मिल जाती है।

पिसे हुए गेहूंका आटा चूकरसहित विना छना जल्दी पचता है और चूकर अलग करनेसे कब्ज़ होता है और देरमें हजम होता है। यह बात प्रसिद्ध है कि मैदेकी चीज़ काबिज़ होती है, क्योंकि वह बिलकुल चूकरसे रहित होती है। यदि घोड़ेको जई गेहूंके चूकरके साथ दी जाय व छिलके सहित जई दी जाय तो जल्द हजम हो । मतलब कहनेका यही है कि ठीक २ जिस हालतमें खुराककी कोई चीज़ नेचरने पैदा की है उसी हालतमें हमेशः वह हाजमेंके वास्ते सबसे अच्छी होती है। दाल पतलीकी अपेक्षा मटर जल्दी हजम होते हैं। यह बात अच्छी तरह जांच की गई है कि एक मजदूर तीन महीने तक रोज़ मुट्ठी भर कच्चे मटर खाकर अपनी सारी ज़िन्दगीमें सबसे अधिक तन्दुरुस्त मालूम पड़ा।

यह बात सर्व जैनियोंमें प्रसिद्ध है कि त्यागी महाचन्दजी ताजे मूंग कूटे हुए खाते थे—उनकी आवाज़ बहुत तेज और बुलन्द थी—मुहल्लों तक उनके व्याख्यानकी आवाज़ फैल जाती थी। त्यागी लालमनजी ताजे धान्य कुटवाकर खाया करते थे।

उम्दासे उम्दा अंग्रेजी शराब, बड़ा कीमती गोश्त, अंडे या पनीर ये सब चीज़ें शरीरमें बहुत कठिनतासे हजम होती हैं। जब कि विना छने हुए आटेकी रोटी, ताजे फल, हरी तरकारियां और आटेके बने हुए पदार्थ व पानीमें पके हुए चिकनई, शक्कर या नमकसे विना मिले हुए भोजन बहुत जल्द हजम होते हैं। अन्न व तरकारी जिस पानीमें पके उस गर्म

पानीको फेकना नहीं चाहिये, क्योंकि उसमें बलकारक पदार्थ रहता है । तरकारियोंको बहुत कम पानीसे या केवल भाफसे पकाना चाहिये और जितना पानी वे सोख लेवें उसको निकाला न जावे । बीमार आदमियोंके लिये तो यह बहुत ही आवश्यक है कि वे विना छने हुए चूकरसहित मोटे आटेकी रोटी चबा २ कर खावें ताकि मुंहका लुआब मिल जावे जिसमें जल्दी हजम हों तथा जईके आटेकी लपसी भी बहुत फायदेमंद होती है; परन्तु उसमें सिवाय कुदरती नमक (पानी जमा कर जमाया नहीं हो) या विना गर्म किये हुए दूधके और कुछ न मिलाया जावे । दूध ठंडा और विना गर्म किये हुए ही पीना चाहिये, परन्तु यह देख लो कि उसमें दुर्गन्ध तो नहीं है या उसका स्वाद तो नहीं बिगड़ा । गर्म दूध देरसे हजम होता है और बलदायक नहीं होता और न गर्म करनेसे हानिकारक पदार्थ उसमेंसे निकलते हैं । भोजन करते समय ताजा मेवा खाना चाहिये वा चांवल जौ वगैरह खाना ठीक है । जिसका स्वास्थ्य अच्छा है वह इसी प्रकारकी बहुतसी चीजें खा सक्ता है । जिस आदमीको बदहजमीकी शिकायत हो उसे बहुत ही सादा भोजन खाना चाहिये जो भले प्रकार चबाया जाय, जैसे विना छने आटेकी रोटी और फल ।

एक साधारण आदमी सबेरे यदि नाश्ता करे तो विना छने आटेकी लपसी, और फल खाए और फिर चावल, जौ, गेहूं, जईका आटा पानी या घीमें तयार किया हुआ या थोड़ा

मेवा मिला हुआ, दालके अनाज याने मटर, सेम, लोभियां, मोठ और मसूर। इन सबको पानीमें खूब पका ले, घुटे हुए व कुचले हुए न हों; पानी इतना डाले कि सब सूख जावे, परन्तु उनकी असली सूरत न बिगड़े।

तरकारियां ऐसी गलाना चाहिये जो पतली न हों—चबाई जा सकें। मसालोंमेंसे जीरा सफेद, सौंप, धनियां, अजवाइन तरकारियोंमें डाली जा सक्ती हैं। गर्म मसाले जैसे लौंग, मिर्च व हींग नहीं डालने चाहिये।

एक साथ एक वक्तमें एक रोटी और एक तरकारी खाओ साथमें दूसरी तरकारी या दाल न हो, खाना भूख रखकर खाओ, बारबारके खानेसे परहेज करो; क्योंकि इससे हाजमा बिगड़ता है। जब तक पहला खाना हजम न हो जावे दूसरी चींज दूसरी बार मत खाओ।

हम क्या पीवें?—हमको ताजा पानी पीना चाहिये, । जानवर हमेशा बहते हुए पानीको ही तलाश करते हैं और नदी धाराओंसे पानी पीना पहाड़ोंसे निकलते हुए झरनोंकी अपेक्षा अधिक पसन्द करते हैं। जिस पानीपर सूर्यकी किरणें पड़ती हैं और जो पत्थरके टुकड़ोंपर बहता आया है वह पहाड़के झरनोंके ताजे पानीसे अच्छा होता है।

पानी कम पीना—जो जानवर रसदार भोजन खाते हैं वे पानी कम पीते हैं। मनुष्य यदि रसदार फलोंको खाय तो प्यास कम लगे।

यदि हम बीमारीसे छूटना चाहते हैं तो यह जरूरी है कि उसी ही पानीको जैसा कि नेचरमें मिलता है पियें और सिर्फ पानीसे ही अपनी प्यास बुझावें।

डाक्टर साहबके इस कथनसे साफ प्रगट होता है कि हमको बनावटी पानी जैसा कि नलका व बर्फका व सोडा-वाटर व लेमोनेडको हरगिज़ नहीं पीना चाहिये। जो पानी असली हालतमें बहता हुआ हो और जहां सूर्यकी किरणें भी पड़ें वह पीनेके लिये सर्वसे अच्छा है।

पेटकी रक्षाके दो दरवान हैं—नाक और ज़वान। जिसको अच्छी हवा लेनेकी आदत रहती है वह अपनी नासिकाके द्वारा बुरी हवाको पहचानकर भीतर जाने नहीं देता है। बुरी गन्दी हवासे बचना शरीर रक्षाका अति उत्तम उपाय है। जो अपनी नाकसे काम नहीं लेते और उसके वार २ चितानेपर भी खयाल नहीं करते उनकी नासिका अपना काम करना छोड़ देती है। इसी तरह जो वस्तु जिह्वा पर रखनेसे बिगड़े स्वादकी मालूम पड़े उसे कभी न खाओ। जो लोग लड़कईसे जांचकर खाते हैं उनके लिये जिह्वा बड़ा काम करती है—सदा ही सड़ी, बुसी, गली, चीज़को

पेटमें जानेसे बचाती है; परन्तु जिनकी आदत खराब हो जाती है उनकी ज़बान अपना काम देना बन्द कर देती है। फिर उनको सड़े व बुसे व बासी चीज़की कुछ परवाह ही नहीं होती। इसीलिये हमको शरीर रक्षाके लिये इन दोनों दरवानोंसे आप भी काम लेना चाहिये और अपने लड़कोंको सिखलाना चाहिये कि वे इनसे मदद लेते हुए खाया पीया करें व रहासहा करें।

डाक्टर साहब मांसाहारको मनुष्यके लिये बहुत बड़ा हानिकारक बतलाते हैं और आपने इस बातको बड़े वादानुवादके साथ सिद्ध किया है कि मनुष्य कभी मासाहारी नहीं हो सक्ता।

मांसपर विचार।

डॉक्टर साहबने दांत, पेट, भोजनकी रक्षा, बच्चोंका भोज्य इन चार बातोंका मुकाबला किया है और यह फल निकाला है कि "(१) मनुष्यके दांत मांसाहारी जानवरोंसे नहीं मिलते, इसलिये वह मांसखोर जानवर नहीं है, न साग व घास खानेवाले जानवरोंसे मिलते हैं, क्योंकि वह घास खानेवाला जानवर नहीं है और न उन जानवरोंसे मिलते हैं जो मांस और घास दोनों खाते हैं; परन्तु मनुष्यके दांत फल खानेवाले बन्दरोंके दांतोंसे करीब २ मिलते हैं। इसलिये यह सिद्ध है कि मनुष्य फल खानेवाली किस्मका जानवर है। (२) पेटकी अपेक्षासे भी देखा जावे तो मनुष्य फल खानेवालों

से मिलता है मांसाहारियोंसे नहीं। (३) भोजनकी रक्षाका कारण नाक और ज़बानकी शक्तियां हैं। यह प्रगट है कि शिकारी जानवर शिकारकी बू पाते ही उधर दौड़ेगा और उसका खून चूस लेगा, जब कि मनुष्यका दिल इस तरह किसी पशुपर नहीं चल सक्ता, किन्तु उसकी तबियत फलादिकी ओर जायगी जो उसकी ज़बानको रुचते हैं। फल खानेवाले पशु भी खेत और फलदार वृक्षों ही पर रहना पसन्द करते हैं। एक बच्चेको जिसने कभी पशुओंका मारा जाना सुना नहीं है कभी खयाल नहीं आ सक्ता कि पशुको मारो इसका मांस अच्छा होगा। कच्चा मांस किसीकी भी आंख व नाकको पसन्द नहीं आएगा, खानेके वास्ते तो लोग मसाले डालकर स्वादयुक्त बनाते हैं; जब कि फलोंको देखकर दिल खुश होता है। अन्नको काटने और जमा करनेमें किसीको भी घृणा नहीं होती। (४) नए जन्म प्राप्त बच्चे माताका दूध ही पसन्द करते हैं। असली भोजनके सामने कोई चीज़ ठीक नहीं है। मांसाहारी माताओंके दूध कम होता है। जर्मनीमें बच्चोंके लिये बहुधा उन गावोंकी धायें बुलाई जाती हैं जो मांस नहीं खातीं व बहुत कम मांस खाती हैं। समुद्री यात्राओंमें धाओंको जईके आटेकी पकी हुई लपसी दी जाती है। इससे यह साफ २ प्रगट है कि मांस माताके दूधके बनानेमें कुछ भी मदद नहीं देता। जो लोग कहते हैं कि जानवरोंसे मनुष्यका

मुकाबला न करो मनुष्य तो मुद्दतसे मांस खानेकी आदत डाल चुके हैं उनके लिये डाक्टर साहबने अपने तजुर्बेसे लिखा है कि "कई घरोंमें बच्चे जन्मसे ही विना मांसकी खुराकको पले गए और उनके शरीरकी उंचाईकी जांच मैंने स्वयं की तो बहुत अच्छा फल रहा, वे बच्चे हर तरह अच्छे रहे। इससे यह वात सिद्ध है कि मनुष्यके लिये मांसकी ज़रूरत नहीं है।" इन्द्रियों की तृष्णाके बढ़नेसे ही बदचलनी होती है। जो बच्चे मांसादिके भोजनपर रहते हैं वे अपनी इच्छाओंको रोक नहीं सक्ते, इसलिये जल्द बदचलन हो जातें हैं । अतः यदि बदचलनीको रोकना होवे तो सबसे अच्छा उपाय यह है कि बच्चोंका पालन पोषण असली खुराकसे हो, इस बातकी डाक्टर साहब कहते हैं कि हमने पूरी २ जांच कर ली है। जिन लोगोंने कुसंगतिमें पड़ मांस खाना स्वीकार कर लिया वे लोग बीमार हो गए और लाचार उनको मांसरहित भोजन लेना हुआ।

थियोडवर हान साहब २९ वर्ष की उमरमें मरन किनारे हो गए थे, परन्तु मांसके त्यागने और फलाहार करनेसे ३० वर्ष और जी सके। "जो लोग मांस और शराबको छोड़नेके लिये अपना दिल मज़बूत नहीं करते वे बराबर खराब मैला भीतर जमा करते जाते हैं जिसको तन्दरुस्ती के लिये फिर दूर करना पड़ेगा।" इस तरह बहुत वादानुवाद के साथ डाक्टर साहबने दिखलाया है कि मनुष्यको शुद्ध

अन्न, फल, तरकारी, ताजा दूध, ताजा असली पानी–इन चीज़ोंका आहार करना चाहिये ।

पस जैनी भाइयो ! तुम आप और अपने स्त्री बच्चोंको शुद्ध ताजे खान पानकी आदत डलवाओ । बासा, मर्यादारहित भोजन पान कभी न करो । हर वस्तुको खाने पीनेके पहले अच्छी तरह देखलो और सूंघलो, यदि रस चलित न हों और अपने दिलमें घृणा नहीं आवे तब ही ग्रहण करो ।

अध्याय इकतीसवां ·

फुटकर सूचनाएं ।

स्वास्थ्य रक्षा–" शरीरमेव खलु धर्म साधनं " अर्थात् शरीर ही निश्चय करके धर्म सिद्धिके लिये निमित्त कारण है । इस नियमके अनुसार गृहस्थियोंको उचित है कि अपने और अपने कुटुम्बके शरीर मजबूत, निरालसी और निरोगी रहें इसपर पूरा २ ध्यान देवें । इस स्वास्थ्य रक्षाके लिये ब्रह्मचर्य्यकी रक्षा और शुद्ध निरोगकारक पदार्थोंका खान पान है । देखनेमें आता है कि गृहस्थ घी और दूधका व्यवहार अधिकतासे करते हैं, परन्तु यह नहीं विचारते कि जिनको हम काममें लेते हैं वे रोगवर्द्धक हैं या शरीरको बल प्रदाता हैं । इस वर्तमान समयमें जब कि गाएं भैंसें मांसाहार, चर्म और हड्डीके लिये अधिकतासे बध की जाती हैं ।

तब घी व दूधकी महंगी होनेसे लोभ वश इनके विक्रेता घीमें चर्वी व तैलादि तथा दूधमें जल अवश्य मिला देते हैं और वही बाजारोंमें मिलता है। यहां तक कि ग्रामवासी भी मेल करनेमें शंका नहीं करते। ऐसा घी दूध शरीरको पुष्ट कारक नहीं हो सक्ता। अतएव गृहस्थियोंको स्वास्थ्यकी रक्षाके लिये अपने २ यहां घरमें स्वच्छ पक्के स्थानमें गाय भैंसोंको पालना चाहिये और उनका थन धोकर उचित प्रमाणसे दूध निकालना चाहिये, ताकि उसके बछड़ोंको कष्ट न हो। इस दूधको अच्छे दोहरे छन्नेसे तुरंत छान लेना चाहिये और उसी समय अग्निपर गर्म करनेको रख देना चाहिये नहीं तो दोहनेसे दो घड़ी याने ४८ मिनटके होते ही गाय भैंस जातिके सन्मूर्छन पंचेन्द्री त्रस जीव पैदा होने लग जायंगे। यदि कच्चा ठंढा दूध पीना हो जो कि वास्तवमें बहुत लाभ दायक होता है, तो दो घड़ीके भीतर ही पी लेना चाहिये। यदि दूध औंटा लिया जावे तो जलके समान २४ घंटे तक चल सक्ता है। इसी ही दूधसे दही व घी बनाना चाहिये। इसलिये जिस मक्खनमें घी होता है उसको उसी समय निकलते ही ताले ना चाहिये। ऐसा ताजा घी शरीरको लाभकारी और शुद्ध होता है। बहुतसे जैनी लोग प्रमादके वश इन पशुओंको रक्षित रख शुद्ध घी दूध लेनेका यत्न नहीं करते और अनेक आरम्भिक हिंसाजनित काम करते हुए भी गाय भैंस रखनेमें हिंसा होती है इतना मानकर रह जाते हैं। प्राचीन कालमें

हरएक गृहस्थ इनको रखता था और यही धन नामका परिग्रह कहलाता था। जिसके पास यह नहीं होते थे उसीको ही निर्धन कहा जाता था। श्रावकधर्म पालनेवाले अपने घरमें इस परिग्रहको उस समय तक रख सक्ते हैं जब तक वे परिग्रहका त्याग करके श्रावककी नौ मीं श्रेणीमें न जावें।

अस्पर्श्यशूद्र—जो शूद्र मलीन कर्म करते हैं ऐसे अस्पर्श्य शूद्र भी जैन धर्मको धारण कर सक्ते हैं और ये शूद्र श्रावकके १२ व्रतोंको पाल सक्ते हैं। प्राचीन जैन इतिहाससे प्रगट है कि अनेकोंने श्रावकव्रत पाल स्वर्ग गति प्राप्त की और फिर वहांसे आकर उत्तम क्षत्री कुलमें जन्म ले मोक्षके पात्र हुए। ऐसा शूद्र कौनसी प्रतिमा तकके नियम पाले सो किसी संस्कृत शास्त्रमें हमारे देखनेमें नहीं आया।

इस कालमें मुनि धर्मका निर्वाह कैसे हो?—इस विषय का उत्तर कुछ कठिन नहीं है। श्रावकोंको ऐलक तक आचरण पालनेका अभ्यास करना चाहिये, जब अनेक ऐलक हो जावेंगे तब उनमेंसे मुनि होनेके लिये सर्कारसे प्रार्थना करके आज्ञा मिल सक्ती है। जब सर्व जैनी एक चित्त हो सर्कारसे अर्ज़ करेंगे और आवश्यक्ता बतावेंगे तो सर्कार ऐसे ध्यानी वीतरागी साधुओंसे अपने राज्यको पवित्र समझेगी तथा जबतक यह स्पष्ट आज्ञा न मिले तब तक देशी रजवाड़ोंमें मुनि गण सुगमतासे बिहार कर सक्ते हैं। इसमें भी कोई हर्ज न होगा यदि एक २ विशेष २ प्रान्तके ग्रामोंमें

एक २ मुनि विहार करें। मुनि धर्मके सम्बन्धमें हम इस जिनेन्द्रमत दर्पणके किसी अन्य भागमें प्रगट करेंगे।

नित्यनियम पूजा.

देवशास्त्रगुरुपूजा।

ॐ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आयरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लाए सव्वसाहूणं॥

ॐ अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः।

(यहां पुष्पांञ्जालि क्षेपण करना चाहिये)

चत्तारि मंगलं—अरहंतमंगलं सिद्धमंगलं साहूमंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मोमंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंतलोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहूसरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा।

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये।)

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।

ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥ २ ॥
अपराजितमन्त्रोऽयं सर्वविघ्नविनाशनः ।
मङ्गलेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्गलं मतः ॥ ३ ॥
एसो पंचणमोयारो सव्वपावपणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मगलं ॥ ४ ॥
अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिनः ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
कर्माष्टकविनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥ ६ ॥

(यहां पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये ।)

उदकचन्दनतन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमङ्गलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथमहं यजे॥७॥

ॐ ह्रीं भगवज्जिनसहस्रनामभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं
स्याद्वादनायकमनन्तचतुष्टयार्हम् ।
श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतु–

जैनेन्द्रयज्ञविधिरेष मयाऽभ्यधायि ॥ ८ ॥
स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय
स्वस्ति स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय ।
स्वस्ति प्रकाशसहजोर्ज्जितदङ्मयाय
स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥ ९ ॥
स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय
स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय ।
स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय
स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥ १० ॥
द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः ।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्
भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम् ॥ ११ ॥
अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव ।
अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ १२ ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः । श्रीसंभवः

स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः। श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः। श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः, श्रीपुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः। श्रीश्रेयान्स्वास्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः। श्रीविमलः स्वास्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः। श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः। श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः। श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः। श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः। श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

(पुष्पांजलि क्षेपणा)

अथ भाषा पूजा।

अडिल्ल छन्द

प्रथमदेव अरहन्त सु श्रुतसिद्धन्तजू।
गुरु निरग्रंथ महन्त मुकतिपुरपन्थजू॥
तीन रतन जगमाहिं सो ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्तिप्रसाद परमपद पाइये॥ १॥

दोहा—पूजों पद अरहंतके, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नितप्रति अष्टप्रकार॥ २॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

गीता छन्द ।

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वन्दनीक सुपदप्रभा ।
अति शोभनीक सुवरण उज्जल, देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं ।
अरहंतश्रुतासिद्धांतगुरुनिरग्रन्थ नितपूजा रचूं ॥ १ ॥

दोहा—मलिनवस्तु हरलेत सब, जलस्वभाव मलछीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जे त्रिजग उदरमँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे ।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे ॥
तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घसि सचूं ।
अरहंत श्रुनसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ २ ॥

दोहा—चन्दन शीतलता करै, तपतवस्तु परवीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

यह भवसमुद्रअपार तारण,-के निमित्त सुविधि ठई ।

अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल,-पुंज धरि त्रयगुण जचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ३ ॥
दोहा—तंदुल सालि सुगन्धि अति, परम अखंडित बीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥
जे विनयवंत सुभव्यउरअंबुजप्रकाशन भान हैं ।
जे एकमुखचारित्र भाषत, त्रिजगमाहिं प्रधान हैं ॥
लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं ।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ४ ॥
दोहा—विविधभाँति परिमल सुमन भ्रमर जास आधीन ।
तासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥
अति सबल मदकंदर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है ।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुड़समान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूं ।
अरहंतश्रुतसिद्धान्तगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ५ ॥
दोहा--नानाविध संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन ।

जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशाय चरुं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने मोहतिमिरमहाबली ।
तिहिकर्मघाती ज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली ॥
इहभाँति दीपप्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं ।
अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ६ ॥

दोहा--स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

जोकर्म-ईंधन दहन अग्निसमूहसम उध्दत लसै ।
वर धूप तासु सुगन्धि ताकरि सकलपरिमलता हँसै ॥
इहभाँति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलनमाहिं नहीं पचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ७ ॥

दोहा--अग्निमाहि परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन ।
जासों पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं ।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थ पूरन, सकल अम्रतरस सचूं ।

अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ८ ॥

दोहा--जे प्रधान फल फलविषैं, पंचकरण-रसलीन ।

जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं ।

वर धूप निरमल फल विविध, बहुजनमके पातक हरूं ॥

इहभाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिवपंकति मचूं ।

अरहंतश्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ९ ॥

दोहा--वसुविधि अर्घ सँजोयकै, अति उछाह मन कीन ।

जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीनरतनकरतार ।

भिन्न भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुणविस्तार ॥ १ ॥

पद्धड़िछन्द ।

चउकर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि । जीते अष्टादशदोषराशि
जे परम सुगुण हैं अनँत धीर । कहवतके छ्यालिस गुण
गँभीर ॥ १ ॥ शुभ समवशरणशोभा अपार । शत इंद्र

नमत कर शीस धार । देवाधिदेव अरहंत देव । वंदों मनवचतनकरि सु सेव ॥३॥ जिनकी धुनि है ओंकार-रूप । निरअक्षरमय महिमा अनूप । दश अष्ट महाभाषा समेत । लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥ ४ ॥ सो स्यादवादमय सप्तभंग । गणधर गूँथे बारह सु अंग । रवि शशि न हरै सो तम हराय । सो शास्त्र नमों बहु प्रीति ल्याय ॥ ५ ॥ गुरु आचारज उवझाय साध । तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध । संसारदेहवैराग धार । निरवांछि तपैं शिवपद निहार ॥ ६ ॥ गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस । भवतारनतरन जिहाज ईस । गुरुकी महिमा बरनी न जाय । गुरुनाम जपों मनवचनकाय ॥ ७ ॥

सोरठा--कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति विना सरधा धरै । 'द्यानत' श्रद्धावान अजर अमरपद भोगवै ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अथ सिद्धपूजा प्रारभ्यते ।

ऊर्द्ध्वाधो रयुतं सबिन्दुसपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरितदिग्गताम्बुजदलं तत्सन्धितत्त्वान्वितम् ॥
अन्तःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं

देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकण्ठीरवः ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपते ! सिद्धपरमेष्ठिन् अत्र मम सन्निहितो भवभव । वषट् ।

निजमनोमणिभाजनभारया समरसैकसुधारसधारया ।

सकलबोधकलारमणीयकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।१

सहजकर्मकलङ्कविनाशनैरमलभावसुभाषितचन्दनैः ।

अनुपमानगुणावलिनायकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥२॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

सहजभावसुनिर्मलतन्दुलैः सकलदोषविशालविशोधनैः।

अनुपरोधसुबोधनिधानकं सहजसिद्धमहं परिपूजये॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

समयसारसुपुष्पसुमालया सहजकर्मकरेण विशोधया ।

परमयोगबलेन वशीकृतं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥४॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये कामवाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातजरामरणान्तकैः ।

निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये क्षुधारोग विनाशाय चरुं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

सहजरत्नरुचिप्रातदापक रुचिविभुतितमःप्रविनाशनैः ।

निरवधिस्वविकाशविकाशनैः सहजसिद्धमहं परिपूजये।६।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये मोहान्धकार विनाशाय **दीपं** निर्वपामीति स्वाहा॥६॥

निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अष्टकर्म विध्वंसनाय **धूपं** निर्वपामीति स्वाहा॥७॥

परमभावफलावलिसम्पदा सहजभावकुभावविशोधया।
निजगुणाऽऽस्फुरणात्मनिरञ्जनं सहजासिद्धमहं पारि-
पूजये ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये मोक्षफल प्राप्तये **फलं** निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यन्तबोधाय वै
वार्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः ॥
यश्चिन्तामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत्
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयम् ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शान्त निरंश। निरामय निर्भय निर्मल-हंस ॥ सुधाम विबोधनिधान विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ १ ॥ विदूरितसंसृतभाव निरङ्ग। समामृतपूरित देव विसङ्ग॥ अबन्ध कषायविहीन विमोह।

प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥ २ ॥ निवारितदुष्कृत-
कर्मविपाश । सदामलकेवलकेलिनिवास ॥ भवोदधि-
पारग शान्त विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह ॥३॥
अनन्तसुखामृतसागर धीर । कलङ्करजोमलभूरिसमीर ॥
विखण्डितकाम विराम विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसि-
द्धसमूह ॥ ४ ॥ विकारविवर्जित तर्जितशोक । विबोध-
सुनेत्रविलोकितलोक ॥ विहार विराव विरङ्ग विमोह ।
प्रसीद विशुध्द सुसिध्दसमूह ॥ ५ ॥ रजोमलखेदविमु-
क्त विगात्र । निरन्तर नित्य सुखामृतपात्र ॥ सुदर्शन-
राजित नाथ विमोह । प्रसीद विशुध्द सुसिध्दसमूह ॥६॥
नरामरवन्दित निर्मलभाव । अनन्तमुनीश्वरपूज्य विहाव
सदोदय विश्वमहेश विमोह । प्रसीद विशुध्द सुसिध्द-
समूह ॥ ७ ॥ विदंभ वितृष्ण विदोष विनिंद्र । परापर
शङ्कर सार वितन्द्र ॥ विकोप विरूप विशङ्क विमोह ।
प्रसीद विशुध्द सुसिध्दसमूह ॥ ८ ॥ जरामरणोज्झित
वीतविहार । विचिन्तित निर्मल निरहङ्कार ॥ अचि-
न्त्यचरित्र विदर्प विमोह । प्रसीद विशुध्द ससिध्दसमू-
ह ॥ ९ ॥ विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ । विमाय
विकाय विशब्द विशोभ ॥ अनाकुल केवल सर्व विमो-
ह । प्रसीद विशुध्द सुसिध्दसमूह ॥ १० ॥ असमस-

मयसारं चारुचैतन्यचिह्नं परपरणतिमुक्तं पद्मनन्दीन्द्र-वन्द्यम् ।। निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुध्दं, स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम् ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अडिल्ल छन्द ।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो ।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो ॥
शुध्दबोध अविरुध्द अनादि अनंत हो ।
जगतशिरोमणि सिध्द सदा जयवंत हो ॥ १ ॥
ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सबै दहे ।
नित्य निरंजनदेव सरूपी हो रहे ॥
ज्ञायकके आकार ममत्वनिवारिकैं ।
सो परमातम सिध्द नमूं सिर नायकैं ॥ २ ॥

दोहा ।

अविचलज्ञानप्रकाशते, गुण अनंतकी खान ।
ध्यान धरेसौं पाइये, परमसिध्द भगवान ॥ ३ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ शान्तिपाठः प्रारभ्यते ।

(शान्तिपाठ बोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करते रहना चाहिये)

दोधकवृत्तम् ।

शान्तिजिनं शशिनिर्म्मलवक्त्रं शीलगुणव्रतसंयमपात्रम् ।
अष्टशतार्च्चितलक्षणगात्रं नौमि जिनोत्तमम्बुजनेत्रम् ॥ १ ॥

पञ्चममीप्सितचक्रधराणां पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च ।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोडशतीर्थकरं प्रणमामि ॥ २ ॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥ ३ ॥
तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि ।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च ॥ ४ ॥

वसन्ततिलका ।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुण्डलहाररत्नैः शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः ।
ते मेजिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपास्तीर्थङ्करा सततशान्तिकरा भवन्तु ॥ ५ ॥

इंद्रवज्रा ।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः ॥ ६ ॥

स्रग्धरावृत्तम् ।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः ।
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ॥
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके ।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप् ।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अथेष्टप्रार्थना ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

आर्यावृत्तम् ।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाणसम्प्राप्तिः ॥ १० ॥

आर्या ।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुःक्खक्खयं दिंतु ॥ ११ ॥
दुःक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य
मम होउ जगतबंधव तव जिणवर चरणसरणेण ॥ १२ ॥

(परिपुष्पांजलिंक्षिपेत् ।)

अथ विसर्जनम् ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥ १ ॥
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्ज्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥ ३ ॥
आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम् ।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम् ॥ ४ ॥

इति गृहस्थ–धर्म पुस्तकम् समाप्तम् ।